प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बंबई राज्य)

मुद्रक :
बलदेव दास,
संसार प्रेस,
काशीपुरा, बनारस

पहली बार : ५,०००
दिसम्बर, १९५६
मूल्य : डेढ़ रुपया

प्राप्ति-स्थान
अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

निवेदन

पू० विनोबाजी के गत पाँच वर्षों के प्रवचनों में से महत्त्वपूर्ण प्रवचन तथा कुछ प्रवचनों के महत्त्वपूर्ण अंश चुनकर यह संकलन तैयार किया गया है। संकलन के काम में पू० विनोबाजी का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। पोचमपल्ली, १८-४-'५१ से पोचमपल्ली, २०-१-'५६ तक की यात्रा का काल उन्हींकी सलाह के अनुसार चुना गया है। गंगा तो सतत बहती ही रहेगी।

संकलन के लिए अधिक-से-अधिक सामग्री प्राप्त करने की चेष्टा की गयी है। फिर भी कुछ अंश अप्राप्य रहा।

भूदान-आरोहण का इतिहास, सर्वोदय-विचार के सभी पहलुओं का दर्शन तथा शंका-समाधान आदि दृष्टिकोण ध्यान में रखकर यह संकलन किया गया है। इसमें कहीं-कहीं पुनरुक्ति भी दिखेगी। किन्तु रस-हानि न हो, इस दृष्टि से उसे रखना पड़ा है।

संकलन का आकार सीमा से न बढ़े, इसकी ओर भी ध्यान देना पड़ा है। यद्यपि यह संकलन एक दृष्टि से पूर्ण माना जायगा, तथापि उसे परिपूर्ण बनाने के लिए जिज्ञासु पाठकों को कुछ अन्य भूदान-साहित्य का भी अध्ययन करना पड़ेगा। सर्व-सेवा-संघ की ओर से प्रकाशित १. कार्यकर्ता-पाथेय, २. साहित्यिकों से, ३. सर्वोदय के आधार, ४. संपत्तिदान-यज्ञ ५. जीवन-दान ६. शिक्षण-विचार और सस्ता-साहित्य-मण्डल की ओर से प्रकाशित १. सर्वोदय का घोषणा-पत्र, २. सर्वोदय के सेवकों से जैसी पुस्तकों को इस संकलन का परिशिष्ट माना जा सकता है।

संकलन के कार्य में यद्यपि पू० विनोबाजी का सतत मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है, फिर भी विचार-समुद्र से मौक्तिक चुनने का काम जिसे करना पड़ा, वह इस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य थी। त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना।

—निर्मला देशपांडे

अनुक्रम

बिहार

[जनवरी १६५३ से दिसम्बर १६५४]

भूदान-गंगा

(द्वितीय खण्ड)

दंडनिरपेक्ष लोक-शक्ति : १ :

हम एक कार्यकर्ता-जमात हैं। यहाँ सम्मेलन में आते हैं, तो कुछ बोल भी लेते हैं, लेकिन यह बोलना भी हमारा काम ही होता है। वह केवल वक्तृत्व नहीं; बल्कि कर्तृत्व का ही हिस्सा होता है। हम लोग सालभर कुछ काम करके नारायण को वह समर्पण करने के लिए एकत्र होते और दूसरे साल के लिए कुछ संबल लेकर जाना चाहते हैं। ऐसे मौकों पर हम कुछ विचार-विनिमय, विचारों का लेनदेन भी कर लेते हैं। आज हमें इसी दृष्टि से अपने काम के पीछे की भूमिका देख लेनी चाहिए; कार्य का जो संशोधन करना है, उस पर भी नजर डालनी चाहिए। 'कार्य-पद्धति', 'कार्यक्रम' और 'कार्य-रचना', इन तीनों पर हमें थोड़ा विचार कर लेना चाहिए।

दुनिया की मौजूदा स्थिति

हम दुनिया के किसी गोशे में भी काम क्यों न करते हों, आज ऐसी हालत नहीं कि सारी दुनिया पर नजर डाले बगैर हमारा काम चलेगा। दुनिया में जो ताकतें काम कर रही हैं, जो नये प्रवाह शुरू हुए हैं, कल्पनाओं और भावनाओं का जो संस्पर्श और संघर्ष हो रहा है, उसकी तरफ ध्यान देकर, उस पर सतत नजर रखकर ही हम जो भी छोटा-सा कदम उठाना चाहें, उठा सकते हैं। समुचित दृष्टि के बिना केवल कर्म अंधा हो जाता है। इसलिए दुनिया की हालत का खयाल करना पड़ता है। आज हम देख रहे हैं कि दुनिया की हालत बहुत चंचल है। इतना ही नहीं, बहुत कुछ स्फोटक भी है। यानी उसमें कई खतरों की

सम्भावना भरी है और कह नहीं सकते कि किस समय उसमें से ज्वालामुखी का स्फोट होगा। मैं यह कुछ नाहक भयावना चित्र नहीं खींच रहा हूँ। इससे भयभीत होने का मेरा इरादा नहीं है और न आपको ही भयभीत बनाना चाहता हूँ; बल्कि जो हालत है, सिर्फ उस ओर ध्यान खींचना चाहता हूँ। कहा नहीं जा सकता कि दुनिया में किस क्षण क्या होगा, ऐसी अस्थिर मनःस्थिति और परिस्थिति आज उसकी है।

एक-दो महीने पहले की बात है। दिल्ली में कुछ ज्ञानी, विद्वान् एकत्र हुए थे और उन्होंने अहिंसा के दर्शन के बारे में कुछ चिन्तन-मनन और विमर्श किया। वह अखबारों में आता रहा और हम पढ़ते रहे। उसमें हमारे पूज्य राजेन्द्रबाबू ने जिक्र किया था कि "आज कोई भी देश यह हिम्मत नहीं कर रहा है कि हम सैन्य के बगैर काम चलायेंगे।" उन्होंने इस बात पर दुःख भी प्रकट किया कि "बावजूद इसके, कि गांधीजी की सिखावन हमने उनके श्रीमुख से सीधी अपने कानों सुनी और उनके साथ कुछ काम भी किया है, हिन्दुस्तान भी आज ऐसी हिम्मत नहीं कर सक रहा है।" हमारे महान् नेता पंडित नेहरू कई बार कह चुके हैं कि दुनिया का कोई मसला शस्त्र-बल से हल नहीं हो सकता। हमारे ये भाई, जो देश का नेतृत्व कर रहे हैं और जिन पर यह जिम्मेदारी देश ने डाली है, अहिंसा को दिल से मानते हैं। उनका हिंसा पर विश्वास नहीं है। फिर भी हालत यह है कि सेना को बनाने-बढ़ाने और उसे मजबूत करने की जिम्मेदारी उनको माननी पड़ती है। इस तरह विचित्र परिस्थिति में हम पड़े हैं।

बुद्धि और हृदय का भेद

स्थिति यह है कि हमें भासता है, श्रद्धा एक वस्तु पर है और क्रिया दूसरी ही करनी पड़ती है। हम चाहते तो यह हैं कि सारे हिन्दुस्तान में और दुनिया में अहिंसा चले। हम एक-दूसरे से न डरें, बल्कि एक-दूसरे को प्यार से जीतें। प्यार ही कामयाब हो सकता है और सबको जीत सकता है, ऐसा विश्वास दिल में भरा है। फिर भी एक दूसरी चीज हममें है, जिसे 'बुद्धि' नाम दिया जाता है। वैसे वह भी हृदय का एक हिस्सा है और हृदय भी उसका एक हिस्सा है, यों दोनों मिले-जुले हैं;

फिर भी हृदय कहता है कि हिंसा से कोई भी मसला हल नहीं होगा। एक मसला हल होता-सा दीखेगा, तो उसमें से दूसरे दसों नये मसले पैदा होंगे। लेकिन बुद्धि तो तीन गुणों से भरी है। उसमें कुछ विचार की शक्ति है और कुछ आवरण भी; कुछ दर्शन है और कुछ अदर्शन भी। ऐसी हमारी सम्मिश्र बुद्धि हमें कहती है कि "हम सेना को हटा नहीं सकते। जिस जनता के हम प्रतिनिधि हैं, वह उतनी मजबूत नहीं है। उसमें वह योग्यता नहीं है। इसलिए उसके प्रतिनिधि के नाते हम पर यह जिम्मेवारी आती है कि हम लश्कर बनायें, बढ़ायें और उसे मजबूत करें।" ऐसी आज हालत है।

आज दीखता है कि रचनात्मक कार्य करें, पर वह सिर्फ दिल की इच्छा है। बुद्धि कहती है कि "सेना बनानी होगी, इसलिए सेना-यंत्र जिससे मजबूत बन सकेगा, ऐसे यंत्रों को स्थान देना होगा।" जिनकी श्रद्धा चरखे पर कम है, उनकी बात छोड़ देता हूँ। लेकिन जिनकी चरखे पर पूरी श्रद्धा है, उनसे जब यह सवाल पूछा जाता है कि क्या चरखे और ग्रामोद्योग के जरिये आप युद्ध-यंत्र मजबूत बना सकते या खड़ा कर सकते हैं? तो उनकी बुद्धि और हमारी भी बुद्धि—क्योंकि उनमें हम भी सम्मिलित हैं—कहती है कि नहीं, इन छोटे-छोटे उद्योगों के जरिये हम युद्ध-यंत्र सज्ज नहीं कर सकते। 'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' के बारे में सरकार की इच्छा यह रही है कि वे पाँच लाख देहातों में चलें। अभी तो वह थोड़े-से देहातों में आरम्भ हुआ है, लेकिन इच्छा यही है कि वह और व्यापक बने और उसके जरिये राष्ट्र समृद्ध एवं लक्ष्मीवान् हो, गरीबी मिटे आदि। पर अगर कल दुनिया में महायुद्ध छिड़ जाय, तो मैं कह नहीं सकता कि एक भी कम्युनिटी प्रोजेक्ट जारी रहेगा। जिन्होंने इस योजना का उपक्रम किया, वे भी नहीं कह सकते कि वह रहेगा। तब फौरन बुद्धि जोर करेगी और हृदय छिप जायगा। हृदय पर बुद्धि गालिब हो जायगी और कहेगी कि अब तो राष्ट्र-रक्षण ही मुख्य वस्तु है।

यह मैं आत्मनिरीक्षण के तौर पर बोल रहा हूँ। जो आज वहाँ जिम्मेवारी के स्थान पर बैठे हुए हैं, उनकी जगह अगर हम बैठते, तो अभी वे जो कर रहे हैं, उससे बहुत कुछ भिन्न हम करते, ऐसा नहीं है। वह स्थान ही वैसा है। वह जादू की कुर्सी है। उस पर जो आरूढ़ होगा, उस पर एक संकुचित, सीमित,

बने-बनाये और अस्वाधीन दायरे में सोचने की ज़िम्मेदारी आती है। ऐसे दायरे में, जिसे मैंने 'अस्वाधीन' नाम दिया है, लाचारी से दुनिया का ओघ जिस दिशा में बहता हुआ दीख पड़ता है, उसी दिशा में सोचने की जिम्मेवारी उन पर आती है। अमेरिका, रूस-जैसे बड़े-बड़े राष्ट्र भी एक-दूसरे से डर रखते हैं और कम ताकतवर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान-जैसे राष्ट्र भी। इस तरह एक-दूसरों से डर रखते हुए, 'शस्त्र-बल से, सैन्य-बल से कोई मसला हल नहीं हो सकता', ऐसा विश्वास रहते हुए भी हम शस्त्र-बल और सैन्य-बल पर ही आधार रखते हैं, उसका आधार नहीं छोड़ सकते।

आज हम ऐसी विचित्र परिस्थिति में हैं। इस पर अगर कोई हमें दाम्भिक या ढोंगी कहेगा, तो वह वैसा कहने का हकदार साबित होगा, यद्यपि उसका कथन सही नहीं है। यदि हमारे दिल में कोई दूसरी बात है और उसे हम छिपाते हैं, तो हम जान-बूझकर ढोंगी हैं। लेकिन जहाँ दिल एक बात को कबूल करता है और परिस्थिति-जन्य बुद्धि दूसरी बात कहती है, इसलिए लाचारी से कोई बात करनी पड़ती है, तो वह दाम्भिकता की तो नहीं, बल्कि दयनीयता की स्थिति है। आज हम ऐसी दयनीय स्थिति में पड़े हैं।

अभी राजेन्द्रबाबू ने बताया कि सर्वोदय-समाज पर यह जिम्मेदारी है, क्योंकि लोगों को अपेक्षा है कि वह अपने मूल विचार पर कायम रहे और उसे आज की हालत में अमल में लाने के लिए वातावरण तैयार करे। अगर सर्वोदय-समाज यह करेगा, तो वह आज की हमारी राष्ट्रीय सरकार की सर्वोत्तम मदद होगी। मान लीजिये कि आज हममें से कोई मंत्री बन जाय और कुछ मंत्र करने लगे, तो उसका वह मंत्र और उसका वह तंत्र, दोनों मिलाकर आज की सरकार को वह उतनी मदद नहीं दे सकेगा, जितनी बिना सैन्य-बल के जिस तरह समाज बन सकता है, उस दिशा में काम करने से देगा।

स्वतन्त्र लोक-शक्ति का निर्माण

कभी-कभी लोग मुझसे पूछते हैं कि 'आप बाहर क्यों रहते हैं? देश की जिम्मेदारी आप क्यों नहीं उठाते?' मैं कहता हूँ कि दो बैल जब गाड़ी में लग चुके हैं, वहाँ मैं और एक तीसरा गाड़ी का बैल बन जाऊँ, तो उतने से गाड़ी

को क्या मदद मिलेगी ? अगर मैं वह रास्ता जरा ठीक बना दूँ, ताकि गाड़ी उचित दिशा में जाय, तो उसे अधिक-से-अधिक मदद पहुँचा सकता हूँ। हाँ, एक बात जरूर है कि अगर मैं बैल ही हूँ, तो मुझे बैल ही बनना चाहिए, वही काम करना चाहिए। मैं एक विशेष भाषा में बोल रहा हूँ और उम्मीद करता हूँ कि आप उसे सहन भी करेंगे। हमारी संस्कृति में बैल के लिए जितना आदर है, उतना मनुष्य के लिए भी नहीं है। और उसी अर्थ में मैं बोल रहा हूँ। जो राज्य की धुरा उठाता है, उसे हम 'धुरंधर' कहते हैं। धुरंधर के मानी होते हैं बैल ! धुरंधर हमें बनना पड़ता है। लेकिन जो लोग धुरंधर बन चुके हैं, वे कहते हैं कि अब आप वही काम मत करिये, जो हम कर रहे हैं। उस काम में आप मत लगिये, बल्कि जो कमियाँ हम महसूस करते हैं, उनकी पूर्ति कर सकें तो करें। इसी आशा से वे लोग हमारी तरफ देखते हैं। तो, यह हमें ठीक से समझना चाहिए और इस दृष्टि से स्वतन्त्र लोक-शक्ति निर्माण करनेवाले काम में ही लग जाना चाहिए। तभी हम आज की सरकार की सच्ची मदद और अपने देश की समुचित सेवा कर सकेंगे।

मैंने कहा कि 'हमें स्वतन्त्र लोक-शक्ति निर्माण करनी चाहिए।' इसका अर्थ यह है कि हिंसा-शक्ति की विरोधी और दंड-शक्ति से भिन्न लोक-शक्ति हमें प्रकट करनी चाहिए। आज की हमारी जो सरकार है, उसके हाथ में हमने दण्ड-शक्ति सौंप दी है। उस दंड-शक्ति में हिंसा का एक अंश जरूर है, फिर भी हम उसे 'हिंसा' नहीं कहना चाहते, हिंसा से अलग वर्ग में रखना चाहते हैं। हम उसे हिंसा-शक्ति से भिन्न दंड-शक्ति कहना चाहते हैं, क्योंकि वह शक्ति उनके हाथ में सारे समुदाय ने दी है। इसलिए वह निरी हिंसा-शक्ति नहीं, वरन् दंड-शक्ति है। किन्तु उस दंड-शक्ति का भी उपयोग करने का मौका न आये, ऐसी परिस्थिति देश में निर्माण करना हमारा काम होगा। अगर हम वह करेंगे, तो हमने स्वधर्म पहचाना और उस पर अमल करना जाना, यह माना जायगा। और अगर ऐसा नहीं करेंगे और दंड-शक्ति के उपयोग से ही हो सकनेवाली जन-सेवा का लोभ रखेंगे, तो जिस विशेष कार्य की हमसे अपेक्षा की जा रही है, उसे हम पूर्ण नहीं करेंगे। बल्कि संभव है कि हम बोझ-रूप भी साबित हों।

हमारा असली काम

मैं कुछ थोड़ा स्पष्टीकरण कर दूँ। मैंने कहा कि दंड-शक्ति के आधार पर सेवा के कार्य हो सकते हैं और वैसा करने के लिए ही हमने राज्य-शासन चाहा और हाथ में लिया है। जब तक समाज को वैसी जरूरत है, उस शासन की जिम्मेवारी हम छोड़ना नहीं चाहते। सेवा तो उससे जरूर होगी; पर वैसी सेवा नहीं, जिससे दंड-शक्ति का उपयोग ही न करने की परिस्थिति निर्माण हो।

मैं एक मिसाल दूँ। लड़ाई चल रही है। सिपाही जख्मी हो रहे हैं। उन सिपाहियों की सेवा में जो लोग लगे हैं, वे भूतदया से परिपूर्ण होते हैं। वे शत्रु-मित्र तक नहीं देखते, अपनी जान खतरे में डालकर युद्ध-क्षेत्र में पहुँचते और ऐसी सेवा करते हैं, जैसी माता ही अपने बच्चों की कर सकती है। इसलिए वे दयालु होते हैं, इसमें कोई शक नहीं। वह सेवा कीमती है, यह हर कोई जानता है। लेकिन युद्ध को रोकने का काम वे नहीं कर सकते। उनकी दया युद्ध को मान्य करनेवाले समाज का एक हिस्सा है। जैसे एक यन्त्र में छोटे-बड़े अनेक चक्र होते हैं, वे एक-दूसरे से भिन्न दिशाओं में काम करते होंगे, फिर भी उस यन्त्र के ही अंग हैं। तो, एक ही युद्ध-यन्त्र का एक अंग है, सिपाहियों को कत्ल किया जाय और उसीका दूसरा अंग है, जख्मी सिपाहियों की सेवा की जाय। उनकी परस्परविरोधी दोनों गतियाँ स्पष्ट हैं। एक क्रूर कार्य है तो दूसरा दया-कार्य है, यह हर कोई जानता है। पर उस दयालु हृदय की वह दया और उस क्रूर हृदय की वह क्रूरता, दोनों मिलकर युद्ध बनता है। दोनों युद्ध बनाये रखने-वाले दो हिस्से हैं। वैज्ञानिक कठोर भाषा में बोलना हो, तो जब तक हमने युद्ध को कबूल किया है, तब तक चाहे हमने उसमें जख्मी सिपाही की सेवा का पेशा लिया हो, चाहे सिपाही का, हम दोनों युद्ध के गुनहगार हैं।

मैंने यह मिसाल इसलिए दी कि सिर्फ दयालु कार्य करने से यह न समझ लें कि हम दया का राज्य बना सकेंगे। राज्य तो निठुरता का है। उसके अंदर दया, रोटी के अंदर नमक-जैसी रुचि पैदा करने का काम करती है। जख्मी सिपाहियों की उस सेवा से हिंसा में लज्जत पैदा होती है, युद्ध में रुचि पैदा होती है, परंतु

उस दया से युद्ध की समाप्ति नहीं हो सकती। अगर हम लोग इस तरह की दया का काम करें, जिससे निठुरता के राज में दया प्रजा के नाते रह जाय। निर्दयता की हुकूमत में दया चले, तो हमने अपना असली काम नहीं किया। इस तरह जो काम दया के दीख पड़ते हैं, जो रचनात्मक भी दीख पड़ते हैं, उन्हें हम दया और रचना के लोभ से व्यापक दृष्टि के बिना ही उठा लें, तो कुछ तो सेवा हमसे बनेगी, पर वह सेवा नहीं बनेगी, जिसकी जिम्मेदारी हम पर है और जिसे हमने और दुनिया ने अपना स्वधर्म माना है।

प्रेम पर भरोसा

मैं दूसरी स्पष्ट मिसाल देता हूँ। मुझे हर कोई पूछता है कि 'आपका वजन सरकार पर भी कुछ दीखता है। तो, आप यह क्यों नहीं जोर लगाते कि सरकार कोई कानून बना दे और बिना मुआवजे के भूमि-वितरण का कोई मार्ग खोल दे। आप अपना वजन क्यों नहीं इस दिशा में इस्तेमाल करते?' मैं उनसे कहता हूँ कि 'भाई, कानून के मार्ग को मैं रोकता नहीं। अगर आप अपनी इच्छित दिशा में इससे ज्यादा और एक कदम मुझसे चाहते हैं, तो मैं कहता हूँ कि जो मार्ग मैंने अपनाया है, उसमें यदि मुझे पूरा सोलह आने यश नहीं मिला; बारह आने, आठ आने भी मिला, तो कानून के लिए सहूलियत ही होगी। इस तरह एक तो मैं कानून को बाधा नहीं पहुँचा रहा हूँ। दूसरे, कानून को सहूलियत भी दे रहा हूँ। उसके लिए अनुकूल वातावरण बना रहा हूँ, ताकि कानून आसानी से बनाया जा सके। पर इससे भी एक कदम आगे आपकी दिशा में जाऊँ, और यही रटन रटूँ कि 'कानून के बिना यह काम नहीं होगा, कानून बनाना चाहिए', तो मैं स्वधर्मविहीन साबित होऊँगा। मेरा वह धर्म नहीं है। मेरा धर्म तो यह मानने का है कि बिना कानून की मदद से जनता के हृदय में हम ऐसे भाव निर्माण करें, ताकि कानून कुछ भी हो, लोग भूमि का बँटवारा करें। क्या किसी कानून के कारण माताएँ बच्चों को दूध पिला रही हैं?

मनुष्य के हृदय में ही कोई ऐसी शक्ति होती है, जिससे उसका जीवन समृद्ध हुआ है। मनुष्य प्रेम पर भरोसा रखता है। वह प्रेम में से पैदा हुआ है, प्रेम

से पलता है और आखिर जब दुनिया को छोड़कर जाता है, तब भी प्रेम की ही निगाह से जरा इर्द-गिर्द देख लेता है। उस समय उसके प्रेमीजन अगर उसे दीख जाते हैं, तो सुख से वह देह और दुनिया को छोड़कर जाता है। प्रेम की शक्ति का इस तरह अनुभव होते हुए भी उसको अधिक सामाजिक स्वरूप में विकसित करने की हिम्मत रखने के बजाय मैं अगर कानून-कानून रटता रहूँ, तो जन-शक्ति निर्माण करके सरकार जो हमसे मदद चाहती है, वह मैंने दी, ऐसा नहीं होगा। इसलिए दंड-शक्ति से भिन्न जन-शक्ति मैं निर्माण करना चाहता हूँ और हमें वही निर्माण करनी चाहिए। यह जो जन-शक्ति हम निर्माण करना चाहते हैं, वह दंड-शक्ति की विरोधी है, ऐसा मैं नहीं कहता। वह हिंसा की विरोधी है। लेकिन मैं इतना ही कहता हूँ कि वह दंड-शक्ति से भिन्न है।

हमारी कार्य-पद्धति

मैं तीसरी मिसाल दूँ। अभी 'खादी-बोर्ड' बन रहा है। सरकार खादी को मदद देना चाहती है। पण्डित नेहरू ने कहा : 'मुझे आश्चर्य हो रहा है कि जो काम चार साल पहले ही होना चाहिए था, वह इतनी देरी से क्यों हो रहा है ?' वे महान् हैं। उनका हृदय महान् है। वे आत्म-निरीक्षण करते और इस तरह की भाषा बोलते हैं। अब हमारा काम है, चरखा-संघ का काम है कि जब सरकार खादी को बढ़ावा देना चाहती है, खादी का उत्पादन बढ़ाना चाहती है, तो हम उसे कुछ मदद दें। क्योंकि चरखा-संघ को इस काम का अनुभव है और अनुभवियों की मदद ऐसे काम के लिए जरूरी है। फिर भी मैं सोचता हूँ कि एक नागरिक और एक माहिर के नाते अपनी सरकार को जरूर मदद देनी चाहिए; लेकिन अगर हम उसीमें खतम हो जायँ, समाप्त हो जायँ, तो हमने वैसी सेवा खादी की नहीं की, जैसी कि हमसे अपेक्षा की जाती है। हमें तो अपनी खादी की दृष्टि स्पष्ट और शुद्ध रखनी चाहिए और उस दिशा में काम करते हुए सरकार को जो खादी-उत्पादन में मदद पहुँचानी हो, वह पहुँचानी चाहिए। हमें युद्ध मिटाने के तरीके ढूँढ़ने चाहिए और तिस पर भी युद्ध चलें तथा हमें जख्मी सिपाहियों की मदद में जाना पड़े, तो जाना चाहिए। यह तो युद्ध का हिस्सा ही है, ऐसा कहकर हम उसका इनकार करेंगे, ऐसी बात नहीं; पर ध्यान में रखेंगे कि वह

हमारा अमली असली काम नहीं है। हमारा खादी-काम ग्राम-राज्य की स्थापना के लिए हो सकता है।

इस बार पं० नेहरू मिलने आये, और बड़े प्रेम से बोले। मैंने नम्रता से उनका बहुत कुछ सुन लिया। फिर जब उन्होंने कुछ सलाह-मशविरा करना चाहा, तो मैंने अपने विचार थोड़े में प्रकट किये। मैंने कहा कि 'खादी और ग्रामोद्योग के लिए सरकार की तरफ से अगर मैं कोई चीज चाहता हूँ, तो मैं कहूँगा कि—जैसे हरएक नागरिक को पढ़ना-लिखना आना ही चाहिए, क्योंकि नागरिकत्व का वह अनिवार्य अंश है, ऐसा हम मानते हैं। इसीलिए हमारी सरकार सबको शिक्षित बनाने की, पढ़ना-लिखना सिखाने की, जिम्मेदारी महसूस करती है, मान्य करती है। वह चाहे उस पर पूरा अमल न करने पाये, परिस्थिति के कारण आंशिक अमल करे; लेकिन जब तक उसका पूरा अमल नहीं हुआ है, सारे-के-सारे लोग पढ़ना-लिखना नहीं जान गये हैं तब तक हमने अपना काम पूरा नहीं किया, इस तरह का खटका दिल में रहेगा। वैसे ही—हमारी सरकार यह माने, यह विचार कबूल करे कि हिन्दुस्तान के हरएक ग्रामीण को, हरएक नागरिक को सूत कातना सिखाना चाहिए। जो ग्रामीण, जो नागरिक सूत कातना नहीं जानते, वे अशिक्षित हैं, इतना मान ले और बाकी का सब काम जनता करे। हम सरकार से पैसे की मदद नहीं मागते। परन्तु यह विचार अगर वह स्वीकार कर लेती है, तो उसके कारण हमें अधिक-से-अधिक मदद मिल सकती है।

उन्होंने यह सब सुन लिया। मैं समझता हूँ कि उनके हृदय को तो वह जँचा ही होगा, पर सहज विनोद में उन्होंने पूछा कि 'अगर सबको सूत कातना सिखा दें, तो उसके उपयोग का सवाल आयेगा ?' मैंने जवाब दिया कि 'पढ़ना-लिखना सिखाने पर भी तो उसके उपयोग का सवाल रहता ही है। मैंने ऐसे कई पढ़े-लिखे भाई देखे हैं, जो थोड़ा-सा दो-चार साल पढ़े और उसका उनको जिन्दगीभर कोई उपयोग नहीं हुआ। उनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर होता है। 'योग' के साथ 'क्षेम' लगा है। यह चिन्ता करनी पड़ती है। पर आप देखेंगे कि मैंने खादी के लिए सिर्फ इतनी ही माँग की है। जब कि जनता की सरकार है,

और जनता की तरफ से माँग होगी, तो सरकार को उतना करना ही चाहिए परन्तु इससे अधिक अगर कानून से लोगों पर खादी लादने की बात होगी, याने मैं ऐसी माँग करूँ, तो मैं कहता हूँ कि मैंने अपना काम समझा नहीं। दंड-शक्ति से भिन्न लोक-शक्ति हमें निर्माण करना है, यह सूत्र मैं भूल गया।'

ये दो मिसालें सहज दीं, एक खादी की और दूसरी भूमि-दान की। हम भूमि का मसला हल करने जायँगे, तो हमारा एक तरीका होगा और लोकतांत्रिक सरकार का दूसरा। अगर सरकार उसे हल कराना चाहेगी, तो दण्ड-शक्ति का उपयोग करेगी और वैसा करेगी, तो उसको कोई दोष भी नहीं देगा। लेकिन सरकार की इस तरह की मदद से जन-शक्ति निर्माण नहीं होगी, लक्ष्मी भले ही निर्माण हो। किन्तु हमारा उद्देश्य सिर्फ लक्ष्मीनिर्माण करना नहीं, बल्कि जन-शक्ति निर्माण करना होगा। यह सारी दृष्टि हमारे काम के पीछे है। जब हमारी यह दृष्टि स्थिर हो जाय, तो फिर कार्यपद्धति क्या होगी, इसका विशेष वर्णन करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। हर कोई सोचेगा कि हरएक रचनात्मक काम करने में हमारी एक विशेष पद्धति होगी। उस पद्धति से काम करने पर आखिर यह परिणाम अपेक्षित होगा कि लोगों में दंड-निरपेक्षता निर्माण हो।

इस दृष्टि से यदि सोचेंगे, तो सहज ही ध्यान में आयेगा कि हमारी कार्यपद्धति के दो अंश होंगे : पहला विचार-शासन और दूसरा, कर्तृत्व-विभाजन। मुझे जो शास्त्रीय-शब्द बनाने की आदत है, क्योंकि संस्कृत भाषा ही में विशेष जानता हूँ, इसलिए संस्कृत शब्द आ जाते हैं। तो, आप जरा मुझे क्षमा करेंगे।

विचार-शासन

विचार-शासन, याने विचार समझाना और समझना, बिना विचार समझे किसी बात को कबूल न करना, बिना विचार समझे अगर कोई हमारी बात कबूल करता है तो दुखी होना, अपनी इच्छा दूसरों पर न लादना, बल्कि केवल विचार समझा करके ही सन्तुष्ट रहना। कुछ लोग हमारे सर्वोदय-समाज की योजना या रचना को "लूज आर्गनाइजेशन" याने "शिथिल रचना" कहते हैं। रचना को अगर हम शिथिल करें, तो कोई काम नहीं बनेगा। इसलिए रचना शिथिल न

होनी चाहिए। पर यह 'शिथिल रचना' न होते हुए 'अरचना' है, याने केवल विचार के आधार पर हम खड़े रहना चाहते हैं। हम किसीको आदेश नहीं देते जिसे कि वे बिना समझे-बूझे ही अमल में लायें। साथ ही हम किसीका आदेश कबूल भी नहीं करते, जिस पर कि बिना सोचे और बिना पसन्द किये हम अमल करते जायँ। बल्कि हम तो सलाह-मशविरा करते हैं। कुरान में भक्तों का लक्षण गाया गया है कि उनका 'अम्र' याने काम परस्पर के सलाह मशविरे से होता है। हम मशविरा करेंगे और तब बहुत खुश होंगे कि हमारी चीज हमारे सुननेवाले ने मान्य नहीं की और उस पर अमल नहीं किया जब कि उसको वह पसन्द नहीं आयी। उसके अमल न करने से हमें बहुत खुशी होगी। बिना समझे-बूझे अगर वह अमल करता है, तो हमें बहुत दुःख होगा। मैं अपनी इस रचना में जितनी ताकत देखता हूँ उतनी और किसी कुशल, स्पष्ट और अनुशासन-बद्ध रचना में नहीं देखता। अनुशासन-बद्ध दण्ड-युक्त रचना में शक्ति नहीं होती, यह बात नहीं। लेकिन वह शक्ति नहीं होती, जो शिव-शक्ति है, और जो हमें पैदा करनी है, हमारे लिहाज से वह शक्ति ही नहीं है। इसीलिए विचार-शासन को हम मानना चाहते हैं। अगर यह ध्यान में आयेगा, तो विचार का निरन्तर प्रचार करना हमारा एक कार्यक्रम बन जायगा, जो हम नहीं कर रहे हैं और जो हमें करना चाहिए।

जब मैं इस दृष्टि से सोचता हूँ, तो बुद्ध भगवान् ने भिक्षु-संघ क्यों बनाये और शंकराचार्य ने यति-संघ क्यों बनाये, इसका रहस्य खुल जाता है। फिर भी उन संघों के जो अनुभव आये हैं, उनके गुण-दोषों की तुलना कर मैंने अपने मन में यही निर्णय लिया है कि हम ऐसे संघ नहीं बनायेंगे; क्योंकि उनमें उनके गुणों से उनके दोष अधिक होते हैं, यह अनुभव आया है। पर उनको संघ क्यों बनाने पड़े, इसका खयाल आ जाता है। निरन्तर, अखंड बहते हुए झरने की तरह सतत घूमनेवाले और लोगों के पास सतत विचार पहुँचानेवाले लोग होने चाहिए। उसके बगैर सर्वोदय-समाज काम नहीं कर पायेगा। लोगों के पास पहुँचने के जितने मौके मिलेंगे, उतने प्राप्त करने चाहिए। लोग एक बार कहने पर नहीं सुनते, इसलिए दुबारा कहने का मौका आये, तो उससे खुशी होनी

चाहिए। इतना विचार-प्रचार का उत्साह और इतनी विचार पर श्रद्धा-निष्ठा हममें होनी चाहिए। लेकिन हमारी हालत ऐसी हुई है कि हममें से बहुत-से लोग भिन्न-भिन्न संस्थाओं में गिरफ्तार हो गये हैं। यद्यपि वे संस्थाएँ महत्त्व की हैं, तो भी हमें संस्था की आसक्ति न हो, भक्ति रहे। उनका काम जारी रखें, लेकिन संस्था में कुछ मनुष्य ऐसे हों, जो घूमते रहें। इस तरह की रचना और ऐसा कार्यक्रम हम नहीं करेंगे, तो हमारा विचार क्षीण होगा और विचार-शासन नहीं चलेगा।

बिहार के लोग कुछ अभिमान से कहते हैं और उन्हें अभिमान करने का हक भी है कि सर्वप्रथम बिहार की कांग्रेस ने भूदान-यज्ञ का काम उठाया और उसके बाद हैदराबाद में अ० भा० कांग्रेस ने उसको स्वीकार किया। तो होता क्या है? ऊपर से एक 'सरक्यूलर' (पत्रक) आता है: "भूदान में मदद देना कांग्रेसवालों का कर्तव्य है।" गंगा हिमालय से गिरती है और हरिद्वार आती है। इसी तरह वहाँ का पत्रक प्रांतिक समिति में आता है। फिर हिमालय से हरिद्वार आने पर गंगा आगे बहती है और गढ़मुक्तेश्वर जाती है। यह पत्रक भी प्रांतिक समिति से जिला आफिस में आता है। गंगा कहीं-से-कहीं भी जाय, पर वह पानी ही रहती है, गंगा ही रहती है। उसी तरह पत्रक में से पत्रक पैदा होते हैं। मैंने विनोद के तौर पर एक दफा कहा था कि हरएक जाति अपनी जाति को ही पैदा करती है। वैसे ही पत्रक भी पत्रक ही पैदा कर सकता है। आखिर काम कौन करेगा? काम तो करना होगा ग्राम के लोगों को, तो ग्राम के लोगों तक वह पहुँचता कहाँ है? वह तो एक आफिस में से दूसरे आफिस में जाता है, वहाँ से तीसरे आफिस में जाता है, सिर्फ इतना ही होता है। भूदान-यज्ञ के ये हमारे कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकते, जब तक कि हम घर-घर नहीं पहुँचते। हम पाँच लाख देहातों से पचीस लाख एकड़ जमीन हासिल करना चाहते हैं। यों तो आसान काम दीखता है। प्रति गाँव पाँच एकड़ कोई बड़ी बात नहीं। लेकिन उतने गाँवों तक पहुँचे कौन? इसके लिए हमारे पास मुख्य साधन विचार-प्रचार ही हो सकता है। इसलिए उसकी योजना हमें करनी चाहिए।

अगर इसके लिए हमारी हिम्मत नहीं होती; इतने गाँवों में हम कैसे जायँगे, कैसे घूमेंगे, ऐसा सब लगता है और हम यह 'छोटा काट'—जिसे अंग्रेजी में 'शार्ट कट' कहते हैं—चाहते हैं कि कानून बने, फलाना बने, तो यह बनाना और वैसी इच्छा रखना हमारा काम नहीं है। कानून बने और जरूर बने, जल्द बने और अच्छा बने; पर उस काम में हम लगेंगे, तो हम परधर्म का आचरण करेंगे, स्वधर्म का नहीं। हमारा स्वधर्म तो यही होगा कि गाँव-गाँव घूमना शुरू करें और विचार पर विश्वास रखें। यह न कहें कि 'अरे, विचार सुनने-सुनाने से कब काम होगा?' विचार से ही काम होगा, क्योंकि हमारा काम विचार से ही हो सकता है। इस तरह यह विचार की सत्ता और विचार-शासन हमारा एक औजार है।

कर्तृत्व-विभाजन

और दूसरा औजार है कर्तृत्व-विभाजन। सारा कर्तृत्व, सारी कर्म-शक्ति एक केन्द्र में केंद्रित न हो, बल्कि गाँव-गाँव में कर्म-शक्ति, कर्म-सत्ता निर्मित होनी चाहिए। इसलिए हम चाहते हैं कि हरएक गाँव को यह हक हो कि उस गाँव में कौन सी चीज आये और कौन-सी न आये, इसका निर्णय वह कर सके। अगर कोई गाँव चाहता है कि उस गाँव में कोल्हू चले और मिल का तेल न आये, याने वह अपने गाँव में मिल का तेल आने से रोके, तो उसे रोकने का हक होना चाहिए। जब हम यह बात कहते हैं, तो अधिकारी कहने लगते हैं कि इस तरह एक बड़ी स्टेट के अंदर एक छोटी स्टेट नहीं चल सकती। इस पर मैं कहता हूँ कि अगर हम सत्ता और कर्तृत्व का विभाजन नहीं करते, तो सेना-बल अनिवार्य है, यह समझ लीजिये। फिर सेना के बगैर आज तो चलेगा ही नहीं, और कभी भी नहीं चलेगा। फिर कायम के लिए यह तय करिये कि सेना-बल से काम लेना है और सेना सुसज्ज रखनी है। फिर यह मत कहिये कि हम कभी-न-कभी सेना से छुटकारा चाहते हैं। अगर आप कभी-न-कभी सेना से छुटकारा चाहते हों, तो परमेश्वर-जैसा हमें भी करना होगा। परमेश्वर ने अक्ल का विभाजन कर दिया। हरएक को अक्ल दे दी—बिच्छू को भी और साँप को भी, शेर को भी और मनुष्य को

भी। कम-बेशी सही, लेकिन हरएक को अक्ल दे दी और कहा कि अपने जीवन का काम अपनी अक्ल के आधार से करो। तब सारी दुनिया इतनी उत्तम चलने लगी कि वह विश्रांति ले पाता है, यहाँ तक कि लोगों को शंका भी होती है कि परमेश्वर है या नहीं ? हमें भी राज्य ऐसे ही चलाना होगा कि लोगों को यह शंका होने लगे कि आखिर यहाँ कोई राज्य-सत्ता है या नहीं ! हिन्दुस्तान में शायद राज्य-सत्ता नहीं है, ऐसा भी लोग कहें। तभी हमारा राज्य-शासन अहिंसक होगा।

इसीलिए हम ग्राम-राज्य का उद्घोष करते और चाहते हैं कि ग्राम में नियंत्रण की सत्ता हो। अर्थात् ग्रामवाले नियंत्रण की सत्ता अपने हाथ में लें। यह भी एक जन-शक्ति का प्रश्न आया कि गाँववाले खुद खड़े हो जायँ, निर्णय करें कि फलानी चीज हमें पैदा करनी है और सरकार के पास माँग करें कि फलाना माल यहाँ नहीं आना चाहिए, उसे रोकिये। अगर वे रोकना चाहते हैं, फिर भी मान लीजिये कि रोक नहीं सकते, तो उन्हें उसके विरोध में खड़े होने की हिम्मत करनी होगी। इससे उस सरकार को अत्यंत मदद पहुँचेगी, क्योंकि उसीसे सैन्य-बल का छेद होगा। इसके बगैर सैन्य-बल का कभी छेद नहीं हो सकता। यह कभी नहीं हो सकता कि दिल्ली में ऐसी कोई अक्ल पैदा हो जाय—चाहे वह ब्रह्मदेव की अक्ल हो—जिसे चार दिमाग हों और जो चारों दिशाओं में देख सके। कितनी ही बड़ी अक्ल क्यों न हो, यह हो नहीं सकता कि उसके यहाँ से हरएक गाँव के सारे कारोबार का नियंत्रण और नियोजन हो और वह सारा-का-सारा सबके लिए लाभदायी हो। इसलिए 'नेशनल प्लैनिंग' (राष्ट्रीय नियोजन) के बजाय 'विलेज प्लैनिंग' (जिलों का नियोजन) होना चाहिए। 'बजाय' मैंने कह दिया, पर बेहतर तो कहना यह होगा कि 'नेशनल प्लैनिंग का ही अर्थ विलेज प्लैनिंग हो।' उस विलेज प्लैनिंग की मदद के लिए और जो कुछ करना पड़े, उतना दिल्ली में किया जायगा। यह है हमारे कार्यक्रम का दूसरा अंश कर्तृत्व-विभाजन। हम जो कुछ करते हैं, वह सारा कर्तृत्व-विभाजन की दिशा में ही। इसीलिए हम गाँवों में जमीन का बँटवारा करना चाहते हैं।

जमीन के बारे में जब कभी सवाल पैदा होता है, तो लोग यही कहते हैं कि 'सीलिंग' बनाओ। अधिक से-अधिक जमीन कितनी रखी जाय, यह सोचो,

ऐसा आजकल लोग बोलने लगे हैं। जब कि यह भूदान-यज्ञ का आंदोलन जोर पकड़ रहा है और जनता में एक भावना पैदा हो रही है, तब यह बात बोली जा रही है। लेकिन मैं कहता हूँ कि पहले तो कम-से कम जमीन हरएक को देना है, यह तय करो। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि कर्तृत्व-विभाजन चाहता हूँ। आज सारे मजदूर दूसरों के हाथ में काम कर रहे हैं। काम तो वे करते हैं; लेकिन उनमें कर्तृत्व नहीं है। गाड़ी चलती है, लेकिन उसे हम कर्ता नहीं कहते, क्योंकि वह चेतन-विहीन है। इसी तरह ये जो मजदूर खेतों में काम करते हैं, वे चेतनविहीन जैसा काम करते हैं। हाथों से काम करते हैं, पाँवों से काम करते हैं। लेकिन उनके दिमाग से, उनके दिल से यह काम हो, यह हम चाहते हैं। लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान के मजदूरों में इतनी अक्ल नहीं है, इसलिए उनका दूसरों के हाथ में रहना ही बेहतर है। तो, मैं कहता हूँ कि यह अहिंसा का तरीका नहीं है। उनमें जो अक्ल है, अगर हम उसका परित्याग कर दें तो दूसरी कोई अक्ल, दूसरा कोई खजाना हमारे पास नहीं है।

माना कि एक मजदूर की अक्ल से किसी पूँजीवाले भाई की अक्ल ज्यादा है। लेकिन कुल मिलाकर देश में मजदूरों की जो अक्ल है, उसकी बराबरी दूसरी कोई अक्ल नहीं कर सकती। अगर उस अक्ल का हमें उपयोग न मिले, तो हमारा देश बहुत खो देगा। इसलिए जरूरी है कि मजदूरों की अक्ल का, जैसी भी वह आज है, पूरा उपयोग हो। इसके साथ-साथ उनकी अक्ल बढ़े, ऐसी भी योजना चाहिए। उनकी अक्ल बढ़ाने की जो भी योजना करेंगे, उसमें यह भी एक योजना होगी कि उन्हें जमीन दी जाय। अलावा इसके कि हम उन्हें और तालीम दें, उनके हाथ में जमीन देना भी तालीम का एक अंग और उनकी अक्ल बढ़ाने का एक साधन भी होगा।

भू-दान-यज्ञ में सबका आवाहन

भूमि-दान-यज्ञ का काम हमने शुरू किया है। इस संबंध में जो मेरे मन में और मेरी जबान पर है, वह यह कि कम-से-कम पाँच करोड़ एकड़ जमीन इस हाथ से उस हाथ में जानी चाहिए। यह काम हमें १९५७ के पहले खतम करना है। अगर इस काम में हम सब लग जायँगे—हम सब याने आप और

२

हम, जो सर्वोदय-समाज के लोग माने जाते हैं उतने ही नहीं, बल्कि कांग्रेसवाले, प्रजा-समाजवादी आदि, जो कि इस विचार को कबूल करते हैं, सारे इस काम में लग जायँगे—तो इस मसले को हम हल करके रहेंगे; फिर वह चाहे सोलह आना यश पाकर बिना कानून के हो जाय, चाहे बारह आना या आठ आना यश पाकर कानून की पूर्ति से पूरा हो जाय, मैं भविष्यवादी नहीं हूँ। जिस किसी तरह से वह हो जाय, प्रधानतया जन शक्ति से होना चाहिए। अगर पूर्णतया जन-शक्ति से हो, तो मैं नाचने लगूँगा। लेकिन प्रधानतया जन-शक्ति से हुआ, तो भी संतोष मानूँगा। अगर १९५७ के पहले हम इतना कर लेते हैं, तो आगे जो चुनाव होगा, वह पक्षों के बीच न होगा। ऐसे पक्षों के बीच, जिनमें बहुत सारे सज्जन पड़े हैं। आज हालत यह है कि इस पक्ष में भी सज्जन हैं, उस पक्ष में भी सज्जन हैं, और भीष्म-अर्जुन युद्ध हो रहा है। हम राम-रावण-युद्ध चाहते हैं, भीष्मार्जुन युद्ध नहीं। दोनों पक्षों में सज्जन हैं, तो वे एक क्यों नहीं हो सकते? अगर कोई कार्यक्रम ऐसा मिले, जिस पर वे एकत्र हो जायँ, तो उनके बीच जो आज दूसरे मतभेद हैं, वे फौरन मिट जायँगे। हमारा यह कार्यक्रम बुनियादी है। आज समाजवादी मुझसे कहते हैं कि 'आपने यह कार्यक्रम तो हमारा उठा लिया।' मैं कहता हूँ कि मुझे कबूल है और इसलिए मेहरबानी करके मुझे मदद दीजिये। कांग्रेसवाले कहते हैं कि 'यह तो कार्यक्रम बहुत अच्छा है, हमें करना ही था', तो उनसे भी हम मदद चाहते हैं। जनसंघवाले भी कहते हैं कि 'आपका कार्यक्रम भारतीय संस्कृति के अनुकूल है और इसलिए अच्छा है। इस तरह भिन्न-भिन्न विचारवाले भी इस कार्यक्रम को पसन्द करते हैं। इसलिए अगर हम सब इस काम में लग जायँ, तो संभव है कि आगामी चुनाव में बहुत-से मतभेद न रहें और अच्छे-से-अच्छे लोग चुने जायँ। इस तरह हुआ, तो इसके आगे जो सरकार बनेगी, वह बहुत शक्तिशाली होगी। यही एक उम्मीद इस कार्य-क्रम में से मैंने की है।

संपत्ति-दान-यज्ञ

इसके साथ-साथ मैंने एक दूसरा भी कार्यक्रम शुरू कर दिया है, जिसे 'संपत्ति-दान-यज्ञ' नाम दिया गया है। इसके बगैर भूमि-दान-यज्ञ सफल नहीं

होगा और न उसके बगैर आर्थिक आजादी एवं आर्थिक साम्य का हमारा कार्यक्रम ही पूरा होगा। आरम्भ से ही मैं इस चीज को पहचानता था; लेकिन "एक साधे सब सधे", दो बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। भूमि का सवाल जितना बुनियादी था, उतना सम्पत्ति का नहीं। इसलिए जब तेलंगाना में परमेश्वर का इशारा हुआ, तो उस इशारे से, काम करना मुझे अच्छा लगा। इसलिए आरंभ में इतना ही लिया। लेकिन बाद में मैंने देखा कि बिहार का मसला हल करने की बात चली, तो वह भूमि-दान के साथ-साथ संपत्ति-दान-यज्ञ भी चलने पर ही होगा। इसमें हम संपत्ति अपने हाथ में नहीं लेंगे, बल्कि उसमें भी कर्तृत्व-विभाजन चाहते हैं। याने जो सम्पत्ति देगा, वह हमारे निर्देश के मुताबिक उसका इस्तेमाल करेगा, यह हमारी योजना है। पर सम्पत्ति-दान-यज्ञ का व्यापक प्रचार वैसा सामुदायिक तौर पर करने का नहीं है, जैसा कि भूमि-दान-यज्ञ का प्रचार हम व्याख्यान के जरिये गाँव-गाँव में जाकर करते हैं। यह काम व्यक्तिगत तौर पर, प्रेम से जिनसे बात हो सकती है, उनके हृदय और कुटुम्ब में, उनके विचारों में प्रवेश करके करने का है। अभी तक जिस किसीने संपत्ति-दान-यज्ञ में दान दिया है, वह प्रतिवर्ष देने का है, यानी जिन्दगीभर देने की बात है। उसे मैंने काफी जाँचा है और जाँच करके ही कबूल किया है। यानी उत्तेजन देने के बजाय कुछ थोड़ा नियन्त्रण ही मैंने किया है। अभी करीब चालीस-पैंतालीस लोगों के नाम मेरे पास हैं; उसका ज्यादा जिक्र यहाँ बढ़ाना नहीं चाहता; पर इतना कहता हूँ कि आपमें से जिनके पास कोई गठरी होगी, उसे खोल उन्हें इसमें शरीक होना चाहिए और अपने मित्रों में प्रेम से इसका प्रचार करना चाहिए। मैं इतना ही कहता हूँ कि ये दो काम परस्परपूरक हैं। अभी पचीस लाख एकड़ का जो हमने संकल्प किया है, उसी पर जोर देना है। संपत्ति-दान सार्वजनिक तौर पर अभी नहीं चलाना है, पर व्यक्तिगत तौर पर जितना हो सकता है, उतना हम करें।

सूतांजलि—सर्वोदय का वोट

इन दो कामों के अलावा एक तीसरी चीज जो हम कर रहे हैं, उसे हम 'सूतांजलि' कहते हैं। यह एक बड़ी शक्तिशाली वस्तु है। उस शक्ति को हम

पहचान नहीं सके हैं। हम बापू की स्मृति और शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा की मान्यता के रूप में, देश में देश की लक्ष्मी बढ़ाने की जिम्मेवारी महसूस करते हुए सूतांजलि समर्पण करें। इसे मैंने सर्वोदय का 'वोट' माना है। यह एक बड़ी बात है। इसमें सिर्फ रुकावट यही है कि घर-घर जाना पड़ेगा, गाँव-गाँव जाना पड़ेगा। लेकिन इसे मैं रुकावट नहीं कहता, बल्कि यह हमारे काम के लिए एक प्रोत्साहक वस्तु है। याने इस निमित्त से घर-घर जाने का मौका मिलेगा। इसलिए इस काम में बढ़ावा देना चाहिए, और अगर हो सके तो जैसे हम पचीस लाख एकड़ जमीन की बात करते हैं, वैसे ही लाखों गुंडियाँ हमें प्राप्त करनी चाहिए। श्रम-प्रतिष्ठा बढ़ाने में उसका बहुत उपयोग होगा।

श्रम-प्रतिष्ठा

इसके अलावा और एक बात हम इसमें से चाहते हैं। आज तक हमने जो संस्थाएँ चलायीं, वे पैसे का आधार लेकर चलायीं। अर्थात् पैसेवाले लोग—जो कि हमारे मित्र थे, प्रेमी थे, हमसे सहानुभूति रखते थे, जिनके हृदय शुद्ध थे—हमें मदद देते थे और हम लेते थे। इसमें हम कुछ गलती करते थे, ऐसी बात नहीं। पर अब जमाना बदल गया और श्रम का जमाना आया है, उसकी भी प्रतिष्ठा हमें बढ़ानी चाहिए। अतः अगर हम हरएक प्रान्त में एक-आध संस्था ऐसी बना सकें तो बनायें, जो आरंभ में श्रम के आधार पर ही चले और यदि लेना है, तो श्रम का ही दान ले। अगर यह सूतांजलि की बात फैली, तो ऐसी संस्थाएँ हम चला सकते हैं। उसमें से तेजस्वी कार्यकर्ता निर्माण हो सकते हैं, जो प्रचार में भी लग सकते और काम में भी लग सकते हैं। यह एक और हमारी योजना है।

मैंने विचार के जितने अंग थे, थोड़े में आप लोगों के सामने रखे। सर्वोदय-समाज की सभा में हम आते हैं, तो और भी जीवन की कई बातों का विचार, चर्चा आदि करते हैं, वह हम करें। लेकिन यह जो मुख्य-मुख्य बातें मैंने बतायीं, उन पर आप अवश्य सोचें, चिंतन-मनन करें और उस दिशा में अगला एक साल हम बितायें, यही हम चाहते हैं।

हम मनुष्य-मात्र हैं

आखिर में दो शब्द कहना चाहता हूँ। हमारा यह काम किसी एक संप्रदाय का काम नहीं है। 'सर्वोदयवाले' यह शब्द हमें सुनाई देना नहीं चाहिए। यह शब्द ही गलत है। हम केवल मनुष्य-मात्र हैं, मानव से भिन्न हम कोई नहीं हैं। नहीं तो देखते-देखते—यद्यपि हम सर्वोदय-समाज कोई विशेष अनुशासन के साथ नहीं बनाते, तो भी—हम पांथिक बन सकते हैं, सांप्रदायिक बन सकते हैं। इसलिए यह भाषा कभी नहीं निकलनी चाहिए कि फलाना समाजवादी है, फलाने कांग्रेसवाले हैं, फलाने सर्वोदयवादी हैं, आदि।

तीसरी शक्ति

ये जो दूसरे नाम हैं, वे चलेंगे; क्योंकि वे लोग उस-उस नाम पर काम करना चाहते हैं और उसकी उपयोगिता मानते हैं। लेकिन हमारा कोई पक्ष नहीं है। जिसे तीसरी शक्ति कहते हैं, वे हम हैं। तीसरी शक्ति का मतलब आज दुनिया की परिभाषा में यह होता है कि जो शक्ति न अमेरिका के 'ब्लाक' में पड़ती है और न रूस के 'ब्लाक' में ही, लोग उसे तीसरी शक्ति कहते हैं। लेकिन *मेरी तीसरी शक्ति की परिभाषा यह होगी कि जो शक्ति हिंसा की शक्ति से विरोधी है अर्थात् हिंसा की शक्ति नहीं है और जो दंड-शक्ति से भी भिन्न अर्थात् दंड-शक्ति भी नहीं है। एक हिंसा-शक्ति, दूसरी दंड-शक्ति और तीसरी हमारी शक्ति है।* हम इसी शक्ति को व्यापक बनाना चाहते हैं। हमारा कोई अलग संप्रदाय नहीं बनना चाहिए, बल्कि हमें आम लोगों में घुल-मिलकर मानव-मात्र रहना चाहिए।

चांडिल
७-३-'५२

यह एक मजदूरों की नगरी है। जब कभी मुझे मजदूरों के सामने बोलने का मौका मिलता है, बहुत खुशी होती है।

मजदूर दुनिया का आधार

वैसे तो यह सारी दुनिया ही मजदूरों की है। दुनिया में जितने भी काम होते हैं, वे सब मजदूर ही करते हैं, फिर वह चाहे खेत में हो, कारखाने में या खानों में। मजदूरों के आधार पर ही हम सबका जीवन चल रहा है। कहा जाता है कि दुनिया परमेश्वर के आधार पर चलती है, लेकिन परमेश्वर को हम देखते तो नहीं, सिर्फ मानते हैं कि वह दुनिया का सारा भार उठा रहा है। किंतु मजदूरों को हम साक्षात् अपनी आँखों से देखते हैं। यह भी देखते हैं कि वे दुनिया का भार उठा रहे हैं। सिर्फ पहचानना बाकी है कि परमेश्वर मजदूरों के रूप में हमारे सामने खड़ा है। अगर इसकी पहचान हो जाय, तो दुनिया के सारे झगड़े मिट जायँ और दुनिया में प्रेम-भाव पैदा हो जाय। जितने भी लोग हैं, वे सारे मजदूरों की सेवा में लग जायँ और अंत में उनकी सेवा करते-करते खुद भी मजदूर बन जायँ।

भक्ति-मार्ग ने हमें यही सिखाया है। पहले हम भगवान् की भक्ति करते हैं। मन, वचन और कर्म से भगवान् की सेवा में लगते हैं। अन्त में यह हालत हो जाती है कि भक्त ही भगवान् जैसे बन जाते हैं। भगवान् की सेवा, उसका चिंतन करते-करते भक्त को वही रूप मिल जाता है। इसी तरह अगर हम लोग मजदूरों की सेवा में लगेंगे, यह मानकर कि 'परमेश्वर जो अव्यक्त रूप में सारी दुनिया में व्याप्त है, वह हमारे सामने शरीर लेकर मजदूरों के रूप में खड़ा है', तो सेवा करते-करते हम खुद मजदूर बन जायँगे।

भगवान् भक्त के पूजक

भगवान् श्रीकृष्ण का चरित्र 'भागवत' में और संतों ने गाया है। उसे हम प्रेम से सुनते हैं। वे भगवान् ग्वाल-बालों में, गोपालों में रहते थे और गोपाल होकर रहते थे। वे घोड़ों की सेवा करते थे, गायों की सेवा करते थे, गोबर उठाते

थे, धूलि में काम करते थे और अपने को सबकी चरण-धूलि मानते थे। राजसूय-यज्ञ में धर्मराज ने अर्जुन, भीम आदि सबको काम बाँट दिये। भगवान् जब वहाँ पहुँचे, तब उन्होंने धर्मराज से कहा कि मुझे भी काम दीजिये। धर्मराज ने कहा कि आपके लिए मेरे पास काम नहीं है। लेकिन भगवान् ने कहा कि मुझे काम चाहिए, यज्ञ में मुझे भी हिस्सा लेना है। तब धर्मराज ने उनसे कहा कि आप ही अपना काम चुन लीजिये। भगवान् ने जूठन उठाने का काम लिया। उसकी कहानी कवि लोग गाते हैं। वही हमारे सामने आदर्श है। अगर हम उसका चित्र निरंतर अपने सामने रखें, तो तिनके से भी नम्र बन जायँगे—अपने को सबकी चरण-धूलि समझने लगेंगे। फिर मालिक-मजदूर का भेद ही खतम हो जायगा। मालिक तो सेवक के सेवक बन जायँगे।

भगवान् की ही कथा है। एक बार उद्धव भगवान् से मिलने गये थे। उन्हें बताया गया कि भगवान् पूजा कर रहे हैं। इसलिए वे बाहर ही रुक गये। पूजा के बाद जब भगवान् बाहर आये, तब उद्धव ने उनसे पूछा कि आप तो हमारे लिए भगवान् हैं, फिर आप किसकी पूजा करते हैं? भगवान् ने उससे कहा: उद्धव, तुम यह नहीं समझ सकते। लेकिन जब उद्धव ने जिद की, तब भगवान् ने बताया कि मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। इसी तरह जो मालिक हैं, वे मजदूरों के सेवक बनें, राजा प्रजा के सेवक बनें, पिता पुत्र के सेवक बनें। जिस किसीको जिम्मेवारी का काम मिला है, वे सेवक बनकर काम करेंगे, तो दुनिया के सारे झगड़े मिट जायँगे। दुनिया में आज जो झगड़े हैं, उनका कारण यही है कि हम बिना परिश्रम किये अधिक-से-अधिक लाभ उठाने की सोचते हैं। इसीको 'चोरी' कहते हैं। रात को छिपकर दूसरे के घर की वस्तु चुरानेवाले तो छोटे चोर होते हैं। पर बड़े चोर तो हम हैं, जो कम श्रम करते हैं और दूसरे के श्रम का बेजा लाभ उठाना चाहते हैं। अगर हम यह पहचानें, तो सारी दुनिया की सूरत ही बदल जाय।

भारत के तपस्वी मजदूर

जिस काम के लिए मैं यहाँ आया हूँ, वह गरीबों का, दलितों का, दुखियों का और मजदूरों का काम है। शहर के मजदूरों की आवाज तो दुनिया में कुछ

सुनाई देती है। उनकी तरफ से बोलनेवाले, उनकी वकालत करनेवाले कुछ तो हैं। लेकिन देहात में जो मजदूर हैं, उनकी हालत ऐसी है कि वे न सिर्फ बेजमीन हैं, बल्कि बेजबान भी हैं। उनके पास भूमि नहीं है, सम्पत्ति नहीं है, मकान नहीं है—कुछ भी नहीं है। वे किसी भी चीज के मालिक नहीं हैं, सिवा अपने शरीर के। उनको अपनी वाणी भी नहीं है, वे बोल भी नहीं सकते। उनकी तरफ से उनकी आवाज मैं हिन्दुस्तान को सुना रहा हूँ। इसलिए मैं पैदल यात्रा करता हूँ। अपनी यात्रा में मैं बीच-बीच में छोटे-छोटे देहातों में भी जाता हूँ और वहाँ गरीबों के दर्शन करता हूँ। मेरी आँखें उनके दर्शन से तृप्त हो जाती हैं, सिर्फ उन्हें देखनेभर से ही मुझे समाधान मिलता है। वे मुझे अपने कर्तव्य का भान करा देते हैं। उनकी आँखों में मैं प्रेम देखता हूँ। वे दुःखी हैं। उन्हें खाना, कपड़ा, तालीम, घर, कुछ भी नहीं मिलता। बीमारी में उनके लिए कोई भी इन्तजाम नहीं है। ऐसी उनकी सब तरह से गिरी हालत है। फिर भी मैंने उनकी रोनी सूरत कभी नहीं देखी, वे हमेशा हँसते रहते हैं।

आखिर उनके जीवन में किस चीज का आनन्द है? आप देहात में जाकर देखें, तो आपसे गरीब मनुष्य कहेगा कि उसे खाना नहीं मिलता। वह यह बात भी हँसते-हँसते कहेगा। यही हिन्दुस्तान की बादशाही है। हिन्दुस्तान तत्त्वज्ञानियों का देश है, ऋषि-मुनियों का देश है। यहाँ अनेक सन्तों ने जीवन का, तत्त्व का दर्शन किया है और लोगों को समझाया है कि 'भाइयो, यह बस्ती चार दिनों की है। इसलिए हँसते रहो, दुःख मत करो।' उन्हीं की सिखावन का हिन्दुस्तान पर इतना गहरा परिणाम है। नहीं तो आप इस गिरी हालत में लोगों को हँसते हुए न पाते। यह तत्त्वज्ञान हमारे लोगों के खून में बहुत गहरा पैठा है। वे लोग इस तरह सहन करते हैं कि उनका वह सहन करना ही एक तरह से तपश्चर्या है, जो मुझ जैसे को घुमाती है। मैं जो घूम रहा हूँ, उसके पीछे मेरी ताकत नहीं है। यह उन तपस्वियों की ताकत है, जो कारखानों में, खेतों में और खानों में काम करते हैं। आधा पेट रहकर भी काम करते और फिर भी मस्त रहते हैं। किसीको तकलीफ नहीं देते, बल्कि स्वयं सहन करते जाते हैं। यही उनकी तपस्या है, जो मुझे जगाती है।

मेरी सभा में मेरी बात सुनने के लिए इतने सारे मजदूर इसीलिए आते हैं कि वे समझ गये हैं कि यह मनुष्य हमारी तरफ से सारी दुनिया को जगा रहा है, दुनिया की विवेक-बुद्धि को जगा रहा है। शहर और देहात के मजदूर मेरे पास इसी आशा से आते हैं और उन्हें यह आशा रखने का हक भी है। एक जमाना था, जब कि हिन्दुस्तान में ब्राह्मणों ने असामान्य तपस्या की थी। वे जंगलों में रहते थे, ब्रह्मचिन्तन, उपवास, जप, तप आदि करते थे। लेकिन आज उनकी तपस्या क्षीण हो गयी। सैकड़ों वर्षों तक यहाँ उनका आदर हुआ। लेकिन अब इन मजदूरों का आदर होनेवाला है, क्योंकि अब ये तपस्या कर रहे हैं। आगे आनेवाली जनता और आगे आनेवाला इतिहास इनकी भक्ति के गीत गायेगा। आगे का जमाना सेवकों का, मजदूरों का जमाना है।

शक्ति, लक्ष्मी और सरस्वती सेवा में लगें

आज तक तीन देवताओं की पूजा हुई है। एक, शक्ति देवी। कुछ ऐसे थे, जो शस्त्रास्त्र से दुनिया पर सत्ता जमाते थे। दूसरी, लक्ष्मी देवी। कुछ ऐसे थे, जो धन-सम्पत्ति इकट्ठा कर उसके जरिये दुनिया पर अपनी सत्ता जमाते थे। तीसरी, सरस्वती देवी। कुछ विद्या, कला, ज्ञान का सम्पादन करते और उसके आधार पर दुनिया पर अपनी सत्ता जमाते थे। ये तीनों दुनियाभर में बहुत सत्ता पा चुके। अब बारी आयी है कि ये सेवा में लग जायँ। जिसके पास शक्ति है, वह अपनी शक्ति का उपयोग दुनिया की सेवा में और अशक्तों का पालन करने में करे। जिसके पास धन-संपत्ति है, वह उसका उपयोग गरीबों को देने में करे। जिसके पास विद्या या कला है, वह उसका उपयोग समाज में विचार-जाग्रति में करे। इस तरह शक्ति, संपत्ति और विद्या, इसमें से जिसे जो भी मिला है, वह उसका उपयोग दुनिया के लिए करे, सबकी तरफ से अपनी छाती पर आपत्तियाँ झेले। ये तीनों देवियाँ आज तक सत्ता जमा करती आ रही हैं, पर अब इन्हें सेवा करनी होगी, तभी इनका जीवन सार्थक होगा। आज तक इन देवताओं ने लोगों का जो भक्तिभाव संपादन किया है, वह तभी टिकेगा, जब ये सेवा में लगेंगी। अगर ये आज भी सत्ता जमाने में लगी रहेंगी, तो वह भक्ति-भाव नहीं टिकेगा। इसलिए अब उन्हें झुकना ही पड़ेगा।

जमाना बदलता जा रहा है, मानव का विकास हो रहा है। एक जमाना था, जब ब्राह्मणों की सत्ता चलती थी। सब लोग उनकी सुनते थे। उसके बाद एक जमाना आया, जब क्षत्रियों की सत्ता चली। उसके बाद जमाना आया, जब वैश्यों की सत्ता चली और वह कुछ हद तक आज भी चल रही है। इस तरह आज तक इन तीनों की सत्ता चली। लेकिन आज वह सारा खतम हो गया है। अब आम जनता का जमाना आया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण सिर्फ हिन्दुस्तान में नहीं, सारी दुनिया में थे। सारी दुनिया में उसीके अनुसार काम चलते थे। लेकिन यहाँ सिर्फ वर्गीकरण हुआ है।

भूखे भगवान् को खिलाना ही सच्ची भक्ति

कुछ बड़े-बड़े टीले और पहाड़ और बाकी सारे गड्ढे—यह नहीं चल सकता। हमें सारी दुनिया का स्तर ऊँचा उठाना है। इधर हिमालय, उधर विन्ध्याचल और बाकी सारे गड्ढे—यह अब नहीं चलेगा। अब टीलों की मिट्टी खोदकर गड्ढे भरने होंगे। तभी खेती करने लायक समतल जमीन बनेगी और अच्छी फसल आयेगी। यह बात कोई बे-मौके नहीं, बल्कि आहिस्ता-आहिस्ता आयी है। पहले दुनिया में ऐसी कल्पना थी कि जंगल में जाकर एकांत ध्यान-चिंतन से परमेश्वर मिलेगा। उसके बाद लगता था कि बड़े-बड़े काम करने से परमेश्वर मिलेगा। लेकिन अब लगता है कि परमेश्वर ध्यान से या बड़े काम करने से नहीं, बल्कि सबकी सेवा करने से मिलता है। पहले लगता था कि पत्थर की पूजा करने से परमेश्वर मिलेगा, लेकिन अब परमेश्वर अधिक स्पष्ट रूप में हमारे सामने आया है। वैसे तो वह पहले से ही स्पष्ट रूप में था, पर तब हम उसे पहचानते नहीं थे। वैसे तो दुनिया की हर चीज में परमेश्वर है, परंतु हमारे सामने बोलने और खानेवाला परमेश्वर खड़ा है।

नामदेव की कहानी है। एक दिन नामदेव ने भगवान् के सामने दूध रखा, लेकिन भगवान् ने नहीं पिया। उसने सोचा कि अब तक रोज मेरे पिताजी पूजा करते थे, तो भगवान् दूध पीते होंगे, फिर मेरा ही दूध क्यों नहीं पीते ? उसने हठ पकड़ लिया और आखिर भगवान् ने उसका दूध पिया। लेकिन आज हालत ऐसी है कि भूखा भगवान् हमारे सामने खड़ा है। तब तो भगवान् खाता-पीता नहीं था

और नामदेव ने हठ करके उसे दूध पिलाया। लेकिन आज का भगवान् खुद दूध माँग रहा है। वह ऐसा भगवान् है, जो खुद दूध दुहता तो है, पर उसे वह पीने को नहीं मिलता। वह फलों के बगीचे में काम करता है, पर उसे फल चखने को नहीं मिलता। वह गेहूँ के खेत में काम करता है, पर उसे रोटी खाने को नहीं मिलती। इस तरह भूखा, प्यासा और बिना घरवाला भगवान् हमारे सामने खड़ा है। वह कहता है कि हमें खिलाओ, कपड़े दो, हम ठंढ में ठिठुर रहे हैं।

लेकिन यह देखते हुए भी अगर हम पत्थर की मूर्ति को हिलायेंगे, उसके लिए घर बनायेंगे, तो यह नाटक हम कब तक करेंगे? जब ठंढ में ठिठुरनेवाला भगवान् हमारे सामने खड़ा है, तब उस पत्थर के भगवान् को कपड़े पहनाना कब तक चलेगा? आज की भक्ति की भावना बदली है। मानव-सेवा आज का धर्म है। आहिस्ता-आहिस्ता दुनिया इसे पहचान रही है। पहले ज्ञान की महिमा थी। फिर हम ज्ञान से ध्यान में आये। फिर ध्यान से कर्म में आये। फिर कर्म से भक्ति में आये और अब भक्ति से सेवा में आये। इस तरह आहिस्ता-आहिस्ता विकास हो रहा है।

मानव-हृदय शुद्ध है

चाहे हमारा जीवन बुरा हो, पर हृदय बुरा नहीं है। मनुष्य का सर्वस्व उसका हृदय ही है। उसमें प्रेम, न्याय, भक्ति, निष्ठा, सत्य आदि अनंत सद्गुण बसते हैं। जैसे आकाश में अनंत तारे होते हैं, वैसे ही हमारे हृदय में भी अनंत शुभ गुण बसते हैं। लेकिन उसके बाहर एक पर्दा है, जिसके कारण हम उन्हें देख नहीं सकते। वह बाहर का पर्दा फाड़ डालो, तो तुम्हारे अंदर की महिमा प्रकट होगी। मैं अत्यंत विश्वास के साथ जनता के पास पहुँचता हूँ, तो मुझे वैसा ही फल मिलता है। मैं जमीन माँगता हूँ, तो कोई इनकार नहीं करता। जमीन देना अपना कर्तव्य है, ऐसा सब लोग मानते हैं। यह इसीलिए होता है कि जिस किसीके पास मैं पहुँचता हूँ, उसे मैं शुद्ध मूर्ति मानता हूँ। उसके हृदय में परम शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल भाव है, ऐसा ही मैं मानता हूँ। ऊपर का छिलका नहीं देखना चाहिए। उत्तम से उत्तम फल भी कैसे खाना, इसका तरीका जानना

चाहिए। अगर तरीका न जानें और ऊपर का छिलका ही खाने लगें, तो फल का असली स्वाद कैसे मालूम होगा ? छिलका उतारकर फल खायें, तभी उस स्वाद का पता चलता है। इसी तरह मनुष्य के हृदय पर जो छिलके हैं, उन्हें उतारकर अंदर के मानव को अगर हम ग्रहण करें, तो यही लगेगा कि हिंदुस्तान में परम शुद्ध मानव बसते हैं।

तू ब्रह्म है

कुछ लोग कहते हैं कि मानव-हृदय शुद्ध है, यह विनोबा को भ्रम हुआ है। मैं कहता हूँ कि मैं ऐसे ही भ्रम में पड़ा रहना चाहता हूँ। मैं मानता हूँ कि मनुष्य-हृदय परम शुद्ध और पावन है। यह मानने से न मेरा आज तक कोई नुकसान हुआ है और न कभी होगा। और ऐसा मानने से दुनिया का भी न कभी नुकसान हुआ है और न होगा। हमारी उपनिषदों ने कहा है कि 'तू ब्रह्म है'। ऐसा कभी नहीं कहा कि 'तू इंद्रिय है, तू शरीर है, तू बुरा है'। अगर हम यह कहें कि 'तू शुद्ध है, तू पावन है, तू मंगल है, तू ज्ञानमय है', तो वह फौरन वैसा बन जाता है। जिसे हम मंगल कहते हैं, वह वास्तव में मंगल हो जाता है।

रामायण की कहानी है। सीता की खोज के लिए किसे भेजा जाय, इस विषय पर बहस चल रही थी। किसीको जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। हनुमान् चुप बैठा था। तब जामवंत ने उससे कहा कि हनुमान् ! तू क्यों नहीं जाता ? तू तो जा भी सकता है और आ भी सकता है। तब हनुमान् ने कहा कि आपका आशीर्वाद है और आपको लगता है कि मैं जा और आ सकता हूँ, तो जरूर जाऊँगा और आऊँगा। आखिर वह गया और सफल होकर वापस आया। हनुमान् की यह शक्ति जामवंत के शब्दों में है।

जहाँ ऋषि कहते हैं कि 'तू ब्रह्म है', वहाँ मैं कहता हूँ कि 'हाँ, मैं ब्रह्म हूँ।' एक बच्चे को हम गंदा कहते हैं, तो उसे दुःख होता है, क्योंकि वह वास्तव में गंदा नहीं है। अगर हम उसे यह कहें कि 'तू पवित्र, शुद्ध और निर्मल है, लेकिन तेरी आँखों में थोड़ी गंदगी है, उसे धो डाल', तो वह फौरन धो डालेगा। किन्तु आँख की गंदगी से हम उसे गंदा मान लेते हैं, ऊपर के छिलके को देखकर

अंदर के फल को बुरा कहते हैं, यह कितना गलत है ? क्या हम नारियल, आम या संतरे का ऊपर का ही छिलका खायेंगे ? खाने की चीज तो अंदर होती है। वैसे ही मानव-हृदय के ऊपर का छिलका फेंककर अंदर देखो। मानव के हृदय में जो गुण होते हैं, वे दरवाजे हैं और दोष दीवाल है। किसी भी घर में प्रवेश करना हो, तो दरवाजे से प्रवेश करना पड़ता है, नहीं तो दीवाल से टकरा जाते हैं। दुनिया में ऐसा कोई भी घर नहीं, जिसे दरवाजा न हो। अमीर के महल में पचास दरवाजे होते हैं, परंतु गरीब की झोपड़ी में भी एक दरवाजा तो होता ही है। इसलिए मानव के हृदय में उसके गुणों के द्वारा प्रवेश करना चाहिए।

शक्ति का स्रोत दिल्ली में नहीं, हमारे हृदय में

अभी स्वराज्य प्राप्त हुए कुल पाँच साल हुए। फिर भी लोग कहते हैं कि सरकार ने यह नहीं किया, वह नहीं किया। मैं उनसे पूछता हूँ कि आप स्वतंत्र हैं या गुलाम ? अगर स्वतंत्र हैं, तो क्या आप यह चाहते हैं कि आपके गाँव की तालीम का इंतजाम सरकार करे, आपके गाँव की सफाई सरकार करे ? आपके गाँव के सारे काम सरकार करे ? आखिर सरकार क्या चीज है ? जो काम परमेश्वर नहीं कर सकता, क्या वह सरकार कर सकेगी ? परमेश्वर बारिश देता है, पर सिर्फ बारिश से फसल नहीं उगती, घास उग सकती है। जब किसान परिश्रम करता है, धरती में अपना पसीना डालता है, तभी फसल उगती है। इस तरह जब परमेश्वर ही फसल नहीं उगा सकता, तो क्या सरकार उगा सकती है ?

सरकार की ताकत से हम ताकतवर बनेंगे, यह मानना ही गलत है। वास्तव में हमारी ताकत से ही सरकार ताकतवर बनेगी। शक्ति का मूल स्रोत दिल्ली या पटने में नहीं, वह तो हमारे और आपके हृदय के अंदर है। वहीं से चाहे जिस काम में शक्ति लगायी जा सकती है। लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या आप यह मसला हल कर सकेंगे ? मैं कहता हूँ कि अगर आपने चाहा, तो आप भी यह मसला हल कर सकते हैं। अगर आप चाहें कि अपने घर की लड़की को योग्य वर ढूँढ़कर उसके घर पहुँचायें, तो आपको कौन रोक सकता है ?

इसी तरह आपको जिस समय यह लगेगा कि धन और धरती दूसरे के पास पहुँचाने में ही हमारा कल्याण और मंगल है, तो पहुँचाने में आपके हाथ कौन रोकनेवाला है ? यह सब समझने की बात है।

समाज एकरस बनाना है, नीरस नहीं

कुछ लोग मुझसे पूछते हैं कि मजदूर-मालिक; गरीब-श्रीमान्, ये भेद रहेंगे या नहीं ? मैं कहता हूँ कि ये भेद ऐसे हैं, जैसे आँख और कान। हमारे शरीर में कैसा चमत्कार होता है, यह देखो। सबको अनुभव है कि अगर हमारे कान में फोड़ा हुआ, तो आँखों से आँसू गिरते हैं। यद्यपि आँख को तो दुःख नहीं है, फिर भी कान के दुःख से वह रोती है। यह जो आँख और कान का प्रेम-संबंध है, वही सारे समाज में प्रस्थापित हो, यह मैं चाहता हूँ। फिर चाहे मजदूर मजदूर रहे और मालिक मालिक। मजदूर के दुःख से मालिक भी रोयेगा। आखिर भगवान् ने हमें अलग-अलग ताकत दी है और इसलिए यह दुनिया अनंत शक्तियों से भरी है। अगर उसने सभी को एक ही शक्ति दी होती, तो दुनिया में आनंद नहीं रहता। सात स्वर हैं, इसीलिए संगीत बनता है। अगर एक ही स्वर चले, 'सा सा सा' तो संगीत नहीं बनेगा। संगीत तो तब बनता है, जब विविध ध्वनियाँ होती हैं, लेकिन उनमें एकता भी होती है, इसी तरह हमें सारा समाज एकरस बनाना है, नीरस नहीं।

अपनी चीज दूसरे को देने में ही कल्याण

हम चाहते हैं कि भूमि-दान और संपत्ति-दान-यज्ञ में आप लोग हिस्सा लें। जिसके पास दोनों नहीं है, वह श्रम-दान दे। जिसके पास बुद्धि है, वह बुद्धि दे। अपने पास जो भी चीज है, वह दूसरे को देने के लिए है, लोक-सेवा के लिए है, इस बात को हम समझ लें। मेरी थाली में से लड्डू उठाकर अगर हाथ उसे वहीं पकड़ रखे, तो परिणाम क्या होगा ? लेकिन नहीं, हाथ उदार बनकर उस लड्डू को मुँह में डालता है। फिर मुँह भी उसे अपने पास ही नहीं रख लेता, बल्कि चबा-चबाकर पेट में डाल देता है। अगर पेट ने भी उसे अपने पास ही रखा, तो पेट का आपरेशन करना पड़ेगा। परंतु पेट उसका रसायन बनाकर सारे शरीर

में भेजता है। हर कोई उसे अपने ही पास न रखते हुए दूसरे के पास भेज देते हैं, इसीलिए उस लड्डू का मेरे शरीर को फायदा मिलता है। इसी तरह हमारे पास धन और संपत्ति जो कुछ भी है, वह फौरन दूसरे के पास पहुँचानी चाहिए। सिर्फ यही देखना चाहिए कि वह दूसरा व्यक्ति उसका उपयोग अच्छी तरह से करता है या नहीं।

फुटबाल के खेल में हम अपने पास आया हुआ गेंद अगर अपने ही पास रखें, तो खेल खतम हो जायगा। किंतु जहाँ हमारे पास गेंद आता है, वहीं फौरन हम उसे लात मारकर दूसरे के पास भेज देते हैं। इसी तरह संपत्ति पास आते ही फौरन लात मारकर उसे दूसरे के हाथ में पहुँचा देंगे, तो आपका कल्याण होगा और अपने ही पास रखेंगे, तो नहीं होगा। यही समझाने मैं आया हूँ, जो आसानी से समझने की बात है।

आगे तो ऐसा होगा कि एक मनुष्य गाँव में जायगा और भूमि-हीन को ढूँढ़कर उसे जमीन दे देगा। फिर विनोबा और कानून की कोई जरूरत ही नहीं रहेगी। मुझे बीच का ठेकेदार नहीं बनना है। मैंने अब तक आठ लाख एकड़ जमीन प्राप्त की है। उसका भी मैं अगर बँटवारा करने जाऊँ, तो वह नहीं हो सकता। इसलिए यह तो सब लोगों का काम है, मैं पुरोहित हूँ। मैं निमित्त-मात्र बनना चाहता हूँ कि मेरे निमित्त से आपके घर में शुभ कार्य की प्रेरणा होगी। और आप अपनी भूमि और संपत्ति बाँट देंगे।

मैंने भूमि-दान-यज्ञ के समान संपत्ति-दान-यज्ञ भी शुरू किया है। इसमें दाता ही हिसाब रखता है, मैं उससे मुक्त रहता हूँ। आप संसारी हैं, इसलिए आप ही इस काम की जिम्मेवारी उठायें। आप कमाई करते और अपने बाल-बच्चों को खिलाते हैं। वैसे ही गरीब को खिलाना एक धर्म माना गया है।

कम्युनिस्ट लोग आक्षेप करते हैं कि विनोबा को न जमीन चाहिए, न संपत्ति, उन्हें तो कागज चाहिए। उनकी टीका सही है। इतनी सारी जमीन लेकर मैं क्या करूँगा? जमीन और संपत्ति तो गाँव की गाँव में ही रहेगी और वहीं खर्च होगी। मैं तो सिर्फ आपको प्रेरणा देनेवाला हूँ। परमेश्वर का भेजा हुआ एक निमित्त हूँ। मैं चाहता हूँ कि आपमें से हर मनुष्य यह व्रत ले कि अपनी-अपनी संपत्ति

और भूमि में से छठा हिस्सा मैं कुटुंब के बाहर दूँगा। अब कुटुंब का भरण-पोषण करने से हमारी तृप्ति नहीं होगी। ऐसा समाज हमें निर्माण करना होगा। इस तरह छठा हिस्सा देने का व्रत लेनेवाले बहुत-से मिल जायँगे, तो हिन्दुस्तान प्राचीन काल में जैसे वैभवशाली था, उससे भी अधिक वैभवशाली होगा।

दलीय भेद छोड़कर काम करें

मेरे इस काम में किसी भी तरह की पक्ष-भावना (दल-भावना) न आनी चाहिए। भगवान् ने गीता में कहा है कि निष्काम और निरहंकार भाव से काम करो, तभी भगवान् के पास पहुँच सकोगे। इस तरह आप लोग भूदान का काम पार्टी के खयाल से करेंगे, तो वह लाभ नहीं होगा, जो मैं चाहता हूँ। इसलिए निरहंकार और निष्काम भाव से यह काम करें। यह काम करने से अपने पक्ष की इज्जत बढ़ती है, ऐसी भावना निकम्मी है। वह तो बच्चों की-सी बात है। हम तो सेवा का मजा चखना चाहते हैं। हम जो काम करते हैं, उसका फल हम परमेश्वर से चाहेंगे, लोगों से नहीं। इसलिए पक्ष-भावना और अहंकार छोड़कर यह काम करें, तो एक साल में हिन्दुस्तान की सूरत ही बदल जायगी।

बेरमो (हजारीबाग)
२६-३-'५२

बड़े उद्योगों का राष्ट्रीकरण हो : ३ :

दुनिया ने अनुभव से यह देख लिया है कि किसी भी एक राजा के हाथ में, चाहे वह कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, सारी सत्ता रखना खतरनाक है। इसीलिए 'राजसंस्था' गयी और अब 'लोकसंस्था' शुरू हुई। राजसंस्था में जनता का विकास नहीं हो सकता था। राज्य-व्यवस्था में जो हुआ, वही व्यापार के क्षेत्र में भी होनेवाला है। अभी यहाँ माँग की गयी कि अभ्रक का धन्धा, जो आज चन्द लोगों के हाथ में है, देश के हाथ में हो। यह कोई नया विचार नहीं, आगे दुनिया में यही होनेवाला है।

सर्वोदय के दो सिद्धान्त

सर्वोदय-विचार में दो बुनियादी बातें मानी गयी हैं : (१) रोजमर्रा की सारी चीजें—खाना, कपड़ा आदि—गाँव में ही पैदा हों। छोटे-छोटे उद्योगों के जरिये लोग स्वावलम्बी बनें। जो काम घर में हो सकते हैं—जैसे रसोई, कताई आदि, वे घर में हों और जो गाँव में हो सकते हैं—जैसे तेल, जूता आदि—वे गाँव में हों। और (२) लोहा, कोयला, अभ्रक के जैसे बड़े-बड़े धन्धे—जिनका सम्बन्ध न सिर्फ सारे देश के, बल्कि सारी दुनिया के साथ है—किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत मालकियत के न रहें। उन पर समाज की मालकियत हो। इसके बगैर सर्वोदय नहीं हो सकता।

यह अत्यन्त अधर्म-विचार

ऐसे बड़े-बड़े धन्धे, जिनमें लाखों मजदूर काम करते हैं, वे चन्द लोगों के हाथ में रहें—यह खतरनाक है। इस पर कुछ लोगों का आक्षेप है कि 'व्यक्तिगत मालकियत न रही, तो लोग उनमें पूरी अक्ल नहीं लगायेंगे। आज वे स्वार्थ-भाव से अक्ल लगाते हैं, तो धन्धे किफायत से चलते हैं। पर जब वे धन्धे सरकार की मालकियत के हो जायँगे, तो वे उन्हें किफायत से नहीं चलायेंगे।

इस तरह उनकी अक्ल का देश को लाभ नहीं होगा।' अगर यह सही हो, तो कहना पड़ेगा कि सारे धर्महीन बन गये! सभी धर्म कहते हैं कि जो काम समाज के लिए करना है, वह पूरी निष्ठा के साथ करना चाहिए। तब यह कहना कि व्यक्तिगत मालकियत रहने पर ही मालिकों को इन्सेंटिव (प्रेरणा) मिलती है, स्पष्टतः अत्यंत अधर्म-विचार है। खेद है कि दुनिया में आज यह विचार चलता है, क्योंकि आज दुनिया में अधर्म चल पड़ा है।

व्यापार भी वैश्यों का धर्म ही

हमारे यहाँ चार वर्ण बनाये गये और हरएक वर्ण को अपना-अपना धर्म बताया गया था। ब्राह्मण का धर्म था, ज्ञान देना। वह स्वार्थ या पैसों के लिए ज्ञान नहीं देता था, बल्कि धर्म के खयाल से ही देता था। क्षत्रियों का धर्म था, देश के लिए मर मिटना और वैश्य का धर्म था, व्यापार। वह उनका कर्तव्य और सेवा का साधन था और उस सेवा के कारण उसे अपने पेट के लिए कुछ मिलता था। इस तरह हमने व्यापार को भी धर्म बनाया था।

'संपत्ति समाज की हो', यह धर्म-विचार

जमीन का बँटवारा हो और बड़े-बड़े धन्धे देश की मालकियत के हों, इसीको हम धर्म-व्यवस्था मानते हैं। मैंने शास्त्रों का अध्ययन किया है। इससे मुझे लगता है कि आज जो चल रहा है, वह अधर्म है। गीता कहती है कि 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' आपके हाथ से धर्म का आचरण होने पर जो फल मिलेगा, वह भगवान् को अर्पण करना है। अगर हमने फल-त्याग छोड़ा, तो उसका मतलब होगा: धर्म छोड़ा। कबीर ने अर्थशास्त्र का एक बहुत बड़ा सिद्धांत बड़ी सरल भाषा में समझाया है: 'पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़े दाम। दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥' नौका के अंदर पानी आयेगा, तो वह डूब जायगी! पानी तो चाहिए, पर नौका के अंदर नहीं, उसके नीचे। वैसे ही घर में संपत्ति बढ़ी, तो खतरा है।

सम्पत्ति बहुत चाहिए, पर घर में नहीं, समाज में। जो घर में सम्पत्ति रखता है, वह धर्म-हीन है। इसलिए दोनों हाथों से संपत्ति लुटा देना ही अक्ल का काम है।

आज राष्ट्रीकरण का विचार ही मान लो

हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारा जीवन खुद का नहीं है। वह हमें समाज की सेवा के लिए मिला है और समाज की सेवा करते-करते मुक्त होना है। हमारे सामने चराचर रूप में जो सारे लोग हैं, वे हमारे स्वामी हैं, और हम भक्त हैं—यह भावना जब फैलेगी, तभी सब सुखी होंगे। अगर सभी कोई 'अपने पास जो कुछ है, वह समाज के लिए है', इस दृष्टि से सब काम करेंगे, तो राष्ट्रीकरण होने पर भी सबकी अक्ल का देश को लाभ मिलेगा। कुछ लोग कहते हैं कि आज देश इसके लिए तैयार नहीं है। आज नहीं, तो कल होगा। परंतु आज इस विचार को तो कबूल करो। विचार मानोगे, तो आचार बाद में आयेगा ही।

डोमचांच

१-४-'५२

भगवान् अहिंसक क्रान्ति चाहता है !   : ४ :

आज के युग को समत्व की भूख

अवश्य ही आज न केवल हिन्दुस्तान में, बल्कि दुनियाभर में काफी विषमता व्याप्त है; लेकिन यह जमाना समता का जमाना है। एक-एक जमाने की एक-एक माँग होती है और उसके अनुसार एक-एक गुण को महत्त्व मिलता है। किसी युग में स्वतन्त्रता को महत्त्व मिला, किसी युग में विवेक-बुद्धि को, किसी युग में सेवा-भाव को, तो किसी युग में आत्म-संशोधन को। इस तरह एक-एक युग की एक-एक माँग होती है और उसके अनुसार एक-एक गुण को सारा समूह चाहने लगता है। आज समत्व की भूख है। इसलिए हम चाहते हैं कि हमारा अधिक-से-अधिक व्यवहार समता पर अधिष्ठित हो। समता का यह विचार कोई नया विचार नहीं, प्राचीन काल से हम उसका महत्त्व मानते

आये हैं। गीता ने समत्व की महिमा बार-बार गायी है। भक्त और ज्ञानी के लक्षणों में समता का व्यवहार ग्रथित किया है। इस तरह इसका महत्त्व प्राचीन काल से है। किन्तु उस जमाने में उसकी व्यावहारिक आवश्यकता महसूस नहीं होती थी, जो आज हो रही है। जमाने की आवश्यकता के अनुसार कोई गुण राजा बनता है। आज समत्व राजा बना है। समत्व की यह भूख एकदम नहीं आयी, दुनिया में और हिन्दुस्तान में भी उसके लिए कशमकश और लड़ाई-झगड़े चल रहे हैं। यद्यपि हिंसा में दोष होता है, फिर भी समत्व की भूख इस जमाने को इतनी थी कि विषमता मिटाने के लिए गलत रास्ते पर जाने के लिए भी दुनिया तैयार हुई।

बच्चों की समान परवरिश हो

समत्व एकदम नहीं, आहिस्ता-आहिस्ता आयेगा, हमारे प्रयत्न की पराकाष्ठा पर आयेगा। आज समत्व आने में कुछ देरी हो, तो भी कम-से-कम जहाँ तक बच्चों का ताल्लुक है, समता अवश्य हो। बच्चे चाहे शहर के हों या देहात के, गरीब के हों या अमीर के, किसी भी जाति के हों, आखिर बच्चे ही हैं। उनकी हिफाजत समता से होनी चाहिए। अगर हम इतना भी करें, तो समता की सीधी राह मिलेगी। हम बड़े लोग विषमता में पले हैं, इसलिए विषमता सहन करने की हमें आदत है। किन्तु हमारे बच्चों को समान तालीम और समान पोषण मिले, तो समता का अच्छा आरंभ हो जायगा, यह विचार निरंतर मेरे मन में आता है। मैं किसी भी देहात में जाता हूँ और स्त्रियों से पूछता हूँ कि तुम्हारे कितने बच्चे हैं? तो वे जवाब देती हैं, चार या पाँच। इस पर मैं कहता हूँ कि आपके चार या पाँच ही बच्चे नहीं, बल्कि गाँव के सारे बच्चे आपके ही हैं। जब मैं यह सुनाता हूँ, तो वे अपढ़ बहनें फौरन मेरी बात को कबूल करती हैं कि 'आप जो कहते हैं, सही है। हमने एक रिवाज के कारण कहा था कि हमारे चार या पाँच बच्चे हैं, पर वास्तव में सब हमारे ही हैं।' जब इस चीज को हमारा दिल कबूल करता है, तो कम-से-कम बच्चों को समान शिक्षण और समान पोषण मिलना ही चाहिए, जो आज हम नहीं दे रहे हैं—यह दुःख की बात है।

सरकार बाल्टी और जनता कुँआ

स्वराज्य के बाद करने का बड़ा काम यह है कि बच्चों की समान परवरिश हो—ऐसी योजना राज्य, विद्वानों और ग्रामीणों की तरफ से हो। लेकिन आज यह नहीं हो रहा है, क्योंकि उत्पादन के साधन बेजमीन किसानों के हाथ में नहीं हैं। इसीलिए हमने भूदान-यज्ञ शुरू किया है। उससे बहुत बड़ा लाभ यह है कि सब बच्चों को समान तालीम और पोषण मिल सकता है। हम गाँव के सब बच्चों को एक खुराक दे सकते हैं। जमीन के आधार पर हम यह सब कर सकते हैं। सबको समान शिक्षण दे सकते हैं। लेकिन आज यह करने की शक्ति हममें नहीं है। जो आज राज्य चला रहे हैं, वे मुश्किल में हैं, इसीलिए उनके पास शक्ति नहीं है—यह कहकर हम चुप बैठेंगे, तो ठीक नहीं होगा। कानून में भी शक्ति होती है। उसके जरिये कुछ सुधार का काम हो सकता है। परन्तु उसकी भी एक मर्यादा होती है। जिस कुँए में ही पानी नहीं है, उसमें बाल्टी डालने से बाल्टी में पानी कैसे आयेगा ? जन-शक्ति कुँआ है और सरकार बाल्टी। इसीलिए हमने जन-शक्ति की बात की। जन-शक्ति बढ़ाना और उसमें तेजस्विता लाना ही मुख्य काम है और मुझे उम्मीद है कि भूदान-यज्ञ के जरिये हम जन-शक्ति जाग्रत कर सकते हैं। इसका भान अब सबको हो रहा है।

विचार भिन्न हों, पर कार्यक्रम एक

सब मानते हैं कि यह जन-शक्ति-निर्माण करने का एक साधन है। जन-शक्ति निर्माण करने के लिए सब पक्षों के भेद मिटाने चाहिए। हिन्दुस्तान जैसे बड़े देश में भेद तो होने चाहिए और होंगे ही, उनसे लाभ भी होता है। कल अगर हिन्दुस्तान के सब लोगों के दिमाग बिलकुल एक-से बन जायँ, तो मैं कहूँगा कि यह देश के लिए खतरा है और प्रलय की तैयारी हो रही है। इसलिए भेद हैं, लोग विचार करते हैं, यह ठीक ही है। किन्तु भेद है तो ऐक्य भी है। भिन्न-भिन्न विचारों में जो समान अंश हो, उसीका कार्यक्रम बनना चाहिए। देश में खूब विचार-मंथन होना चाहिए। अपनी-अपनी 'आयडियालाजी' (विचार-धारा) का अध्ययन होना चाहिए। विचारों का संघर्ष भी होना चाहिए। लेकिन जहाँ तक

आचरण का सवाल है, भिन्न-भिन्न विचारों में जो समान अंश रहेगा, उसीका कार्यक्रम बनाकर तदनुसार आचरण होना चाहिए। अगर ऐसा एक भी समान अंश न हो, तो भी मैं कहूँगा कि देश ख़तरे में है। विचारों में एक भी समान अंश न होना और सबके दिमाग एक-से हो जाना—दोनों में खतरा है। खुशी की बात है कि अपना देश इस तरह के खतरे में नहीं है। यहाँ भिन्न-भिन्न विचारों में कुछ समान अंश है। इसलिए उसीका कार्यक्रम बनाकर हमें सारी ताकतें उसमें लगानी चाहिए। कार्यक्रम तो समान अंश का ही होना चाहिए। विचारों में जहाँ विरोध है, उस पर चर्चा—बहस चलती रहेगी।

हिन्दुस्तान जैसे एक बड़े देश के लिए बलवान् होना आसान है। यहाँ की जन-संख्या, विस्तार तथा उत्पादन की शक्ति इतनी महान् है और यहाँ की संस्कृति ऐसी है कि इस देश के लिए कमजोर होना कठिन है और बलवान् होना आसान। फिर भी हिन्दुस्तान इसलिए कमजोर रहा और आज भी है कि यहाँ भिन्न-भिन्न शक्तियाँ टकराती हैं। इसी कारण शक्तियों का घटाव होता है, बढ़ाव नहीं। एक के पास दस पौण्ड और दूसरे के पास आठ पौण्ड ताकत हो, तो 'दस धन आठ बराबर अठारह' शक्ति का लाभ देश को मिलने के बजाय 'दस ऋण आठ बराबर दो' शक्ति का ही देश को लाभ मिलता है। आज भी देश में शक्ति कम नहीं और पहले भी कम नहीं थी। किन्तु शक्तियाँ एक-दूसरे से टकराती हैं, इसीलिए यहाँ मुसलमान आये और अंग्रेज आये। यहाँ अनेक पंथ थे। वे रहें, परन्तु आचरण एक-सा करने की शक्ति हम खो बैठे थे। एक-दूसरे के खिलाफ आचरण करते थे। अगर आज भी वैसे ही पक्ष-भेद चले, तो आजादी खतरे में है।

आज दुनिया में वे ही देश टिक सकते हैं, जहाँ की जनता एकदिल हो और जो एकरस बनेंगे। विज्ञान के इस युग में हम दुनिया से परे तो रह नहीं सकते। हम अपने देश में चाहे जैसा व्यवहार नहीं कर सकते। देशों के बीच दीवालें खड़ी नहीं हो सकतीं। विचार इधर-से-उधर और उधर-से-इधर जाने ही वाले हैं। बाहर के उत्तम और गलत, दोनों विचार यहाँ आयेंगे और यहाँ के उत्तम और गलत, दोनों विचार बाहर जायँगे, क्योंकि यह विज्ञान का युग है।

अपना देश विशाल है, पर जब हम समान कार्यक्रम उठा लेंगे, तभी शक्तिशाली बनेंगे। हमारे सामने एक ऐसा कार्यक्रम आया है, जिससे जनता में शक्ति निर्माण हो सकती है; इसका भान आज सबको हो रहा है। इसलिए आप अपनी-अपनी 'आयडियालाजी' अपने-अपने दिमाग में रखें। उसे खतम करें, यह तो मैं नहीं कहता, परन्तु एक साथ काम करें। आपके सामने एक सर्वोत्तम, सर्वांगीण क्रान्ति आ रही है, जिसमें साधन और साध्य, दोनों दृष्टियों से क्रान्ति होगी।

भगवान् यही चाहता है

आज सुबह एक भाई ने मुझसे पूछा कि 'आपकी क्रान्ति सफल नहीं हुई, तो आप क्या करेंगे ?' ऐसे विचार मैं नहीं करता। मैं परमेश्वर पर श्रद्धा रखकर काम करता हूँ। मैं मानता हूँ कि यह उसीका काम है। भूदान-यज्ञ इतना बड़ा और इतना कठिन काम है कि अपनी शक्ति से इसे उठाने की मुझमें हिम्मत नहीं हो सकती। जिस दिन इस काम का आरम्भ हुआ था, जब हरिजनों ने मुझसे जमीन माँगी और उन्हें जमीन मिली, उस रात मैंने सोचा कि क्या इस तरह मैं सब गरीबों को जमीन दे सकता हूँ ? मेरी हिम्मत नहीं होती थी, क्योंकि इतिहास में ऐसी बात नहीं बनी थी। आज तक मन्दिर और मसजिदों के लिए थोड़ी-सी जमीन माँगी गयी और मिली; लेकिन गरीबों के लिए जमीन माँगना विचित्र बात थी। मुझमें वह शक्ति नहीं थी। फिर भी मुझे अन्दर से शक्ति मिली। परमेश्वर ने कहा : 'डरो मत। जमीन माँगो।' तब मुझे लगा कि जब उसने मुझे माँगने की प्रेरणा दी है, तो वह दूसरों को देने की भी प्रेरणा देगा। परमेश्वर अधूरा या एकांगी काम नहीं कर सकता। जब उसने बच्चा पैदा किया, तो माता के स्तन में बच्चे के लिए दूध भी पैदा कर दिया। ऐसी श्रद्धा और विश्वास से मैंने काम शुरू किया। जब मुझे केवल २० हजार एकड़ जमीन मिली, तो मैंने कहा कि मेरी माँग पाँच करोड़ एकड़ की है। मैंने अपनी शक्ति पर यह काम नहीं शुरू किया था, बल्कि परमेश्वर की शक्ति पर किया था। इसलिए यह विचार ही नहीं करता कि यह काम सफल नहीं होगा, तो क्या करना है ?

लेकिन जब उस भाई ने पूछ ही दिया, तो मैंने कहा : अगर यह क्रान्ति असफल रही, तो हिंसक क्रान्ति होगी। और अगर परमेश्वर चाहता है, तो मैं आपको यह भी विश्वास नहीं दिला सकता कि उस दिन मेरे हाथ में भी तलवार नहीं रहेगी। जब यादव-कुल का संहार हो रहा था, तो स्वयं भगवान् तलवार लेकर लड़े थे। इसलिए सब कुछ भगवान् की इच्छा पर निर्भर है। लेकिन जब कि भगवान् मुझे घुमा रहा है, तब यह स्पष्ट है कि भगवान् के मन में यही बात है कि हिंसक क्रान्ति नहीं होगी और अहिंसक क्रान्ति होगी। अगर भगवान् सारी सृष्टि का संहार करना चाहता है, तो उस समय किसकी अक्ल कायम रहेगी ? फिर उसकी इच्छा के सामने मेरी अक्ल कैसे कायम रह सकती है ? इसलिए वह जो चाहेगा, वही होगा। पर आज भगवान् की इच्छा अत्यन्त स्पष्ट और प्रकट है। सूर्य के उदय होने पर भी क्या यह कहना पड़ता है कि सूर्य प्रकट हुआ ? जब कि आज देश में बच्चा-बच्चा भूदान के गीत गा रहा है, हजारों की तादाद में गरीब दान दे रहे हैं, तब परमेश्वर की इच्छा है कि दुनिया में अहिंसक, आर्थिक क्रान्ति हो। यहाँ पर अहिंसक राजकीय क्रान्ति हुई। अपनी आजादी की लड़ाई हिन्दुस्तान ने जिस तरह लड़ी, वह एक अद्भुत पद्धति थी। दुनिया में आजादी की लड़ाइयाँ बहुत-सी हुई हैं, पर इतिहास में लिखा जायगा कि हिन्दुस्तान की लड़ाई उन सबसे भिन्न थी। वैसे ही इस देश का भाग्य है कि हम आर्थिक समता भी अहिंसक तरीके से स्थापित करें। भगवान् की यही इच्छा है।

बिहार की विशिष्ट संस्कृति

इसका आरम्भ बिहार से हो, यही भगवान् चाहता है। बुद्ध भगवान् की वाणी आज सारी दुनिया में सुनायी दे रही है, किन्तु उसका आरम्भ बिहार में ही हुआ था। गांधीजी के सत्याग्रह का आरम्भ भी बिहार में ही हुआ। यहाँ की जनता की मनोरचना में एक ऐसी श्रद्धा है, जिसके कारण यह हुआ। मुझे भी यहाँ आते ही ऐसी प्रेरणा हुई कि हम यहाँ का मसला हल करें। यहाँ एक विशिष्ट प्रकार की संस्कृति है, ऐसा मेरा विश्वास था और दिन-ब-दिन उसका अनुभव भी हो रहा है। इसलिए यह यज्ञ सफल नहीं होगा तो क्या होगा,

ऐसी शंका मन में मत उठाओ। ऐसा कहो कि हम इस यज्ञ को सफल करेंगे ही। "आत्मा सत्यकामः, सत्यसंकल्पः"—आत्मा में जो सत्य इच्छा आती है, उसकी सिद्धि करने की शक्ति उसमें होती है। इसलिए अगर हम इस तरह का संकल्प करते हैं, तो उसे सफल करके ही रहेंगे।

गिरिडीह (हजारीबाग)
४-४-'५३

पुण्यमय साधनों से सामाजिक क्रान्ति : ५ :

भारत धर्म-भूमि है। अति प्राचीन काल से आज तक यहाँ धर्म-भावना बराबर काम करती आ रही है। बीच-बीच में कभी-कभी प्रकाश और कभी-कभी अन्धकार हो जाता था। जैसे दिन और रात एक के बाद एक आते हैं, वैसे ही देश की जिंदगी में भी कभी-कभी धर्म-भावना ऊपर उठती है, तो कभी-कभी मंद पड़ती है। जब-जब धर्म-भावना मंद पड़ती है, तब धर्म को चालना देने के लिए भगवान् समाज को एक नया विचार देता है—एक नया शब्द देता है। उस शब्द और उस विचार के आधार पर फिर से धर्म का उत्थान होता है।

इस युग का धर्म-मंत्र

हमारे लिए आज ऐसा ही एक शब्द 'सर्वोदय' मिला है। इसका मतलब है—'सबका भला'। पश्चिम के लोग कहते हैं कि अधिक-से-अधिक संख्या का भला हो, बहु-संख्या का भला हो। बहु-संख्या के भले के लिए अल्प-संख्या की आहुति देनी पड़े, तो कोई परवाह नहीं, ऐसा वे मानते हैं। लेकिन सर्वोदय में सारे भाई-भाई हैं, सब समान हैं, ऊँच-नीच कोई नहीं है। सबकी समान फिक्र की जायगी, सबको आगे बढ़ने का समान मौका मिलेगा, सबको समान तालीम मिलेगी, जिससे वे अपनी ताकत से दुनिया की सेवा में लग जायँ। इसीका नाम 'सर्वोदय' है। सर्वोदय यह नहीं मानता कि एक के भले के लिए दूसरे का बुरा हो। लोग पूछते हैं कि जहाँ एक मनुष्य मानता है कि धन-संचय करने में उसका भला है और उसीलिए वह दूसरों को तकलीफ देकर संपत्ति इकट्ठा करने में अपना भला मानता

है, तो दूसरे के हित में उसके हित का विरोध होता है। लेकिन मेरा कहना है कि जो सच्चे हित होते हैं, वे किसीके विरुद्ध नहीं होते। अगर मेरा शरीर सुधरे, तो आपका कुछ नहीं बिगड़ता, बल्कि लाभ ही होता है। वैसे ही आपका आरोग्य सुधरे, तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ता; बल्कि लाभ ही होता है। आप पुण्यवान् हैं तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ता, बल्कि आपके पुण्य का मुझे स्पर्श होता है। मैं पुण्यवान् हूँ, तो आपका कुछ नहीं बिगड़ता, बल्कि मेरे पुण्य से आपकी शुद्धि और वृद्धि होती है। इसलिए किसीका भी हित किसी दूसरे के हित के विरुद्ध नहीं है।

किन्तु लोग अज्ञानवश, जड़ता से मान लेते हैं कि अपना भला सत्ता या संपत्ति हासिल करने में है। इसलिए लोगों को समझाना होगा कि उसमें आपका भला नहीं है, किसीका शरीर बहुत बढ़ गया, उसका शरीर घटाने में ही उसका भला होता है। उसी प्रकार किसी भी तरीके से धन प्राप्त करने में अपना हित है, ऐसा समझनेवाला अज्ञानी है। उसे यह भी समझना होगा कि तुम्हारा हित संपत्ति बाँटने में है। हम जब आपको दूसरों की सेवा करने के लिए कहते हैं, तो दूसरे भी हमारे साथ हमदर्दी और प्रेम रखेंगे, हमारी सेवा करेंगे, यह दुनिया का अनुभव है। प्रेम दोगे, तो प्रेम पाओगे। नफरत दोगे, तो नफरत पाओगे। आम की गुठली बोओगे, तो आम का फल पाओगे, और बबूल का बीज बोओगे, तो बबूल पाओगे। यह नहीं हो सकता कि बबूल बोओ और आम पाओ। यह सबने अनुभव किया है। साधु-संतों का भी यही अनुभव है। यह समझना मुश्किल नहीं है कि अगर हम दुनिया का प्रेम संपादन करते हैं, तो उसमें हमारी भलाई है। इसलिए सर्वोदय में किसी एक के हित का दूसरे के हित से विरोध नहीं है।

अच्छाई की छूत

बुराई से ज्यादा अच्छाई की छूत फैलती है, क्योंकि आदमी के अंदर बुराई है ही नहीं। बुराई के बहाव में बहकर किसीने बुराई की, तो भी बाद में वह पश्चात्ताप महसूस करता है। बाद में उसे ऐसा लगता है कि मैंने गलती की।

याने बुराई की भी छूत लगती तो है, परन्तु वह गहरी नहीं जाती, आत्मा के अन्दर नहीं जाती। बल्कि भलाई की छूत गहरी पैठती है, अन्दर जाती है, क्योंकि आत्मा सत्य-स्वरूप है, मंगल है, प्रेममय है, ज्ञानमय है, परम शुद्ध है। आत्मा को अच्छाई एकदम जँचती है।

गरीबों के दान का प्रभाव

सत्याग्रह का तत्त्व माननेवाले का विश्वास है कि अगर हम सत्य का आग्रह और सत्य का आचरण करते हैं, तो उसका असर हुए बगैर नहीं रहता। आजतक सत्याग्रह का प्रयोग अन्याय के विरुद्ध प्रतीकार करने में करते थे। पर सत्याग्रह की प्रक्रिया इतनी ही, केवल विरोधात्मक नहीं है। हम अपने जीवन में सत्य पर ही भरोसा रखें, परमेश्वर पर भरोसा रखें और अंत में सत्य की ही विजय होनेवाली है, ऐसा विश्वास रखकर काम करें, तो उसीका नाम है सत्याग्रह। भूदान में जिन हजारों गरीबों ने दान दिया, उन्होंने एक सत्याग्रह ही तो चलाया है। उसका असर श्रीमानों पर हुआ। उनमें आज जो कंजूस दीखते हैं, वे कल हमारा काम उठानेवाले हैं। वेदों में ऋषि प्रार्थना करते हैं कि "जो कृपण है, उसका मन तू समृद्ध बना, उसके मन को दान की प्रेरणा दे।" ऋषि की यह प्रार्थना निकम्मी नहीं, काम की है, वह सफल है। आज वह प्रार्थना फल रही है। लोगों के हृदय की गाँठें खुल रही हैं। परिस्थिति उन्हें प्रेरणा दे रही है। परिस्थिति का मतलब यह कि गरीब उन्हें प्रेरणा दे रहे हैं। उन गरीबों के दानों का 'पुण्य' असर किये बगैर नहीं रह सकता। इसलिए जब कोई हमें सुनाता है कि श्रीमान् लोग नहीं दे रहे हैं और इसलिए वे चिढ़ते भी हैं, तो मैं उनसे कहता हूँ कि चिढ़ो मत, विश्वास रखो कि जो आज नहीं देता, वह इसलिए नहीं देता कि कल देनेवाला है। कालात्मा इस काम के अनुकूल हो रहा है। हिन्दुस्तान में एक पुण्य की, धर्म की भावना फैल रही है। पुण्य का मतलब यह नहीं कि अच्छे काम का फल दूसरी दुनिया में, स्वर्ग में मिलेगा। मैं जब पुण्य की बात करता हूँ, तो स्वर्गलोक में पहुँचानेवाले पुण्य की नहीं, बल्कि इस दुनिया में स्वर्ग लानेवाले पुण्य की बात करता हूँ।

गरीब मेरी जबान से बोल रहे हैं

आज हिन्दुस्तान में एक धर्म-विचार फैल रहा है। तेलंगाना में २॥ साल पहले जब यह काम शुरू हुआ था, तब कौन इसके बारे में जानता था। किन्तु आज देश-भर में इस आन्दोलन के लिए सब लोगों के मन में आशा बन गयी है। गरीब कहते हैं कि 'भूखी जनता अब न सहेगी, धन और धरती बट के रहेगी।' 'अब न सहेगी' का मतलब यह नहीं कि हाथ में तलवार लेकर कत्ल करने के लिए जायगी। इसका अर्थ यही है कि भूखी जनता अब पहले की जैसी दीन और लाचार बनकर नहीं रहेगी। वह बे-जबान नहीं रहेगी, बल्कि बोल उठेगी और प्रेम से कहेगी कि हमें भी आपके जैसा खाने का हक है। हम मेहनत करके खाना चाहते हैं। बनी-बनायी रसोई नहीं चाहते। हमें मिट्टी दिलाओ। हम मिट्टी की कीमत मानते हैं, ऐसी पुकार वे करेंगे और अत्यन्त शांति से, प्रेम से, मन में किसीके भी प्रति द्वेष-भावना रखे बगैर पुकार करेंगे। उनकी पुकार मेरे शब्दों द्वारा प्रकट होती है। वे मेरी जबान से कह रहे हैं।

लोग पूछते हैं कि वे खुद क्यों नहीं कहते ? मैं कहता हूँ कि मैं कह रहा हूँ, इसीलिए वे नहीं कहते। मैं उनकी तरफ से भीख नहीं, बल्कि हक माँगता हूँ। मैंने दो साल पहले ही कह दिया था कि मैं भिक्षा माँगने नहीं, बल्कि दीक्षा देने आया हूँ। ऐसी ही दीक्षा गया जिले में बुद्ध भगवान् ने सबसे पहले दी थी। यहीं से उन्होंने धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया था, जिससे उनका धर्म सारी दुनिया में फैल गया। बुद्ध भगवान् ने जो बीज यहाँ की जमीन में बोया था, उस पर अब तक मिट्टी पड़ी थी। वैसे काल की मिट्टी पड़ना जरूरी भी था। लेकिन आज उसमें अंकुर फूट रहा है। लोग मुझसे पूछते हैं कि आप पैदल क्यों घूमते हैं ? मैं जवाब देता हूँ कि बुद्ध भगवान् क्या मोटर से घूमते थे या हवाई जहाज पर चढ़े थे ? पर उनकी आवाज त्रिभुवन में फैल गयी। क्या बुद्ध भगवान् चीन और जापान गये थे ? विचार का प्रचार तो आत्मा से होता है, मोटर से या हवाई जहाज से नहीं। जहाँ आत्मा जाग जाती है, वहाँ उसका प्रचार सारी दुनिया में होता है। अगर मुझमें या आपमें उतनी शुद्धि आ जाय, तो बैठे-बैठे ही हम दुनिया को

जगा सकेंगे। लेकिन आज उतनी शक्ति नहीं आयी है, इसीलिए हम पैदल घूमकर लोगों के हृदय में पहुँचना चाहते हैं।

सहज संघटन

लोग पूछते हैं, "आप कोई संस्था या संघटन क्यों नहीं खड़ा करते?" पर क्या यह काम संघटन से होगा? जो धर्म-भावना है, वह क्या गाँठें बाँध-बाँधकर फैलती है? वह दीपक के समान दूसरे दीपक को प्रकाशित करती जाती है। मेरा जितना विश्वास सत्य का जप करने में है, उतना संघटन में नहीं। यह नहीं कि संघटन की जरूरत ही नहीं पड़ेगी; परन्तु मनुष्य शुभ विचार जपता और रटता चला जाय, तो उसके साथ जरूरी संघटन ऐसे ही पैदा हो जाता है। अगर इस काम के लिए संघटन जरूरी है, तो पैदा होगा ही और जरूरी नहीं, तो नहीं पैदा होगा। अगर मैं संघटन बनाता, तो मेरी एक कांग्रेस कमेटी बनती और मैं उसका अध्यक्ष बनता याने मैं संकुचित बन जाता। किन्तु मेरा संघटन नहीं है, इसीलिए मैं व्यापक हूँ, दुनिया का अंश हूँ, दुनिया में और अपने में मैं किसी भी तरह का भेद ही नहीं मानता। जो अपने अलग-अलग घर और अलग-अलग संस्था बनाकर बैठे हैं, उनसे मैं कहता हूँ कि आपके घर में और संस्था में मेरी हवा का प्रवेश होने दो, तो आपका घर शुद्ध होगा।

धर्म-कार्य का अवसर

अपने देश में आज एक धर्म-कार्य करने का मौका आया है। जिन्दगी में लेने के मौके कितने आते हैं, परन्तु देने का मौका बरसों में नहीं आता। हम बटोरते हैं; पर आज उससे अधिक भाग्य का, देने का मौका आया है। भगवान् ने मनुष्य को हाथ दिये हैं, जानवर को नहीं। "हाथ दिये कर दान रे।" हाथ से हम अच्छे भी काम कर सकते हैं, और बुरे भी। किसी जन्म में हम भी चार पाँव के जानवर होंगे। पर भगवान् ने इस जन्म में हमें दो हाथ और दो पाँव दिये हैं, ताकि हम हाथ से अच्छा काम कर सकें और पैरों पर खड़े होकर सिर ऊँचा करके आसमान में चिंतन कर सकें। व्यक्ति के जीवन में देने का मौका आता है, पर सारे देश के जीवन में देने का यह मौका आया है। यह हमारा बड़ा भारी भाग्य है। यह एक ऐसा पुण्य का अवसर है, जो फिर नहीं मिलेगा।

ऐसे महान् धर्म-कार्य में जो भी शरीक होना चाहते हैं, उन्हें चित्त शुद्ध करके शरीक होना चाहिए। इसमें किसी तरह के पक्ष-भेद के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। इसमें सब पक्षों का सहयोग हासिल है। यह एक निर्विवाद कार्य है। धर्म-कार्य निर्विवाद ही हो सकता है। शास्त्रकारों ने कहा है कि धर्म-कार्य 'सर्वेषाम् अविरोधेन' होना चाहिए। धर्म-कार्य का किसीके साथ विरोध नहीं हो सकता। हाँ, अधर्म के साथ विरोध होता है और वह घोर विरोध होता है, वह मिट नहीं सकता। जैसे राम-रावण-युद्ध ! 'रामरावणयोः युद्धम्' कैसे हुआ ? यह सवाल पूछा गया, तो जवाब मिला : 'रामरावणयोरिव'—जैसे राम-रावण का युद्ध हुआ, याने उसके जैसा वही हुआ, दूसरी कोई भी मिसाल नहीं है। इसमें किसी भी तरह के बीच-बिचाव की गुंजाइश नहीं है। अधर्म के साथ धर्म का घोर विरोध है।

जब दिल खोल करके दान दिया जाता है, तो देनेवाले के चित्त की उन्नति होती है और सारे समाज की भी उन्नति होती है। भूदान-यज्ञ सारे समाज के कल्याण के लिए शुरू हुआ है। हमें आशा है कि इससे हिन्दुस्तान का समाज एकरस बनेगा। जिसे हम सहयोगी समाज कहते हैं, जिसमें सबको सेवा का पूरा मौका मिलता है, विकास का पूरा अवकाश मिलता है, इस तरह का सर्वोदय-समाज, अहिंसक-समाज, परस्पर सहयोगी समाज, एकरस समाज हम बनाना चाहते हैं। भूदान-यज्ञ इसकी नींव है। गाँव के लोग यह समझ लें कि भूमि सबकी है, कोई अपने को भूमि का मालिक न समझे, तो सर्वोदय की नींव पक्की होगी। उसके बाद खादी, नयी तालीम वगैरह सब चलेगा।

क्रान्ति अहिंसक ही होती है

क्रान्ति पहले दिलों में होती है और फिर समाज में। जहाँ दिलों में क्रान्ति नहीं होती, बल्कि वह लादी जाती है और हिंसा से क्रान्ति होती है, वहाँ वास्तव में क्रान्ति होती ही नहीं। कुछ लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या अहिंसा से क्रान्ति हो सकती है ? यह तो ऐसा सवाल है कि क्या पानी से प्यास बुझ सकती है ? जैसे पानी ही से प्यास बुझ सकती है, दूसरे किसी भी तरह से नहीं, वैसे ही क्रान्ति अहिंसा से ही हो सकती है, दूसरे किसी भी तरीके से नहीं। फिर भी दुनिया

में यह बात चली कि समाज का आमूल परिवर्तन हिंसा से होता है। खासकर पाश्चात्यों का ऐसा खयाल है। किन्तु हिंसा से कभी भी क्रान्ति नहीं हो सकती। इससे तो नयी आनेवाली हालत और ही बदतर साबित होती है। जहाँ साधनों में ही क्रान्ति होती है, वहीं सच्ची क्रान्ति होती है। जहाँ वे ही पुराने, जंगली, पशु-शक्ति के साधन इस्तेमाल किये जाते हैं, वहाँ कैसे क्रान्ति होगी? गलत साधनों से सही साहस कैसे प्राप्त हो सकता है? असत्य से सत्य कैसे प्राप्त हो सकता है? लेकिन इतिहास में लोगों ने हिंसा के प्रयोग किये हैं। एक बार हिंसा कर लेंगे और फिर शांति कायम होगी, ऐसा लोग समझते हैं, पर शांति की स्थापना शांति से ही हो सकती है, हिंसा से नहीं। जिन्होंने सोचा हो कि एक दफा हिंसा कर लेंगे, फिर शांति और प्रेम का स्थापन होगा, तो यही कहना होगा कि उन्होंने अग्नि से ठंडक निर्माण करना चाहा।

सामाजिक क्रांति होकर रहेगी

गीता ने बार-बार कहा है कि जो भी समाज-शुद्धि का काम करना चाहता हो, यज्ञ-दान-तप से ही करना होगा। इसीलिए भूदान का आरम्भ अभी से नहीं, प्राचीन काल से हुआ है। मेरा पूरा विश्वास है कि यह भूमि-यज्ञ, दान और तप की भूमि होकर रहेगी। अब बड़े लोगों के दिल पिघल रहे हैं। हम तो पहले से ही कहते थे कि भगवान् हरएक के हृदय में बसता है। सिर्फ उसकी भक्ति और आवाहन कैसे करना, यह हम सीखें, तो भगवान् की प्रसन्नता लाजिमी है, यह मुझे विश्वास है। इसीलिए मुझे कभी भी निराशा नहीं हुई। मुझे ऐसा कभी भी नहीं लगा कि मेरी तपस्या से कम फल मुझे मिल रहा है, बल्कि मुझे तो ऐसा लगा कि मुझे ज्यादा फल मिल रहा है। गरीब लोग तो पहले से ही दान देते थे। लेकिन गरीबों की तपस्या-भावना गरीबों तक ही सीमित नहीं रह सकी। वह श्रीमानों को भी छूने लगी है। सारा हृदय एक ही है, इसी विश्वास पर मैंने काम शुरू किया था। हृदय अलग-अलग नहीं हैं। एक ही हृदय में एक क्षण में उत्साह होता है, तो दूसरे क्षण में निराशा आती है। एक क्षण में उदारता रहती है, तो दूसरे क्षण में कंजूसी आती है। एक क्षण में क्रांति रहती है, तो दूसरे

क्षण में क्रोध पैदा होता है। इस तरह एक ही हृदय के एक क्षण में अलग-अलग भाव आते हैं; पर मानव-हृदय एक है, उसका अनुभव आयगा। हिन्दुस्तान में जिस तरह पुण्य साधनों से राजकीय आजादी हासिल हुई है, वैसे ही सामाजिक क्रांति भी पुण्य-साधनों से ही होगी।

अकबरपुर (बिहार)
१५-४-'५२

पहले दिल जुड़ने दो, फिर जमीन : ६ :

समझने की बात है कि दुनिया की सारी संपत्ति भगवान् की है। उसमें से कुछ तो भगवान् ने पैदा नहीं की, मनुष्य ने पैदा की है, ऐसा हम कह सकते हैं। किन्तु मनुष्य की बुद्धि भी तो भगवान् की ही देन है। इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि सब संपत्ति भगवान् ने पैदा की है। फिर भी हम मान लेते हैं कि बुद्धि हमारी है। इसीलिए हम कहते हैं कि कुछ संपत्ति भगवान् ने पैदा की है और कुछ मनुष्य ने। हम जहाँ संपत्ति का विचार करते हैं, वहाँ यह मूलभूत विचार समझ लेना चाहिए कि जो बुनियादी चीज भगवान् ने निर्माण की है, वह सबके लिए है। उस पर सबका अधिकार है। यह विचार यहाँ के लोगों के दिल में बैठ जाता है। इसे समझाने के लिए हम कुछ तत्त्वज्ञान न रशिया से लाये हैं, और न चीन से।

हम जमीन के मालिक नहीं हो सकते

हवा भगवान् की देन है। उस पर चंद लोगों का अधिकार हो, यह हो नहीं सकता। इसी तरह पानी भी सबके लिए है और जमीन भी उसी कोटि में है। मनुष्य भले ही जमीन पर मेहनत करता हो, लेकिन यह दावा नहीं कर सकता कि हमने मिट्टी पैदा की है। मनुष्य एक मुट्ठीभर मिट्टी भी नहीं पैदा कर सकता। हम तो जमीन छोड़कर जानेवाले हैं। कई आते हैं और कई जाते हैं, परन्तु जमीन कायम ही रहती है। हम मिट्टी में से ही पैदा हुए और मिट्टी में ही मिल जाते हैं। फिर भी यह कहें कि हम जमीन के मालिक हैं, तो यह विचार

को ठीक नहीं जँचता। पुराने जमाने में जब जमीन ज्यादा थी, तब वह किसके हाथ में है, इसकी कोई परवाह नहीं थी। किन्तु आज जमीन कम है और आबादी ज्यादा है। इसलिए चंद लोगों के हाथ जमीन हो, जो उस पर खुदकाश्त न कर पाते हों और जो काश्त करते हों, उनके हाथ में जमीन न हो—इस तरह की हक की परिभाषा मानना गलत है। हवा और पानी मुक्त हैं, वैसे जमीन भी मुक्त है। हम जमीन के मालिक कभी नहीं हो सकते।

हम भूमिपति नहीं हो सकते, भूमि के पुत्र ही हो सकते हैं। वेदों ने कहा है : "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"। हम भूमि के पुत्र ही होने का दावा कर सकते हैं और वैसा ही दावा दूसरे असंख्य लोग भी कर सकते हैं। जो काश्त करना चाहता है, वह भूमि-पुत्र है। यह बुनियादी उसूल मान लो कि जमीन सबकी है, सबके लिए है और सेवा के लिए है। आज जो हमारे पास जमीन है, उसके हम नाममात्र के मालिक हैं, सेवा के लिए। उस पर अधिकार तो परमेश्वर का ही है। वह अधिकार परमेश्वर की ओर से गाँव को मिल जाता है और जमीन गाँव की हो जाती है।

हम छठे हिस्से की ही माँग तो करते हैं। जिनके पास बहुत अधिक जमीन है, वे अपने लिए थोड़ी-सा रखकर बाकी सारी-की-सारी जमीन दान में दे दें। मध्यम श्रेणीवालों से मैं छठा हिस्सा माँगता हूँ। और जो बिलकुल ही गरीब हों, वे जो भी दें, उसे मैं 'सुदामा के तंदुल' समझूँगा। इससे उनकी सहानुभूति और नैतिक शक्ति प्रकट होती है। अक्सर कम्युनिस्ट भाई यह आक्षेप उठाते हैं कि 'ये गरीब से क्यों लेते हैं?' तो, मैं कहता हूँ कि यह एक अहिंसा की प्रक्रिया है। जब तक आप अहिंसा को न समझेंगे, तब तक यह भी आपकी समझ में नहीं आयेगा। हम तो श्रीमानों से ही लेना चाहते हैं। परन्तु उन्हें देने के लिए प्रवृत्त करने के निमित्त नैतिक दबाव चाहते हैं। भले ही हम हिंसा न करें, पर अहिंसक या नैतिक दबाव को भी नहीं मानेंगे, तो निष्क्रिय बनेंगे। ऐसी अहिंसा से कुछ काम नहीं होगा।

यह डराना नहीं, कर्मविपाक है

यह तो एक धार्मिक काम है। शास्त्र कहते हैं कि 'श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया

अदेयम्, ह्रिया देयम् भिया देयम्'—कोई शर्म से भी देना चाहे, तो कोई हर्ज नहीं। एक बच्चा नंगा घूमता है, क्योंकि उसमें उसे शर्म नहीं लगती। किन्तु जब उसे चीज का भान होता है, तब ज्ञान होता और शर्म आती है। जिसने शर्म या लोक-लज्जा से दान दिया, तो कहना पड़ेगा कि वह भी विचार समझा है, इसीलिए देता है। यह है 'ह्रिया देयम्'। वैसे ही हम कहते हैं कि भय से भी दे दो। इसका मतलब यह नहीं कि नहीं दोगे, तो हम कत्ल कर देंगे। इस तरह से भय से देना हम नहीं चाहते। लेकिन अगर हम किसीसे कहें कि तेरे बिस्तर पर साँप पड़ा है, इसलिए बिस्तर छोड़ दे, तो हमने उसे जो वास्तव में भय है, वही दिखाया है—सच्चा डर ही दिखाया है। मनुष्य को जिस चीज से डरना चाहिए, उस चीज से डरना ही अच्छा है। और जिस चीज से नहीं डरना चाहिए, उस चीज से न डरना ही अच्छा है। भय भी अच्छी बात है। कोई भय से ही क्यों न सही, पर बुरा काम नहीं करता, तो ठीक ही है।

पूछा जाता है कि आप यह क्यों कहते हैं कि झूठ बोलोगे, तो नुकसान होगा, हिंसा करोगे तो नुकसान होगा, दुनिया में विनाश होगा? लेकिन यह डर नहीं, विचार है। 'बुरा काम करने से बुरा फल मिलता है, इसलिए बुरा काम मत करो' यह हम समझाते हैं, तो वह डर या भय भी धार्मिक है। समाज को समझाना ही चाहिए कि जमाने को न पहचानते हुए उदार दिल से दान न दोगे, तो खतरा है। इसमें हम कोई डराकर नहीं कहते, बल्कि विचार ही समझाते हैं। 'बुराई का फल बुरा होता है' यह कहना डर नहीं, यह तो कर्मविपाक या कर्मपरिणाम है। गरीबों ने हमें भर-भरकर दिया है। परमेश्वर कैसा नाटक करता है और दुनिया को कैसी तकलीफ देता है! उसमें उसे क्या आनंद आता है, वही जाने। उसने बड़ों के दिल छोटे बनाये हैं और छोटों के दिल बड़े। इससे दोनों को तकलीफ होती है। छोटे लोग उदारता से अधिक दान देते हैं, तो उन्हें तकलीफ सहनी पड़ती है और बड़े नहीं देते, तो भी उन्हें तकलीफ सहनी पड़ती है। इसमें भगवान् को क्या मजा आता है!

पहले दिल जुड़ने दो, फिर जमीन

कुछ लोग ऐसा भी आक्षेप करते हैं कि आप कट्ठे-कट्ठे का दान लेते हैं,

इससे जमीन के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। लेकिन आज जो दिलों के टुकड़े हुए हैं, क्या वे आपको अच्छे लगते हैं ? आज दिल टूट रहे हैं। अगर दिल जुड़ जायँ, तो जमीन तो आसानी से जुड़ सकती है। एक बार जमीन गरीब को देने पर फिर उसे समझाना कठिन नहीं कि 'सहकार करो'। लेकिन पहले से ही सहकार की शर्त लगायी जायगी, तो उस पर अंकुश रहेगा और फिर एक मैनेजर की जरूरत होगी। इसलिए आज तो मैं उसी गरीब को जमीन का पूरा अधिकार देना चाहता हूँ, यह समझाकर कि जमीन का मालिक तो परमेश्वर है। यह तो अक्ल की बात है, कि पहले क्या जोड़ना चाहिए ? जहाँ दिल टूटे हैं, क्या वहाँ जमीन जुड़ सकती है ? एक भाई ने मुझसे कहा कि 'को-ऑपरेशन (सहकारिता) करने के लिए लोग तैयार होंगे, तभी मैं जमीन दूँगा।' मैंने कहा कि 'तुम लोगों को समझाओ।' पर उसे अनुभव आया कि लोग कहते थे—'हम को-ऑपरेशन में नहीं आयेंगे।' आज दूसरे कोई भी सहकारी काम हम न करें और उन्हीं लोगों पर यह शर्त लगायें कि को-ऑपरेशन करो, तो हमें उन पर अंकुश रखने की योजना करनी होगी। वे तो आज ही डरे हैं। वह भाई मेरी बात समझ गया कि दिल को पहले जोड़ना चाहिए।

छोटे टुकड़े में अधिक पैदा होता है या बड़े टुकड़े में, ऐसी बहस क्यों करते हैं ? यह तो अर्थशास्त्र की एक मामूली बात है कि छोटे या बड़े जिस टुकड़े में अधिक पैदा होता हो, वैसे टुकड़े बनायेंगे। दिल जुड़ने पर अधिक पैदा होता है। छोटे या बड़े टुकड़े से नहीं, मेहनत से अधिक पैदा होता है, यह हमारा अपना अनुभव है। दुनियाभर में भी छोटे टुकड़ों से अधिक पैदा होने का कई जगह अनुभव आया है। मजदूर को जब हम मालिक बना देते हैं, तो वह प्रेम से काश्त करेगा और फसल बढ़ेगी ही। अक्सर जहाँ अच्छी फसल दीखती है, वहाँ पूछने पर पता चलता है कि मालिक गरीब है और जहाँ खराब फसल दीखती है वहाँ पूछने पर पता चलता है कि मालिक श्रीमान् है। 'अब्सेन्टी लैंड लार्ड' की बात सभी जानते हैं। इसलिए अर्थशास्त्र के ये छोटे-छोटे सवाल खड़े मत करो। हमारा काम बुनियादी क्रांति का काम है, जिससे समाज के मूल्यों में पूरा परिवर्तन होगा।

दोतरफा आक्षेप

कुछ लोग कहते हैं कि आपका काम खतरनाक है। एक बार जमीन की भूख बढ़ गयी, तो हिंसा के लिए, कम्युनिस्टों के लिए रास्ता खुल जायगा। लेकिन ऐसे खतरे से मैं डरता नहीं। 'न संशयम् अनारुह्य, नरो भद्राणि पश्यति। संशयम् पुनरारुह्य, यदि जीवति पश्यति॥' खतरा उठाकर सफल हो जाओगे, तो बहुत पाओगे। खतरा है, इसलिए मैं दूर नहीं भागूँगा। क्या कभी कोई यह कहता है कि चूल्हा जलाने से घर को आग लगने का खतरा है, इसलिए चूल्हा ही मत सुलगाओ? चूल्हा सुलगाये बिना रसोई हो ही नहीं सकती, भोजन के लिए चूल्हा तो सुलगाना ही पड़ेगा। लेकिन इस बात का खयाल रखना होगा कि उससे घर न जले। मुझ पर दूसरा आक्षेप यह उठाया जाता है कि विनोबा मरनेवालों को जिला रहा है। और पुराना ढाँचा कायम करने का और क्रांति को रोकने का काम कर रहा है। इस तरह जब मुझपर दोतरफा आक्षेप होता है, तो मैं समझता हूँ कि मैं सही-सलामत बीच में हूँ और मेरा काम बिलकुल ठीक हो रहा है।

नवादा
१६-४-'५२

माला और गुलदस्ते की संस्कृति

: ७ :

[गाँववालों ने दी हुई फूलों की माला की ओर देखते हुए]

यह हिन्दुस्तान की खास सभ्यता है कि फूल अलग-अलग हैं, पर सबको एक माला में पिरोया गया है। सब फूलों की अपनी-अपनी विशेषता है, पर सबको एक सूत्र में गूँथा गया है। दूसरे देशों की सभ्यता में गुच्छ (गुलदस्ता) बनाते हैं, उसमें फूलों को आजादी नहीं रहती। इसी तरह उस समाज में संघटन की जो परम्परा चली आयी है, उसमें भी व्यक्ति की कोई कीमत नहीं है। लेकिन हिन्दुस्तान की सभ्यता में व्यक्ति की कीमत है, फिर भी सबको एक सूत्र में पिरोया गया है। हम गणित की समता नहीं, आध्यात्मिक समता चाहते हैं। हम चाहते हैं कि सब सब पर समान प्रेम करें। भगवान् ने अनन्त भेद पैदा किये हैं। 'सा रे ग म प ध नी' ये सात स्वर होते हैं, तभी संगीत बनता है। स स स यह एक ही स्वर चले, तो संगीत नहीं बनता। किन्तु जिस तरह संगीत के लिए सात स्वर चाहिए, उसी तरह वे एक-दूसरे के विरोध में भी नहीं जाने चाहिए—संवादी होने चाहिए, तभी संगीत होता है। हम चाहते हैं कि सारे समाज को एक सूत्र में पिरोया जाय और फिर भी हरएक व्यक्ति को पूरी आजादी मिले।

आज तो कुछ बच्चों को तालीम बहुत मिलती है, और कुछ को बिलकुल नहीं। ऐसा भी कहा जाता है कि कुछ जातियों को तालीम नहीं मिलनी चाहिए। पर यह ठीक नहीं, सबको समान मौका और सबको समान तालीम मिलनी चाहिए। फिर जिसमें योग्यता हो, वह अधिक उन्नति करेगा। किन्तु आज हम समान अवसर देते ही नहीं और ऊपर से कहते हैं कि फलानी जाति में गुण है ही नहीं। हरएक को गुण प्रकट करने का मौका मिलना चाहिए। तभी समाज को उसकी शक्ति का लाभ मिलेगा, जो आज नहीं मिल रहा है। एक मनुष्य सबको भेड़ों के समान हाथ में रखे, एक मनुष्य सबका इन्तजाम करे—यह खतरनाक रचना है। ऐसी रचना अब नहीं चलेगी।

जब सारा समाज आगे बढ़ रहा हो, तब हम भेड़ों के समान सबको समझकर एक ही व्यक्ति के हाथ में सारा इन्तजाम सौंपनेवाली रचना करें, तो ऐसा समाज टिक नहीं सकता। अंग्रेज जब यहाँ आये, तब बड़े-बड़े जहाज नहीं थे। इतने दूर से वे छोटी-छोटी किश्तियों में ही बैठकर आये। किन्तु उन लोगों ने सारे हिन्दुस्तान पर अधिकार कर लिया, क्योंकि यहाँ के आम लोगों का इन्तजाम कुछ लोग करते थे, आम लोगों को इन्तजाम करना मालूम ही न था। इसीलिए उन चन्द इन्तजाम करनेवालों को जब अंग्रजों ने हराया, तो देश हार गया। अंग्रेज यहाँ की आम जनता से कभी लड़े ही नहीं। वे सिर्फ राजा-महाराजा और व्यापारियों के साथ लड़े। इस तरह अगर अब भी आम लोगों को आगे आने का मौका न दें, तो हमारी आजादी टिकेगी, इसकी गॅरेंटी हम नहीं दे सकते। इसलिए हरएक व्यक्ति को विकास का पूरा मौका देना चाहिए।

हमें सबको खाना-पीना मिले, इसकी उतनी फिक्र नहीं, जितनी सबको विकास का पूरा मौका मिले, इसकी है। खाना-पीना तो चाहिए ही, पर उससे भी अधिक महत्त्व हम विकास को देते हैं। हम चाहते हैं कि देश को मजदूरों की अक्ल का पूरा लाभ मिले। कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें जमीन देने से पैदावार घटेगी। मैं कहता हूँ कि मुझे यह घटी हुई पैदावार मंजूर है, क्योंकि उसमें उनकी अक्ल का उपयोग होता है। हम हरएक को इसीलिए जमीन देना चाहते हैं कि उसका पूर्ण विकास हो और उसकी शक्ति का देश को उपयोग हो।

पकरी बरवाँ
२१-४-'५२

धर्म का सामाजीकरण : ८ :

जब कोई देश आजादी हासिल करता है, तो उसके पास असली काम की शुरुआत होती है। जब तक आजादी हासिल नहीं होती, तब तक देश के लिए कोई धर्म ही नहीं होता। जो स्वतंत्र है, उसीके लिए धर्म होता है। हमारे शास्त्रकार भी 'यह करो और यह मत करो' यह आज्ञा उसीको देते हैं, जो उस आज्ञा का पालन करने के लिए स्वतंत्र होता है। जो गुलाम होता है—जो अपनी इच्छा से न अच्छाई कर सकता है और न बुराई, ऐसे पराधीन मनुष्य के लिए शास्त्रकार न तो कोई आज्ञा करते हैं और न कोई धर्म ही बताते हैं। जब तक देश स्वतंत्र नहीं था, तब तक धर्म का आचरण नहीं हो सकता था। इसलिए पहला कदम देश को आजाद बनाना ही था। जब तक आजादी प्राप्त नहीं हुई, तब तक उसे प्राप्त करने के सिवा दूसरा कोई काम नहीं हो सकता था। किन्तु जब आजादी प्राप्त हो गयी, तब समाज-सेवा का धर्म आरंभ हुआ। गरीबों की भूख मिटाने का धर्म आरंभ हुआ। अब गाँव की सेवा करनी है, गाँव की संपत्ति बढ़ानी है, गाँव में भाईचारा, न्याय और समता लानी है, गाँव सुखी और स्वस्थ बनाना है।

यह भोग का समय नहीं है

किन्तु यहाँ जब से स्वराज्य आया, तभी से बहुत-से लोग समझने लगे हैं कि अब भोग करना है। एक बड़ी निधि मिली है, इसलिए अब भोग में होड़-सी लग गयी है कि कौन कितना भोग करता है, कौन कितना अधिकार पाता है। पर यह मानना गलत है कि अब कर्तव्य खतम हो गया और भोग का आरंभ हुआ है। भोग का आरंभ याने शक्ति के क्षय का आरंभ। अगर शक्ति के क्षय का आरंभ भी करना है, तो शक्ति पूर्ण होने के बाद करो। पूर्ण चंद्र होने के बाद उसका क्षय होता है, तो वह शोभा देता है। परन्तु जहाँ अमावास्या ही टल गयी, वहाँ क्षय कैसे होगा? अंग्रेजों ने एक दिवाला निकली हुई दूकान हमारे

हाथ में दी। अंग्रेजों ने हमें दरिद्री हालत में छोड़ा! ऐसी हालत में, जब कि उसमें से सार खींचना ही असंभव था।

हमारी प्राचीन ग्राम-रचना

अंग्रेजी-राज आने के बाद यहाँ की पुरानी सभ्यता टूट गयी। पहले यहाँ ग्राम-सभाएँ होती थीं, पंचायत का राज चलता था। गाँव की पैदावार, गाँव की तालीम, गाँव की रक्षा आदि गाँव का सारा महत्त्व का कारोबार पंचायत ही करती थी। पंचायत का मतलब है, पाँचों जातिवाले मिलकर काम करते थे। वह एक किस्म की सामुदायिक योजना थी। सारी जमीन पंचायत की थी। और किसान को काश्त करने के लिए उसका एक हिस्सा दिया जाता था। वैसे ही धोबी, नाई आदि सभी को एक-एक हिस्सा दिया जाता था। इस तरह सारा गाँव एक परिवार के जैसा रहता था और गाँव में पंचायत का राज चलता था। इसीको असली स्वराज कहते हैं। अंग्रेजों के आने से वह सारा इंतजाम और कल्पना टूट गयी और पैसे का राज आया। भगवान् से भी अधिक पैसे की पूजा होने लगी। लेकिन पैसे की कोई कीमत नहीं है। पैसा लफंगा है और उसीके हाथ हमने अपना सारा कारोबार सौंप अपनी जिन्दगी बरबाद कर दी! अरे, पैसा तो नासिक के प्रस में पैदा होता है। उसका कोई स्थिर मूल्य ही नहीं है। इसीलिए तो हरएक को लगता है कि अधिक-से-अधिक पैसा इकट्ठा किया जाय, जिससे वह बाल-बच्चों के काम आये। पैसे पर भरोसा नहीं रख सकते, इसी कारण अधिक-से-अधिक पैसा इकट्ठा करने की इच्छा होने लगी।

लेकिन पुराने जमाने में ऐसा नहीं था। तब तो किसीको तेल की जरूरत हो, तो वह तिल्ली लेकर तेली के पास पहुँचता और उससे कहता कि मुझे तेल पेरकर दे दो और तुम खली ले लो। तब पैसे का कोई सवाल ही नहीं था। एक कौड़ी का भी हिसाब नहीं रखा जाता था। सभी दिल से उदार थे। नाई, बढ़ई, धोबी, सब किसान का सालभर का काम करते थे। कोई हिसाब नहीं रखते थे कि किसने सालभर में कितना काम किया। नाहक काम तो कोई लेता ही नहीं था। और हरएक ने मान लिया था कि फसल का हिस्सा सबको

मिलेगा। अगर फसल कम आती, तो सबको कम मिलता, याने दुःख बँट जाता था। और अगर फसल ज्यादा आयी, तो सबको ज्यादा मिलता था, याने सुख भी बढ़ जाता था। लेकिन आज तो कोई दुःखी होता है, तो अकेला ही दुःखी होता है। उसके दुःख से समाज दुःखी नहीं होता। इसी तरह कोई सुखी होता है, तो अकेला ही सुखी होता है, उसके सुख से समाज सुखी नहीं होता। जिस समाज में व्यक्ति के सुख-दुःख से समाज सुखी या दुःखी नहीं होता, वास्तव में वह समाज-रचना ही नहीं। वहाँ समाज-रचना टूट गयी, यही कहना होगा। अंग्रेज जाने के बाद यहाँ ऐसा ही हुआ।

मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा करें

इस तरह स्पष्ट है कि हमारे हाथ में कोई निधि नहीं आयी, बल्कि पुरुषार्थ करने का उपाय आया है। अब हम चाहे जो रचना कर सकते हैं। स्वराज्य के पहले हम चाहे जो रचना नहीं कर सकते थे, विदेशी सत्ता उसमें बाधा डालती थी। अब ही तो काम करने का मौका आया है। इसीलिए मैं जवानों से कहता हूँ कि आप आगे बढ़िये। बूढ़ों का समय तो अंग्रेजों को निकालने में ही चला गया, लेकिन आज आपके हाथ में बनाने का काम आया है। आप चाहे जैसी मूर्ति बनाओ। अपनी कारीगरी दिखाने का अवसर आपको मिला है, ऐसा अवसर उन्हें नहीं मिला। तुम लोगों को तो देश पर जो दबाव था, उसीको हटाने में सारा श्रम करना पड़ा। लेकिन आप ऐसे जमाने में आये हैं, आपको ऐसा सुअवसर मिला है कि आप अपने इच्छानुसार समाज बना सकें। आज आप मूर्ति बना और उसकी प्राणप्रतिष्ठा कर उसे मंदिर में स्थापित कर सकते हैं। उस समय तो मंदिर ही हाथ में नहीं था, लेकिन आज वह हाथ आ गया। अब उसमें मूर्ति होनी चाहिए।

हमें अभी तक पूरी आजादी नहीं मिली है, सिर्फ राजकीय सत्ता हाथ में आयी है। वास्तव में गाँव-गाँव में आजादी आनी चाहिए। आजादी की हरारत और गर्मी हर गाँव में महसूस होनी चाहिए। सूर्योदय दिल्ली या पटनेवालों ने महसूस किया और गाँववालों ने सिर्फ सुना कि वहाँ सूर्योदय हुआ, यह नहीं हो

सकता। सूर्य जब उगता है, तो हर गाँव में उसकी रोशनी फैल जाती है। वैसे ही स्वराज्य की हर रात और प्रकाश हर गाँव में फैलना चाहिए। लेकिन वह नहीं हुआ। सिर्फ मंदिर या इमारत हमारे हाथ में आयी। इतने से ही भक्ति का आरंभ नहीं होता। मूर्ति की प्रतिष्ठापना के बाद ही भक्ति का आरंभ होता है। इसलिए अब जवानों का काम है कि मूर्ति बनायें, फिर उसकी प्रतिष्ठापना करें, फिर पूजा करें, फिर नैवेद्य चढ़ायें और उसके बाद भोग भोगें। लेकिन वह भोग भी भोगने की नीयत-से भोगोगे, तो राष्ट्र का क्षय ही होगा। उसे परमेश्वर का प्रसाद समझकर भोगोगे, तो पूजा चलती रहेगी; नहीं तो शक्ति क्षीण हो जायगी। लेकिन आज तो भोग का सवाल ही नहीं है। अभी मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा और पूजा करना बाकी है। जवानों को एक बहुत बड़ा मौका मिला है। गया में हमने जो भूमि का मसला हाथ में लिया है, उसे हल किये बगैर हम चैन नहीं लेंगे, ऐसी प्रतिज्ञा लेनेवाले एक हजार तरुण सेवक हमें चाहिए। 'अर्थं वा साधयामि, देहं वा पातयामि' ऐसा प्रण करनेवाले युवक चाहिए। मैं उनसे कहूँगा कि मूर्ति कैसी बनानी है, यह लोगों को समझाओ। इसके लिए पहले जमीन का बँटवारा करना होगा। फिर नये ढंग से ग्रामोद्योग चालू करने होंगे। जो ढंग इस जमाने में टिक सके, वैसा ही ढंग अपनाना होगा। नयी तालीम चलानी होगी। नये धर्म की स्थापना करनी होगी। पुराना धर्म चल नहीं सकता, जिसमें छुआछूत वगैरह है। जैसे गोकुल में श्रीकृष्ण भगवान् घर का मक्खन सबको बाँटते थे और सब मिलकर प्रेम से खाते तथा मिलकर रहते थे। वैसे ही अब करना है।

नारायण-धर्म की स्थापना

हम चाहते हैं कि सब लोग इस भावना से भोग करें कि 'समाज की सेवा करके मुझे परमेश्वर का प्रसाद मिला है और अब इसका सेवन कर मैं फिर से सेवा करूँगा, क्योंकि मेरा शरीर सेवा के लिए है।' जैसे मशीन को तेल देना आवश्यक कर्तव्य होता है, शौक नहीं—ऐसा कभी नहीं होता कि मशीन में आज यह इत्र डालूँ, कल दूसरा—वैसे ही शरीर के लिए जितना आवश्यक हो, उतन

ही उसे देना चाहिए। खिलाने का शौक नहीं होना चाहिए। जैसे हम यन्त्र को जितना आवश्यक है, उतना और जो आवश्यक है वही तेल देते हैं, वैसे ही शरीर के साथ करना चाहिए। किसीको शौक होता है, तो सूत कातने का होता है, चर्खे में तेल देने का नहीं। कताई के समान धर्म-कार्य का या सेवा का शौक रखना चाहिए, खाने का याने तेल देने का नहीं। अगर हम इस खयाल से काम करेंगे, तो सब भेद खतम हो जायँगे। शबरी भीलनी के जूठे बेर भगवान् ने सेवन किये, क्योंकि प्रेम था। प्रेम एक महान् धर्म है, जिसमें सारे धर्म डूब जाते हैं। सूरज का प्रकाश जहाँ फैलता है, वहाँ सारे तारे खतम हो जाते हैं। वैसे ही प्रेम-धर्म के प्रकाश के सामने दूसरे सारे धर्म क्षीण हो जाते हैं। आज वही प्रेम-धर्म लाना है। समाज देवता है और व्यक्ति को उसकी पूजा करनी है। नारायण की सेवा करने के लिए नर-देह मिली है। नारायण याने नरों का समुदाय। नारायण की सेवा को—जिसे आप भक्ति-मार्ग कहो या और भी कुछ—मैं तो 'नारायण-धर्म' या 'भागवत-धर्म' कहूँगा। वही धर्म मैं लाना चाहता हूँ। मेरा-तेरा, मेरी इस्टेट, तेरी इस्टेट—ये सारे भेद मिटाने हैं।

भक्ति-मार्ग आसान क्यों?

आज तक भक्तों ने कहा है कि भेद छोड़ दो। परन्तु हमने यह माना कि यह तो सिर्फ परम भक्तों के लिए ही है। किन्तु अभेद का धर्म सिर्फ महात्माओं के लिए है। यह मानना गलत है, वह तो सबके लिए है। हमारी यह बड़ी भारी गलती हुई कि हमने सारा आचार महात्माओं को सौंप दिया। स्थितप्रज्ञ के लक्षण हम रोज गाते हैं, परन्तु कहते हैं कि वह आदर्श तो महात्माओं के लिए है, हमारे लिए नहीं है। मान-अपमान समान मानना—यह हम जो रोज गाते हैं, वह महात्माओं के लिए है—इसका मतलब यह है कि जो अच्छाई है, धर्म का असली रहस्य या मेवे हैं, वह सब भक्तों को अर्पण कर दिया और मानने लगे कि सिर्फ उन भक्तों का दर्शन करने से हम मुक्त हो जायँगे। सज्जनों के दर्शन में ताकत है, यह मैं मानता हूँ परन्तु वह ताकत जिसने महसूस की, उसके जीवन में परिवर्तन होना चाहिए। तभी वह सच्चा दर्शन है।

हृदय संकीर्ण रखेंगे, हृदय के छोटे-छोटे टुकड़े बनायेंगे। इस तरह आचार और विचार में फर्क नहीं होना चाहिए। हमें जैसे जमीन सबकी बना देनी है, वैसे ही धर्म भी सबका बना देना है। 'परदुःखेन दुःखिताः विरलाः' ऐसा मत कहो, बल्कि यही कहो कि मानव का लक्षण है, दूसरे के दुःख से दुःखी होना। जो दूसरे के दुःख से दु:खी न हो, ऐसा सख्त और कठिन मनुष्य ही दुर्लभ है। सारे मनुष्य प्रेममय दिलवाले हैं, ऐसा कवि बोले, यह हम चाहते हैं।

धर्म की तकसीम

हमें धर्म को मठों या मंदिरों में सीमित नहीं रखना है, और न वह स्थितप्रज्ञ के ही सिपुर्द करना है, बल्कि समाज में लाना है। संपत्ति के बारे में भी पहले यह था कि कुछ लोग माँ-बाप थे और बाकी सारे बच्चे। माँ-बाप समझते थे कि बच्चों की परवरिश करना हमारा काम है। किन्तु अब ऐसा नहीं रहा। अब बच्चे अपनी परवरिश कर सकते हैं। इसलिए माँ-बाप को यह अहंकार छोड़ देना चाहिए कि हम ही बच्चों की परवरिश कर सकते हैं। मैं जमीन की तकसीम चाहता हूँ, संपत्ति की तकसीम चाहता हूँ, अक्ल की तकसीम तो भगवान् ने कर ही दी है, अब मैं धर्म की भी तकसीम चाहता हूँ। आज तक अपना धर्म क्या है? यह शास्त्रकारों से पूछना पड़ता है, धर्मग्रन्थों में जाकर देखना पड़ता है। लेकिन क्या कोई माँ किसी शास्त्रकार के पास पूछने जाती है या किसी मनुस्मृति में देखती है कि बच्चे को दूध पिलाना मेरा धर्म है या नहीं? वह धर्म तो उसे सहज ही मालूम होता है। प्रेम, दया आदि धर्म भी इसी तरह सहज रूप से स्फुरित होने चाहिए। किसी गीता या मनुस्मृति में उन्हें देखने-पूछने की जरूरत न होनी चाहिए।

रामराज्य हृदय में पैदा होगा

हम रामराज्य स्थापित करना चाहते हैं। लेकिन रामराज्य में क्या था? वहाँ राजा राम थे, प्रजा राम थी और सारे राम थे, राम के सिवा दूसरी कोई चीज ही नहीं थी। जब हनुमान्‌जी लंका जलाकर वापस आये और उनसे कहा गया कि तुमने बहुत बड़ा पराक्रम किया, तो उन्होंने कहा: 'पराक्रम मेरा नहीं, रामजी का है'।

रावण से भी उन्होंने कहा कि 'मैं तो रामजी का एक तुच्छ सेवक हूँ, मेरे-जैसे लाखों वहाँ पड़े हैं।' इस तरह रामराज्य में जो कुछ बनता, सारा राम के नाम पर बनता था। हरएक के दिल में सचाई, प्रेम, सत्यनिष्ठा भरी हो, तो रामराज्य आयेगा।

कुछ लोग कहते हैं कि गांधीजी के बाद हमने उनके शिष्यों को सत्ता सौंप दी, फिर भी रामराज्य नहीं आया ? लेकिन रामराज्य क्या ऊपर से गिरनेवाला है ? कोई दिल्ली से पुड़िया भरकर रामराज्य भेजनेवाला है ? रामराज्य तो हृदय में पैदा होगा। स्वराज्य प्राप्त होने के बाद आपने कितना द्वेष छोड़ा, कितना काम-क्रोध छोड़ा—यह जरा हृदय के अन्दर देखो। अगर न छोड़ा हो और पहले जैसे ही पत्थर बने हुए हों, तो रामराज्य कैसे आयेगा ? आज हम सबको बड़ा ही सुन्दर मौका मिला है। 'गाँव-गाँव अस होइ अनंदा' हम गाँव-गाँव आनन्द देखना चाहते हैं। हम रोनी सूरत नहीं देखना चाहते। हम चाहते हैं कि कोई यह न कहे कि मैं दुःखी हूँ। अगर कोई मुझसे यह कहे कि मैं दुःखी हूँ, तो मैं उससे कहूँगा कि तू नहीं, मैं दुःखी हूँ। इस तरह उसका दुःख मिटाने के लिए मैं फौरन कूद पड़ूँ, तो दुःख का दर्शन ही न होगा।

जब समाज में भक्ति नहीं रहती, तभी दुःख का दर्शन होता है। सारे समाज में पैदावार कम हो या ज्यादा, अगर भक्ति है तो सुख होगा। अगर हम दूसरेके दुःख से दुःखी होते हैं, तो पैदावार कम भी रहे, तो भी हम सुखी होंगे। कुएँ से एक बाल्टीभर पानी निकला, तो भी कुएँ में गड्ढा नहीं पड़ता, क्योंकि सारे बिंदु गड्ढा बुझाने के लिए दौड़ पड़ते हैं। उन बिंदुओं में इतना स्नेह रहता है कि सारे पानी की सतह नीचे गिर जाती है, पर गड्ढा नहीं पड़ता। लेकिन किसी गेहूँ के ढेर से एक सेर गेहूँ निकाल लो, तो गड्ढा पड़ जाता है। दो-चार गेहूँ-महात्मा वहाँ गिरते और गड्ढा बुझाने की कोशिश करते हैं, फिर भी वह कायम ही रहता है। आज के समाज की यही हालत है। समाज के दुःखरूपी गड्ढे को भरने के लिए थोड़े-से महात्मा आते हैं, पर उतने से गड्ढा नहीं भरता। उन महात्माओं ने अपना काम तो कर दिया, पर गड्ढा बना ही रहा। इस तरह स्पष्ट है कि चंद महात्मा होने से गड्ढा भरता नहीं। लेकिन जब सारे-के-सारे

लोग पानी की बूँदों की तरह गड्ढा भरने के लिए दौड़ पड़ें, तो पता ही न चले कि कभी गड्ढा था या होगा। अतः जब हम दूसरों के दुःख से दुःखी होते हैं, तो समाज में चाहे पैदावार कम हो या ज्यादा, कोई दुःखी नहीं हो सकता। अमेरिका कितना संपन्न देश है, फिर भी वहाँ दुःख नहीं, ऐसी बात नहीं; क्योंकि वहाँ कोई भी एक-दूसरे की परवाह नहीं करता। इसलिए सुख-दुःख पैदावार पर निर्भर नहीं है। एक के दुःख में सारे हिस्सा लेंगे, तो समाज में दुःख रहेगा ही नहीं।

पकरी बरवाँ
२१-४-'५२

गरीबों से दान क्यों ? : ६ :

आज मुझे कुछ कम्युनिस्ट भाइयों ने सवाल पूछे हैं। उनका मैं जवाब दूँगा। मुझे खुशी है कि यहाँ कुछ कम्युनिस्ट भाई काम कर रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि वे ठीक ढंग से काम करें। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि हिन्दुस्तान के गरीबों के उद्धार की जितनी चिंता उन्हें है, उतनी ही मुझे भी। उन्हींकी तरह मैं भी गरीबों का कल्याण चाहता हूँ और मेरा प्रयत्न उसी दिशा में चल रहा है। इसलिए मैं उनका सहयोग चाहता हूँ। उनमें और हममें कुछ विचारभेद हैं और हिन्दुस्तान जैसे बड़े देश में उनका होना लाजिमी भी है। लेकिन जहाँ तक गरीबों की सेवा का प्रश्न है, वे गरीबों से जितना प्रेम रखते हैं, उतना ही हम भी रखते हैं। इसीलिए उनका सहयोग चाहते हैं। अगर उन्हें ऐसा लगे कि गरीबी की समस्या का हल करने का यह तरीका अच्छा है, तो हम उनसे सहयोग की अपेक्षा करेंगे।

यह प्रेम का एक चिह्न !

हम सबसे जमीन माँगते हैं, इसका मतलब यह नहीं कि हम सबसे समान जमीन माँगते हैं। जो मध्यम श्रेणी के किसान हैं, उनसे छठा हिस्सा माँगते हैं।

बड़े-बड़े काश्तकार और जमींदारों से कहते हैं कि आप अपने लिए थोड़ा-सा रख-कर बाकी सारा-का-सारा दान दे दें। और जो बिलकुल गरीब हैं, उनसे हम प्रसाद के रूप में वे जो भी दें, ग्रहण कर लेते हैं। जैसे सुदामा के तंदुल से भगवान् प्रसन्न हो गये, वैसे ये गरीब लोग अगर थोड़ा भी दे देते हैं, तो भारत-माता प्रसन्न हो जाती है, क्योंकि वह तो प्रेम का एक चिह्न है। जब तक देश के सब बेजमीनों को जमीन नहीं मिलती, तब तक हम माँगते जायँगे।

मुझसे अक्सर पूछा जाता है कि गरीबों से दान क्यों लेते हो? मुझे इसका जवाब देने में खुशी होती है, क्योंकि इससे ज्ञान-प्रचार हो जाता है। हम जो गरीबों से जमीन लेते हैं, उसके चार कारण हैं :

सबसे गरीब को मदद

(१) आज समाज में सबसे दुःखी बेजमीन लोग हैं। उनकी तुलना में गरीब किसान भी सुखी हैं। आखिर हम जब किसीको सुखी या दुःखी कहते हैं, तो किसीकी तुलना से ही न कहते हैं? अगर कोई अपने से नीची श्रेणीवाले की ओर देखे, तो वह खुद को सुखी समझेगा और अपने से ऊपरवाले की ओर देखे, तो खुद को दुःखी समझेगा। इसलिए आज समाज में जो सबसे ज्यादा दुःखी है, उसके लिए हरएक को थोड़ा-थोड़ा त्याग करना चाहिए। समुद्र सबसे नीचे की सतह पर है, तो दुनिया का सारा पानी उसीकी तरफ बहता है। पहाड़ का पानी भी समुद्र की तरफ दौड़ता है और मैदान का पानी भी। अगर उस पानी से यह कहें कि तू क्यों समुद्र की तरफ दौड़ता है, तू तो निचान पर है? तो वह कहेगा कि समुद्र से तो मैं ऊँचान पर हूँ। इसलिए मैं भी उसीकी तरफ दौड़ूँगा। इसी तरह जैसे श्रीमान् का यह कर्तव्य हो जाता है कि बेजमीन के लिए कुछ दें, वैसे ही गरीब का भी वह कर्तव्य है, क्योंकि जो बिलकुल बेजमीन हैं, उनके हिसाब से वह गरीब किसान भी कुछ सुखी ही है। इसलिए हरएक की जिम्मेवारी यह हो जाती है कि बेजमीन के लिए कुछ-न-कुछ करें। यही बात हम सिखाना चाहते हैं, अन्यथा जिनके पास कम जमीन है, उनका कुछ कर्तव्य ही नहीं रहा, ऐसा हो जायगा। लेकिन हरएक का कुछ

कर्तव्य है। मेरे लिए पर्याप्त रोटी मेरे पास नहीं है, तो भी अगर कोई भूखा मेरे पास आ जाय, तो मेरे पास जो भी कुछ है, उसमें से एक हिस्सा उसे देना मेरा कर्तव्य है। यह एक धर्म है और हम यही धर्म-भावना समाज में लाना चाहते हैं।

आसक्ति का निराकरण

(२) आखिर हम सिखाना चाहते हैं कि जमीन पर किसीकी मालकियत ही न रहे। आज श्रीमान् अपने को अपनी जमीन का मालिक समझता है, वैसे गरीब भी अपनी थोड़ी-सी जमीन का अपने को मालिक समझता है। दोनों खुद को जमीन का मालिक मानते हैं। पर हम दोनों को मालकियत की इस भावना से मुक्त करना चाहते हैं। जैसे प्यासे को पानी पिलाना अपना कर्तव्य है, वैसे ही जो जमीन माँगता है, उसे जमीन देना भी अपना कर्तव्य है, क्योंकि जमीन परमेश्वर की है—यह हम समझना चाहते हैं। आज मालकियत की भावना श्रीमान् और गरीब, दोनों में है। वैसे तो एक जंगल में रहनेवाले बाबाजी के पास भी जो दो लँगोटियाँ रहती हैं, उनमें उसकी उतनी ही आसक्ति रहती है, जितनी एक श्रीमान् की अपने ढेर कपड़ों में। इसलिए हम सबको आसक्ति से छुड़ाना चाहते हैं।

नैतिक प्रभाव

(३) हम श्रीमानों से जमीन माँगें, तो उसके लिए हमारा उन पर असर भी होना चाहिए। लेकिन असर कैसे हो? क्या हमारे पास शक्ति है? हमारे पास न तो पिस्तौल है और न उसकी ताकत पर विश्वास। हमारा तो मानना है कि पिस्तौल से कोई काम नहीं बनता, बल्कि बिगड़ता ही है। इसलिए हम नैतिक शक्ति निर्माण करना चाहते हैं। जब हजारों गरीब दान देंगे, तो नैतिक शक्ति पैदा होगी और उसका असर श्रीमानों पर होगा, और ऐसा हो भी रहा है। पहले तो श्रीमान् लोग हमें टालते थे, पर अब हजारीबाग में उन लोगों ने हमें बहुत जमीन दी। उन्होंने अब जमीन इसीलिए दी कि जब दो साल तक गरीब लोगों ने हम पर दान की वर्षा की। आखिर शर्म भी एक चीज होती है! और बेशर्म के लिए शर्म होना भी अच्छा है। शास्त्रों ने कहा है कि "ह्रिया देयम्!"

नैतिक शक्ति प्रकट करने का यह एक तरीका है। जिन्होंने एक लाख दिया, वे राजासाहब मुझसे मिलने आये थे। मैंने उनसे कहा कि आपने दान दिया है, सो तो अच्छा किया; लेकिन सिर्फ इतने से काम नहीं चलेगा। आपको तो अपनी टोली में के औरों से भी दान दिलवाने का काम करना चाहिए। उन्होंने मेरी बात स्वीकार कर ली। और आहिस्ता-आहिस्ता ये बड़े लोग मेरा काम उठा लेंगे, ऐसी मुझे उम्मीद है। कारण गरीबों ने जो दान दिया है, इससे एक नैतिक शक्ति निर्माण हो रही है।

सत्याग्रही-सेना का निर्माण

(४) मैंने कई बार कहा है कि हम तो अपनी सेना तैयार कर रहे हैं। हमें ऊँच-नीच का भेद खतम करना है और ऐसी सेना बनानी है, जिसके आधार पर लड़ाई लड़ सकें। जिन्होंने दान दिया या त्याग किया और हमारे काम के प्रति सहानुभूति दिखायी, वे ही हमारे सैनिक बनेंगे। हमारी सेना हिंसा की नहीं है। हिंसा की सेना में तो वे ही लिये जाते हैं, जिनकी बत्तीस इञ्च की छाती होती है। लेकिन हमारी सेना में दाखिल होने के लिए त्याग की छाती चाहिए। आगे कभी अगर श्रीमानों के दिल न खुले, तो हम एक कदम और भी आगे बढ़ेंगे। आज जो कर रहे हैं, उससे एक भी कदम आगे नहीं बढ़ेंगे, ऐसी हमने अपने लिए कैद या मर्यादा नहीं रखी है। कारण हमारा इस पर विश्वास नहीं। हमारे लिए प्रेम की शक्ति होनी चाहिए। माँ बच्चे के लिए कितना त्याग करती है, लेकिन वह जब देखती है कि बच्चा बुरे रास्ते पर जा रहा है और उसका उसे दुःख होता है, तो वह क्या करती है ? वह सत्याग्रह ही तो करती है। वह उपवास करती और खुद उसे समझाती है। दूसरों को तकलीफ दिये बगैर खुद सहन करना और समझाना ही सत्याग्रह है।

सत्याग्रह की अमोघ शक्ति

'सत्याग्रह' का नाम लेकर मैं कोई धमकी की बात नहीं कह रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि सत्याग्रह का दुरुपयोग हो सकता है और इन दिनों तो अक्सर हो रहा है। लेकिन मैं मानता हूँ कि सत्य का आचरण आग्रहपूर्वक करना चाहिए, ताकि

सामनेवालों के हृदय पिघल जायँ। इसके लिए चाहे जिस त्याग की तैयारी हो, वही सत्याग्रह है। मैं यह भी मानता हूँ कि अगर एक भी सच्चा सत्याग्रही दुनिया में होगा, तो उसका असर दुनियाभर पर पड़ेगा और दुनियाभर का हृदय पिघलेगा। लेनिक उसके मन में सारी दुनिया के प्रति प्रेम होना चाहिए।

गलत और सही उपवास

लेकिन आज तो छोटे-छोटे कामों के लिए—जैसे प्रांत बनाने के लिए भी—उपवास होते हैं। यह सारा गलत है, क्योंकि हम देख रहे हैं कि उससे ऐसी प्रतिक्रियाएँ होती हैं, जो मूल उद्देश्य से सर्वथा भिन्न होती हैं। जहाँ उपवास का परिणाम सबके दिल में प्रेम-भाव निर्माण होने में होता है, वही सच्चा उपवास है। लेकिन जहाँ उसकी विपरीत प्रतिक्रियाएँ होती हैं, द्वेष-भाव और झगड़े होते हैं, वह उपवास गलत है। उपवास तो वही होना चाहिए, जहाँ जिसके विरोध में वह किया जाता हो, उसके प्रति हमारे मन में प्रेम हो और उपवास के बाद सामनेवाले को शर्म मालूम पड़े। उसे ऐसा लगे कि मैंने दुष्टता की, गलती की। जिसके विरोध में मैं उपवास या सत्याग्रह करता हूँ, अगर उसके मन में ऐसी भावना न आयी, तो मैं कच्चा सत्याग्रही साबित होऊँगा। सामनेवाले के मन में जब यह भावना हो कि इस व्यक्ति के मन में मेरे लिए प्रेम है, तभी मैं सच्चा सत्याग्रही साबित होऊँगा।

केवल विरोध ही सत्याग्रह नहीं

इसलिए जब मैं सत्याग्रह की बात कहता हूँ, तो डरिये नहीं। यह मैं विचार की सफाई के लिए कह रहा हूँ। मेरा तो मानना है कि हमारा यह जो काम दो साल से चल रहा है, वह एक किस्म का सत्याग्रह ही है। हमने भी सत्याग्रह का अध्ययन किया है, इसलिए हम कुछ तो उसे समझे ही हैं। सत्याग्रह का अर्थ यह नहीं कि किसी एक मौके पर किसीके खिलाफ कुछ करना। इसलिए हमारा जो सारा काम चल रहा है—पैदल घूमना, गाँव-गाँव जाकर लोगों को विचार समझाना, जमीन माँगना—यह सारा सत्याग्रह ही है।

'टंकारेणैव धनुष:'

सिर्फ पिस्तौल से हिंसा हो सकती है, ऐसी बात नहीं। जैसे पिस्तौल से हिंसा होती है, वैसे उपवास से भी हो सकती है। मेरा विश्वास है कि मेरी सेना ऐसी जबरदस्त साबित होगी कि उसे लड़ना ही नहीं पड़ेगा। 'टंकारेणैव धनुषः'—तीर छोड़ने की भी जरूरत नहीं, सिर्फ धनुष की टंकार सुनकर ही सामनेवाला खतम हो जाता है, ऐसा कहा गया है। वैसे ही हमारी सेना की हुंकार से ही काम हो जायगा। जब लाखों गरीब लोग दान देंगे, तो बिना लड़ाई लड़े काम हो जायगा। भगवान् को जब गोवर्धन खड़ा करना था, तो उसने सबसे कहा कि अपनी-अपनी लाठी उसके नीचे लगाओ। यह एक जन-शक्ति निर्माण करने की बात है। इसीलिए हम गरीबों से दान लेते हैं।

नारदीगंज
२४-४-'५२

अहिंसा का रहस्य : १० :

हमारे साथ कुछ दिन एक जापानी समाजवादी सज्जन घूमते थे। उन्होंने एक सवाल पूछा : "आपके देश को अहिंसा से स्वराज्य प्राप्त हो सका, इसका एक कारण हमें तो यह लगता है कि आपका अंग्रेजों से पाला पड़ा था। अंग्रेजों की एक सभ्यता है और दूसरों की तुलना में वे सौम्य हैं। इसीलिए अहिंसा के आंदोलन का उनके हृदय पर परिणाम हो सका। लेकिन हमारा सोवियतवालों से पाला पड़ा है, और उन्होंने तो हिंसा का एक तत्त्वज्ञान ही बना लिया है। उनके सामने अहिंसा चलेगी ही कैसे ?"

मैंने उन्हें जवाब दिया : "तो फिर आपका काम अधिक सरल है, ऐसा ही मैं कहूँगा। सामने अँधेरा जितना घना होगा, दीपक के लिए उतनी ही अधिक सुविधा होगी। अधूरा अँधेरा और अधूरा प्रकाश रहे, तो दीपक उतना चमक नहीं सकता। घने अँधेरे को वह सहज में भेद सकता है। काले तख्ते पर ही सफेद खड़िया चमक उठती है।"

कोई भी मानव-समाज शैतान नहीं

इस जापानी मित्र ने जैसी शंका उठायी, वैसी शंका हममें से अनेक के मन में है। जापानी भाई को सोवियतवाले शैतान मालूम होते हैं। सनातनी हिन्दू को मुसलमान शैतान मालूम होता है। सोवियतवालों को जापान और जर्मनी शैतान मालूम होते हैं। सचमुच कोई भी मानव-समाज शैतान नहीं है। इसके विपरीत, सभी मुल्कों के समाजों ने लोभ और डर के शिकार होकर बुरे-से-बुरे काम किये हैं। सनातनी पावित्र्यवादी हिन्दुओं ने अछूतों पर कम अत्याचार नहीं किये। अंग्रेजों ने सन् '५७ में और जालियानवाला बाग में जो घोर अत्याचार किये, वे तो नाजी और फासिस्टों की तुलना में सहज ही टिक जायँगे। स्वराज्य-प्राप्ति से ठीक पहले और स्वराज्य-प्राप्ति के बाद तुरन्त, हिन्दू, मुसलमान और सिख—तीनों की मानो दुर्जनता में होड़ ही लग गयी थी। समाज में ऐसी लहरें बीच-बीच में आ जाती हैं। फिर भी समाज का स्वास्थ्य कुल मिलाकर चंगा रहता है। कोई भी समाज समझदारी से वंचित नहीं है। हम कुछ पूर्वग्रह बना लेते हैं, फिर उसके अनुसार घटनाओं की ओर विकृत दृष्टि से देखते और एक काल्पनिक इतिहास बनाकर बैठ जाते हैं। इसीसे गलतफहमियाँ दृढ़ होती हैं, भय पक्का होता और मनुष्य विकारों का शिकार बन जाता है। विचारों का संतुलन नहीं रह पाता।

अहिंसा बाहरी क्रिया नहीं, हृदय की निष्ठा

विचारों का संतुलन कायम रखने और बुद्धि की समता डिगने न देने का ही नाम 'अहिंसा' है। गुस्से में आकर सामनेवाले को मार देने का नाम 'हिंसा' है, और गुस्से में आकर उपवास करने का नाम 'अहिंसा'—यह बात नहीं। अहिंसा सिर्फ बाहर की क्रिया नहीं, हृदय की निष्ठा है। आमरण उपवास की धमकी देना अगर अहिंसा मानी जाय, तो कच्चे दिलवाले आदमी के खिलाफ भले ही वह सफल हो, किंतु पक्के दिलवाले के खिलाफ कभी सफल नहीं होगी। फिर अहिंसा का ढोंग यशस्वी न हुआ, तो वह अहिंसा का दोष नहीं दिया जा सकता।

गीता ने यह जो बात हमारे सामने रखी है कि 'मन में गुस्से से उबलकर

उपवास करनेवाला भी जैसे हिंसक हो सकता है, वैसे ही चित्त की समता न डिगने देते हुए शांत वृत्ति से, प्रसंगविशेष पर, अनिवार्य समझकर, परिस्थितिवश शारीरिक हिंसा करनेवाला भी अहिंसक हो सकता है', वह बहुत विचारणीय है। मुझे लगता है कि दुनिया के समस्त धर्म-साहित्य में यह गीता की विशेषता है। गीता के इस विवेचन से अनेक की गलतफहमी हुई है, अनेक के मन में असमंजसता पैदा हुई है और अनेक की दिशा भूल हुई है। गीता ने हिंसक साधनों का आज्ञा-पत्र दे दिया है, ऐसा उसका निष्कर्ष मानकर कुछ लोग गीता पर मुग्ध हैं, तो कुछ रुष्ट। गीता को हिंसा का बचाव नहीं करना है। आज के विज्ञान-जगत् में हिंसा से कोई भी सवाल हल नहीं हो सकता। बल्कि हिंसा मानव का समूल नाश करेगी, यह निर्विवाद है। लेकिन गीता को एक सूक्ष्म विचार समझाना है। अशांतवृत्ति से ऊपर-ऊपर से अहिंसक साधन इस्तेमाल करनेवाले की अपेक्षा शांतवृत्ति से स्थूल हिंसा करनेवाला अधिक अहिंसक हो सकता है, ऐसा विरोधात्मक विवेचन करके गीता ने अंतःशुद्धि का महत्त्व चित्त पर अंकित कर दिया है।

शब्द से कृति महान्

विरोधाभास के द्वारा विशिष्ट विचार अंकित करने की यह कुशल गुरु की पद्धति ही है। बाइबिल में एक कथा है। एक पिता के दो लड़के थे। पिता ने दोनों को कुछ काम बताया। पहले लड़के ने कहा : ठीक है, मैं करूँगा। पर उसने किया नहीं। दूसरे ने कहा : मैं नहीं करूँगा। लेकिन उसने वह कर डाला। यह कथा कहकर बाइबिल पूछती है, दोनों में से कौन-सा लड़का आज्ञाकारी है? जो 'नहीं करूँगा' कहकर बाद में कर डालता है, वही पिता की आज्ञा का पालन करनेवाला लड़का है—यह बाइबिल का अभिप्राय है। लेकिन सवाल यह है कि क्या ऐसा तीसरा लड़का हो ही नहीं सकता, जो कहेगा कि मैं करूँगा, और वह करके दिखायेगा भी? ऐसा लड़का हो सकता है और उसका श्रेष्ठत्व भी स्पष्ट ही है। लेकिन शाब्दिक की अपेक्षा कृति करनेवाला श्रेष्ठ है, यह समझाने के लिए ही यह विरोधाभासात्मक कहानी रची गयी है। गीता में भी यही खूबी है।

अहिंसा का सार : स्थितप्रज्ञता

चित्त को शांत और प्रसन्न रखनेवाला तथा बाहर से भी अहिंसक साधनों का आश्रय लेनेवाला मनुष्य निस्संदेहपूर्ण अहिंसक, स्थितप्रज्ञ है। ऐसी पूर्ण अहिंसा के सामने चाहे जितनी बड़ी दुर्जनता ठहर नहीं सकती। प्रज्ञा की स्थिरता ही अहिंसा का सार है, और जिसके पास वह है, आज के विज्ञान के युग के अनुरूप सत्याग्रहादि अहिंसक साधनों से वह विजयी हो सकता है। फिर उसका मुकाबला सोवियत के साथ हो या साम्राज्यवाद के साथ या शैतान के साथ हो।

'तत्र श्रीर् विजयो भूतिर् ध्रुवा निः इति मतिर् मम (विनायकस्य)।'

अप्रैल, १९५२

जमींदार भूदान का काम उठायें : ११ :

मेरी सारी कोशिश यह है कि मनुष्य के अंदर छिपे हुए सत्त्व-गुण को बाहर आने का मौका दिया जाय। वैसे मनुष्यों में सत्त्व, रज और तम, तीनों गुण होते हैं, पर कुछ लोगों में एक गुण का दूसरे गुणों पर जोर चलता है। साधु पुरुष सात्त्विक होते हैं। उनमें रजोगुण और तमोगुण, दोनों के अंश तो होते हैं, पर वे दबे रहते हैं और सत्त्वगुण ऊपर आता है। इसीलिए उनसे अच्छे काम बनते हैं। हरएक दिल में तीनों गुण होते हैं, पर कुछ लोगों के दिलों पर रजोगुण का अधिक असर रहता है, कुछ पर तमोगुण का, तो कुछ पर सत्त्व-गुण का।

आम जनता तमोगुणी, शिक्षित-वर्ग रजोगुणी

आज हिंदुस्तान की आम जनता तमोगुण में डूबी हुई है। उसमें अज्ञान, आलस, झगड़े आदि अनंत दुर्गुण हैं, जो तमोगुण की पैदाइश है। वे गरीबी में रहते हैं। लादी हुई गरीबी पाप है। तमोगुण के कारण ही वे गरीबी में रहते हैं। शहरवालों और देहात के बड़े लोगों पर रजोगुण का असर है, इसलिए वे अपनी सारी अक्ल दूसरों को लूटने में खर्च करते हैं। वे यह नहीं जानते कि भगवान् ने उन्हें अक्ल सेवा के लिए दी है, लूटने के लिए नहीं। बुद्धि, लक्ष्मी और शक्ति,

ये सारी देवताएँ हैं। लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति, तीनों पवित्र देवताएँ हैं, पर वे लोग इनका उपयोग दूसरों को तकलीफ पहुँचाने में करते हैं। इससे वे कुछ भी नहीं पाते, पर इस बात को नहीं समझते और दौलत के पीछे जाते हैं। फिर वे संकुचित बन जाते हैं, आसपास के लोग दुःखी होने पर भी खुद सुखी रहने की कोशिश करते हैं। किन्तु भगवान् की योजना ऐसी है कि आसपास के लोग दुःखी हों, तो हम सुखी नहीं रह सकते। पड़ोस में किसीकी मौत हुई, तो हम लड्डू नहीं खा सकते। यही इन्सानियत है, नहीं तो हम जानवर बन जाते। इस तरह आज समाज में रजोगुण और तमोगुण की टक्कर चल रही है। तमोगुण ज्यादा ताकतवर होता है, इसलिए वह बढ़ता है। जिनके पास अक्ल, पैसा या शक्ति है, वे दूसरों को दबाने की कोशिश करते हैं, क्योंकि उनमें रजोगुण है। हम चाहते हैं कि आम समाज और शिक्षित लोग, दोनों सत्त्वगुणी बनें।

भूदान-यज्ञ : सत्त्वगुण बाहर लाने की कोशिश

भूदान-यज्ञ सत्त्वगुण को बाहर लाने की एक कोशिश है। सत्त्वगुण को बाहर लाने से आनन्द निर्माण होगा और समाज आगे बढ़ेगा। गीता कहती है कि जहाँ सत्त्वगुण है, वहाँ आरोग्य, सुख और उत्तम गति है। अगर हम चाहते हैं कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हमारा समाज सुखी और आरोग्य-सम्पन्न हो, तो यह लाजिमी है कि समाज में सत्त्वगुण फैले। आज भी सत्त्वगुण है, पर वह छिपा हुआ है। उसे बाहर लाने की कोशिश करना ही भूदान-यज्ञ का काम है। इसलिए वह काम आज तक थोड़ा ही हुआ, तो भी सबको प्रिय हुआ है। अभी तक करोड़ों एकड़ जमीन पड़ी है, उसे लेना बाकी है। अभी तो लाखों एकड़ ही मिली है, जो बहुत कम है। लेकिन एक शुभ आरंभ हुआ है। आज समाज जिस दिशा में जा रहा है, उससे बिल्कुल उल्टी दिशा में यह काम चल रहा है। यह उल्टी गंगा बहाना है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। परन्तु आज समाज में एक प्रवाह बह रहा है। कोई उसमें न जाना चाहते हुए भी उसे रोक नहीं सकते। हम एक नया प्रवाह बहाना चाहते हैं। बहुत सारे लोग

इस काम के प्रति सहानुभूति बता रहे हैं। दिन-ब दिन-इसकी गति बढ़ रही है। परन्तु अभी वह काम पूरा नहीं हो रहा है।

हरएक से दान चाहिए

हम चाहते हैं कि यह काम हम जिनके हित में कर रहे हैं, वे इस बात को समझ लें और खुद होकर इसे उठायें। सिर्फ चन्द लोग नहीं, बल्कि सभी यह काम करें। इसीलिए तो मैं छोटे-छोटे काश्तकारों से भी दान लेना चाहता हूँ। मुझसे अक्सर पूछा जाता है कि गरीबों से दान क्यों लेते हो? उन्हें तो दान देना ही है। श्रीकृष्ण भगवान् सुदामा को देने ही वाले थे, पर बिना लिये नहीं दिये। आखिर मनुष्य के हृदय के अन्दर एक भावना होती है, वह शुद्ध होती है, तो दुनिया में फैलती है। आज गरीबों का पक्ष लेनेवाले बहुत-से हैं, हम भी हैं। अक्सर लोग समझते हैं कि सारे गरीब सत्त्वगुणी होते हैं, पर ऐसी बात नहीं। उनका सत्त्वगुण छिपा हुआ है। इसलिए हमारी कोशिश चल रही है कि उन्हें सत्त्वगुण की शिक्षा और दीक्षा देनी चाहिए। उसी तरह हम रजोगुण-वालों को भी सत्त्वगुण की दीक्षा देना चाहते हैं।

हमें हर घर में पहुँचना चाहिए और हरएक से दान-पत्र लेना चाहिए। अगर सौ में से एक का भी दान-पत्र नहीं मिला, तो हम मानेंगे कि हमारा काम अपूर्ण रहा। और परमेश्वर का काम अपूर्ण नहीं रह सकता, वह पूर्ण ही होता है। इसलिए हम शत प्रतिशत दान-पत्र चाहते हैं। गरीब लोग **'पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्'** देंगे, पर उन सबके दिलों का प्रेमभाव प्रकट होना चाहिए। उससे एक महान् नैतिक शक्ति पैदा होगी, जिसका असर हिन्दुस्तान पर होगा। हर-एक दान देनेवाले में से सत्त्वगुण पैदा होगा।

बड़े लोग यह काम उठा लें

गरीबों से दान लेने में हमें कुछ सफलता मिली है, किंतु इतनी सफलता रजोगुणवालों को सत्त्वगुणी बनाने में नहीं मिली। मैं चाहता हूँ कि बड़े लोग इस काम को, विनोबा का काम नहीं, अपना ही काम समझकर उठा लें। उनमें से कुछ लोग तो उठा रहे हैं, पर बहुत-से ऐसे हैं, जिनके हृदय के किवाड़ अभी

खुले नहीं हैं। लेकिन धीरे-धीरे ज्ञान फैलेगा और किवाड़ खुल जायँगे, इसलिए हम सब्र से काम करते हैं। किंतु सब्र की भी एक हद होती है। बिहार में प्रवेश करने के बाद जमींदार-एसोसियेशन के सेक्रेटरी ने मुझसे कहा कि सरकार कानून के जरिये जमीन छीन रही है, उसे आप रोकिये। मैं मानता हूँ कि कानून कितना भी न्याययुक्त बनाने की कोशिश करो, तो भी वह तो औसत होता है। इसलिए उसमें सबको पूरा न्याय नहीं मिलता। मैंने उनसे कहा कि आपकी बात ठीक है, *इसलिए आप मेरा काम उठा लीजिये। अगर बड़े लोग फौरन कम-से-कम छठा* हिस्सा देंगे, तो कानून नहीं बनेगा। हम तो प्रेम से समझायेंगे कि अभी कानून बनाने की जरूरत नहीं। उतावली से काम नहीं करना चाहिए, आगे सब लोगों की सम्मति से अच्छा कानून बनेगा। किंतु यह हम तब कहेंगे, जब आप छठा हिस्सा देंगे। वे उस वक्त इस बात के लिए अपने को असमर्थ समझते थे। हम उन्हें दोष नहीं देते, क्योंकि उस समय हमारा बिहार में प्रवेश ही हुआ था। *किंतु अब तो हमें यहाँ आये छह-सात महीने हो गये हैं।* इसलिए मेरी बड़े लोगों से प्रार्थना है कि आप इस काम को अपनाइये। यह काम आपके हित में है।

आज मुझे कुछ जमींदार मिले थे। मैंने उनसे कहा कि आज आप थोड़ी-सी जमीन देते हैं, पर इससे मेरा संतोष नहीं होगा। जब आप इस काम को अपने सिर पर उठायेंगे और मुझसे कहेंगे : "आप मत घूमिये, हम घूमेंगे, आप गरीबों के पास जाइये, क्योंकि वहाँ हमारी पहुँच नहीं है, परंतु श्रीमानों से दान लेना हमारा काम है", तो मुझे संतोष होगा।

इंग्लंड से सबक सीखो

मैं बड़े लोगों से प्रार्थना कर रहा हूँ कि अगर आप यह काम उठायेंगे, तो एक चमत्कार होगा। आपके हृदय में सत्त्वगुण का प्रकाश फैलेगा, जिससे आपको नेतृत्व मिलेगा, दुनिया की सेवा करने का मौका मिलेगा। अंग्रेजों ने देखा कि अगर हम हिंदुस्तान नहीं छोड़ेंगे, तो आखिर में छोड़ना तो पड़ेगा ही, परन्तु उसके साथ कटुता भी रहेगी। फिर उन्होंने एक तारीख मुकर्रर की और निश्चित मुद्दत में वे यहाँ से चले गये। यह कोई छोटी बात नहीं है। जिस तरह यह

इतिहास में लिखा जायगा कि गांधीजी ने लोगों को अहिंसा के लिए तैयार किया, उसी तरह इंग्लैण्ड के बारे में भी ऐसा लिखा जायगा कि उसका इसमें बहुत बड़ा यश है कि उनके हिंदुस्तान छोड़ने के बाद भी हिंदुस्तानियों ने माउंटबेटन को प्रेम से यहाँ रख लिया। यह इंग्लैण्ड की एक नैतिक विजय मानी जायगी। सत्याग्रह में, अहिंसक लड़ाई में दोनों की जीत होती है और हिंसक लड़ाई में एक की जीत, तो दूसरे की हार होती है। हमारी लड़ाई अहिंसक थी, इसलिए उसमें हिंदुस्तान की जीत हुई और इंग्लैण्ड की भी। इसलिए मैं जमींदारों से कहना चाहता हूँ कि इंग्लैंड से सबक सीखो। अगर हम इज्जत, प्रेम, सौहार्द और बंधु-भाव को कायम रखना चाहते हों, तो मौके पर चाहे जो काम करना होगा। आखिर राह देखने की, सब्र की भी एक हद होती है। गरीब कहाँ तक राह देखेंगे ?

समय रहते दान दीजिये

आज मज़दूर जाग्रत हो रहे हैं। हमने सुना है कि बिहार में जमीन की कीमत आधे से भी ज्यादा गिर गयी है। क्योंकि यह जो आंदोलन चला है, उससे यह बात फैल गयी है कि जमीन सबकी हो चुकी है। मैं भिक्षा माँगने नहीं, दीक्षा देने आया हूँ। मैं चाहता हूँ कि गरीब का हक आपके ध्यान में आना चाहिए। 'हवा, पानी और सूरज की रोशनी के समान जमीन पर भी सबका हक है'—यह सुनकर गरीब जाग गये हैं। इसलिए जमींदार लोग फौरन काम करते हैं, तो उनके लिए शोभा रहेगी। आखिर लाचारी से दान देंगे, तो उस दान में रुचि नहीं रहेगी।

गीता में कहा है कि तामस दान का यह लक्षण होता है कि देनेवाला मुँह टेढ़ा करके देता है। दुःख के साथ देता है। खुशी से नहीं देता। अगर खुशी से दिया जाय, तो थोड़ा-सा देने पर भी बहुत मिलता है। अगर बिना खुशी के, बिना प्रेम के दान दिया जाता है, तो उसका परिणाम ठीक नहीं होता, जितना कि "देशे-काले, पात्रे" याने ठीक मौके पर दान देने से होता है। तो क्या अब दान देने का काल नहीं आया है ? क्या यह देश दान देने लायक नहीं है और क्या मैं पात्र

नहीं हूँ ? ठीक समय पर काम करो, तो अच्छा परिणाम मिलेगा। समय रहते ही डॉक्टर को बुलाना चाहिए। देरी से बुलायें, तो पैसा जाता ही है और रोगी भी मर जाता है। इसीलिए समय रहते ही काम करना चाहिए। हरिजनों के लिए आप हृदय के मंदिर खोल दीजिये, नहीं तो उस मंदिर की पवित्रता खतम हो जायगी। ठीक मौके पर ठीक काम करने से उत्तम परिणाम होता है—यह मेरी आवाज पहचानिये और मुझे ज्यादा मत घुमाइये।

क्रान्ति हिंसा से नहीं हो सकती

मैं एक गरीब की कहानी सुना रहा हूँ। ऐसी कहानी, जो हमने भारत में पढ़ी थी, अब बन रही है। एक तीन एकड़वाला अपनी सब जमीन देना चाहता था। मैंने उसे रोका, फिर भी उसने एक एकड़ दी। वह इतनी ज्यादा जमीन देना चाहता था कि मुझे ही कहना पड़ा, 'मत दो'। मैं कहता हूँ कि बड़े लोग इसी तरह कर्ण के समान दान दें, तो फिर मुझे कहना पड़ेगा कि 'इतना मत दो। कुछ कम करो।' अगर ऐसा करोगे, तो हिंदुस्तान में एक ऐसी क्रान्ति होगी, जो आज तक कभी नहीं हुई थी। अहिंसा से क्रान्ति करो, हिंसा से क्रान्ति हो ही नहीं सकती। हिंसा एक ऐसी मूढ़ शक्ति है, जो क्रांति नहीं ला सकती। वह एक ऐसा ऊटपटांग बदल करती है कि उससे दूसरी कई बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं। इसलिए क्रांति तो अहिंसा से हो सकती है। ऐसी क्रांति करो, तो दुनिया में आपकी इज्जत बढ़ेगी और दुनिया को आकार देने की शक्ति हमारे हाथ में आ जायगी।

क्रांतियाँ फुर्सत से नहीं होतीं

आज हिन्दुस्तान की आवाज दुनिया में सुनाई देती है। इसके पहले तो सुनाई नहीं देती थी। वहाँ के लोग गांधी, टैगोर आदि के ग्रन्थ पढ़ते थे। क्योंकि उन्हें पढ़े बगैर चारा नहीं था। फिर भी वे सोचते थे कि ऐसे कुछ लोगों को छोड़कर हिन्दुस्तान में बाकी सब मुर्दे हैं। लेकिन आज हमारी बात दुनिया में सुनी जाती है। अगर आप भूमि का मसला शांति से हल करोगे, तो शान्ति का इतना काम होगा, जो लाखों सैनिक खड़े करने से नहीं होगा। हमें बहुत बड़ा काम

करना है, उसके लिए कार्यकर्ताओं की एक बड़ी सेना चाहिए। क्रान्ति फुर्सत से नहीं होती, उसके लिए तो जिन्दगी देनी पड़ती है। इस काम में हमें पक्ष-भेदों को भी भूलना चाहिए और अपना व्यक्तिगत अहंकार भी नहीं रखना चाहिए। निरहंकार बुद्धि से गरीबों का काम करनेवाले कार्यकर्ताओं की आज आवश्यकता है।

हसुआ
२५-४-'५२

सद्विचार की अमोघ शक्ति : १२ :

विचार की एक महिमा और एक शक्ति है। हम समझते हैं कि विचार की शक्ति की बराबरी करनेवाली दुनिया में दूसरी कोई भी शक्ति नहीं है। एक सवाल पूछा गया कि इधर तो आप सद्विचार का प्रचार करते चले जा रहे हैं और उधर अणु-बम की तैयारी है, उसके भी आगे उद्जन-बम आनेवाला है। तब आपका यह विचार और उपदेश उसके सामने कहाँ तक टिक सकता है ?

विचार का बाह्यरूप : अणु-बम या दान-पत्र

हम सोचते हैं कि अणु-बम में जो शक्ति आयी है, वह विचार से ही आयी है। चाहे वह विचार सद्विचार हो या न हो, वह एक विचार जरूर है। विचार से ही मनुष्य प्रेरित हुआ है और दुनिया को वश करने के लिए उसने शस्त्रास्त्र-संभार इकट्ठ किये हैं। किंतु ये सारे शस्त्रास्त्र स्वयमेव, खुद उठकर तो कोई काम नहीं कर सकते ? उन्हें बनानेवाले ने भी विचार का ही तो आश्रय लिया था। इनकी कल्पना करनेवाले के मन में भी एक विचार आया था, और उपयोग करनेवाला भी एक विचारवान् मनुष्य ही होता है। इस तरह इसके आदि, अंत और मध्य—तीनों में विचार ही विचार है। उसका बाह्यरूप अणु-बम भी हो सकता है और दान-पत्र भी। दान-पत्र एक कागज नहीं है और न अणु-बम दुनिया का एक मसाला है। दोनों के पीछे विचार की प्रेरणा है।

मुझे तो अणु-बम की शक्ति ही बता रही है कि विचार में क्या ताकत होती है। जो सद्विचार होता है, वह टिकता है। और जो असद्विचार होता है, वह

एक क्षण के लिए दर्शन तो देता है, लेकिन दूसरे ही क्षण में उसका लय हो जाता है। एक शाश्वत विचार है, तो दूसरा अशाश्वत विचार। कौनसा विचार शाश्वत और कौनसा अशाश्वत है? इसका निर्णय और सत्य-असत्य विचार का निर्णय मनुष्य हमेशा ठीक से नहीं कर पाता। इसीलिए वह कोई भी विचार झट-से ग्रहण कर लेता है। लेकिन जहाँ उसने असद्विचार को ग्रहण किया कि उसके पीछे वह नाना कर्म करता है। नाना यंत्र-तंत्र-मंत्र, अनेकविध योजनाएँ और कल्पनाएँ वह खड़ी करता है। किन्तु जहाँ वह पहचान लेता है कि यह विचार गलत है, तभी सारा तंत्र-मंत्र, योजना-कल्पना एक क्षण में खतम हो जाती है। तब मनुष्य उसे सहन नहीं कर सकता। उस सारी रचना को वह तोड़ डालता है। जब इसे असद्विचार जान जाता है, तो इसे छोड़ देने में उसे देरी नहीं लगती। जहाँ ठीक दर्शन नहीं होता, वहाँ सम्यक् ज्ञान नहीं होता। फिर वहाँ मनुष्य-समाज गलत रास्ते पर जा सकता है।

विचार की सत्ता

किंतु हम तो उसे 'प्रयोग' कहते हैं। जैसे ज्ञान-विज्ञान के प्रयोग होते हैं, वैसे ही समाजशास्त्र के भी प्रयोग अनादिकाल से चलते आ रहे हैं। जब से सृष्टि का निर्माण हुआ, तभी से ये प्रयोग चलते आ रहे हैं। एक विचार जब असद्-विचार सिद्ध होता गया, तब मानव उसे छोड़ नया विचार ग्रहण करता गया। समाज-शास्त्र, अध्यात्म-शास्त्र, राज्य-शास्त्र, सबमें ऐसा ही हुआ है। जीवन के अंगोपांग में ऐसा ही होता है। एक नया विचार आता है और फिर पहले के विचार को तोड़ दूसरा विचार आता है। लेकिन उसमें भी दोष दीखने लगता है, तो उसके संशोधन के लिए तीसरा विचार आता है, जो अति परिशुद्ध होता है। वह जब पुराने विचार को तोड़ता है, तब उसीका राज चलता है। आज तक दुनिया में विचार के ही राज चले हैं। एक-एक विचार आता गया और जाता गया, परंतु सत्ता चली विचार ही की। जहाँ तक मनुष्य का ताल्लुक है, विचार की ही प्रेरणा उसे मिली है और दुनिया में जो सारा तंत्र-मंत्र चला, वह भी उसीके कारण। दुनिया में राज्य विचार का ही चला है।

ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम्

भगवान् ने गीता में एक रूपक बताया है। पेड़ का वह रूपक है। एक ऐसा पेड़ है, जिसकी जड़ ऊपर है और शाखाएँ नीचे फैली हैं। मनुष्याकृति का रूपक यह पेड़ है। मनुष्य का मस्तिष्क ऊपर है, वहाँ से सारे विचार प्रकट होते हैं। हस्तपादादि ये जो शाखाएँ हैं—जिनसे सारा काम बनता है—वे नीचे फैली हुई हैं। इसलिए मनुष्य का वर्णन 'ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम्' ऐसा किया गया है। वह पेड़ अश्वत्थ है, याने टिकता है। ऐसा अजीब वह वृक्ष है कि जो टिकता है और नहीं भी टिकता। इसकी जड़ ऊपर है। इसका मतलब यह है कि विचार का मूल ऊपर है और विचार के अनुसार अनेक शाखाएँ पल्लवित और पुष्पित होती हैं। पेड़ के टिकने का और न टिकने का मतलब यह है कि जब एक विचार सही मालूम होता है, तो उसके अनुसार मनुष्य अपने जीवन की रचना आरंभ करता है। तब वही विचार जिधर देखो, उधर चलता है, उसीके अनुसार राज्य का निर्माण होता और जीवन बनता है। मकान, रास्ते आदि सारा सरंजाम उस विचार के अनुसार, उस विचार के पोषण के लिए मनुष्य बनाता है। उसीको 'संस्कृति' या 'सभ्यता' कहते हैं। यह सारी विचार की कीमिया है। किन्तु जहाँ उस विचार में उसे असद्विचार का अंश मालूम होता है, वहाँ वह सारा ढाँचा बदल देता है। इस अर्थ में यह वृक्ष टिकता नहीं है। जहाँ उस विचार में कसर मालूम होती है, वहीं वह विचार खतम हो जाता और दूसरा आता है। परन्तु यह वृक्ष टिकता है याने मनुष्य का सारा कार्य विचार के अनुसार चलता है।

राज्य विचारों का ही

जिस जमाने में जो विचार सही मालूम होता है, उसके अनुसार सारा जीवन चलता है। विचार बदलता जाता है, पर जीवन चलता ही है उस विचार के अनुसार। याने विचार स्थिर भले ही न हो सके, विचार के झगड़े नित्य-निरंतर चलते हैं। समाज-शास्त्र में उन झगड़ों को 'संघर्ष' कहते हैं, पर अध्यात्म-शास्त्र में उसे 'विचार-मंथन, विचार-शोधन या संशोधन'। नाम कुछ भी दो, उसका मूल स्वरूप जो होता है, वह विचार में ही होता है। इसलिए सोचनेवाले चिंतनशील

लोग, जिन्होंने दुनिया की असलियत को, असली मूलस्रोत को पहचान लिया है, विचार को अपने हाथ में से नहीं जाने देते। वे विचार का निरंतर प्रचार करते रहते हैं। एक बार समझाने से विचार समझ में न आये, तो सब्र रखते और दुबारा उसे समझाते हैं। अगर एक ही युक्ति से विचार समझ में न आये, तो उसे समझाने में दूसरी युक्तियाँ काम में लाते हैं। जैसे विद्यार्थी को समझाते समय एक पद्धति से बात उसकी समझ में न आयी, तो शिक्षक यह मानता है कि विचार समझाने का और मौका मिला है और इसलिए वह उत्साहित होता है, वैसे ही समाज को भी हम निरन्तर विचार समझाते हैं। सारा समाज खुद-ब-खुद अपना ढाँचा बदलेगा, जब उसकी समझ में यह विचार आ जायगा। अतः एक बार विचार समझ में आ जाय, तो जिन हाथों ने ये सारे शस्त्रास्त्र निर्माण किये हैं, वे ही हाथ उन्हें खतम कर देंगे। जिन हाथों ने यह सारा माया का संभार निर्माण किया है, वे ही उसका संहार कर देंगे। इसलिए सत्ता तो विचार की ही चलती है।

हम अनन्त शस्त्रधारी हैं

जो विचार में श्रद्धा रखते हैं, वे जानते हैं कि यह सारा मृग-जल है। सूर्य की किरणों से मृग-जल लहरें मारता है, लेकिन जहाँ चन्द्रमा का प्रकाश फैला कि मालूम होता है, यह सब मृग-जल है। मेरी आँखों के सामने मैं यह देख रहा हूँ। लोग मुझे सुना रहे हैं कि तुम्हारी तूती की आवाज इस नगाड़े के सामने कौन सुननेवाला है? वे कहते हैं, जब दुनिया चारों ओर शस्त्र बढ़ाने की बात कह रही है, सब कहते हैं कि देश-रक्षा के लिए शस्त्र बढ़ाने चाहिए और हरएक देश अपनी आमदनी का बहुत-सा हिस्सा राष्ट्र-संरक्षण के नाम पर पशु-शक्ति में ही खर्च कर रहा है, तो इसके सामने आपका क्या चलेगा? तब हम कहते हैं, आपके पास चाहे जितने शस्त्र हों, पर हम तो अनन्त शस्त्रधारी हैं। इसलिए आपके पास जो शस्त्र हैं, वे बहुत हैं, फिर भी इने-गिने हैं, और हमारे पास जो शस्त्र हैं, वे तो अनन्त हैं। विचार के जो अनन्त पहलू हैं, उनका पता भी नहीं चलता, परन्तु जहाँ विचाररूपी सूर्य-नारायण अपने अनन्त पहलुओं से, किरणों

से प्रकाशित होता है, वहाँ अन्धकार टिक नहीं सकता। इसलिए हम श्रद्धा से दो साल से वही राम-नाम लेते जा रहे हैं।

विचार का प्रचार आसमान से होता है

मुझे विश्वास था कि विचार-बीज बोया जा रहा है और उसका मजबूत वृक्ष होगा। मैं यह देख रहा था। मेरी आपसे भी प्रार्थना है कि आपकी विचार की श्रद्धा कभी भी ढीली नहीं होनी चाहिए। वह हमेशा मजबूत रहे। सद्विचार पर बुद्धि स्थिर रखने का ही नाम है 'श्रद्धा'। यही श्रद्धा मनुष्य को बल देती है, मनुष्य का जीवन बनाती है, उसे सब तरह से प्रेरणा देती है। किसी एक अकेले मनुष्य के मन में कोई सद्विचार निर्माण हो, तो वह सारे विश्व में कैसे फैलेगा, इसे यद्यपि लोग जानते नहीं हैं, किन्तु जो सोचते हैं, वे जानते हैं कि विचार के प्रचार के लिए तो सारा आसमान खुला पड़ा है। विचार का प्रचार सिर्फ रेडिओ से नहीं होता। रेडिओ से भी एक शक्तिशाली साधन है, आसमान। जैसे आसमान में वायु बहती है, वैसे ही विचार भी बहते हैं। उन्हें कोई रोक नहीं सकता। वे विचार मनुष्य के हृदय में सीधे पैठ जाते हैं। सृष्टि के किसी भी कोने में, जंगल में या किसी एकान्त गुफा में एक सद्विचार पैदा हुआ, तो दुनिया में फैलने के लिए उसे निकलना ही पड़ता है, उसे कोई रोक नहीं सकता, चाहे उसके फैलने में कुछ समय लगे। आकाश में हम अनन्त तारकाओं को रोज देखते हैं, पर उनका प्रकाश यहाँ तक आने में बरसों लग जाते हैं। ध्रुव को हमने आज देखा, याने तीस साल पहले जो ध्रुव था, उसे हम आज देख रहे हैं। तीस साल पहले जो प्रकाश वहाँ से निकल चुका था, वह आज मुझे दीख रहा है। वैसी ही विचार-प्रसार की बात है।

अंधकार का प्रकाश पर आक्रमण नहीं हो सकता

प्रकाश के प्रचार के समान ही विचार का प्रकाश भी आसमान से होता है, बल्कि प्रकाश के प्रचार को चाहे आसमान रोक सके, लेकिन विचार के प्रचार को वह भी रोक नहीं सकता। इसलिए विचार पर मेरी श्रद्धा है और मैं निर्भय होकर काम करता हूँ। मैं दुनिया में अनेक प्रवाह देखता हूँ। अभी गया

शहर में आया, तो मेरी ऐसी हालत हुई, जैसे किसी जंगल के जानवर को राजमहल में लाने से हो जाती है। उसे वह राजमहल सूनसान लगता है, क्योंकि जंगल का मजा और ही रहता है। मेरी हालत भी शहर में वैसी ही हो जाती है। यहाँ तो चारों ओर धूमधाम है। जिधर देखो, उधर आवाज आ रही है। रेडियो चलते हैं, सारा माया का बाजार चल रहा है और लोग ठगे जा रहे हैं। किसीको स्थिरता नहीं है। जो उठता है, वह कुछ-न-कुछ करने लग जाता है। ऐसा पसारा, ऐसा विस्तार मैं देखता हूँ, तो मेरी हालत जंगल के जानवर जैसी हो जाती है। लेकिन मुझे कभी भी यह भास नहीं होता कि इनका मुझ पर आक्रमण होनेवाला है। क्योंकि यह तो अज्ञान है। अज्ञान का मुझ पर क्या आक्रमण हो सकता है ! क्या ये सिनेमा मुझे रात को जगाने के लिए प्रेरित करेंगे ! क्या यह सिगरेट मेरे मुँह में जबर्दस्ती आकर बैठ सकती है ! क्या इस सिनेमा और सिगरेट का मुझ पर आक्रमण हो सकता है ? यह तो सारा अज्ञान है। दीपक के सामने अँधेरा टिक नहीं सकता। दीपक से पूछो कि अरे, वहाँ तो गहरा अंधकार है, तो तेरा क्या होगा ? तो दीपक कहेगा कि जितना घना अंधकार है, उतना ही मेरे लिए अच्छा है, क्योंकि मैं तो उसका तीव्र भेद कर सकता हूँ। इसलिए गहरा अंधकार हो, तो मेरे लिए खुशी की बात है। वह कहेगा, अगर इतना घना अंधकार न हो, तभी कठिन बात है। वैसे ही मैं जब यह सारा मायाजाल देखता हूँ, तो यह सारी सृष्टि मिथ्या दीखती है। वह टिकनेवाली नहीं है, स्वप्न-नगरी है। जैसे स्वप्न खतम होने के बाद स्वप्न-नगरी नहीं रहती है, वैसे ही जहाँ विचार ने पलटा खाया कि वहाँ यह सब खतम होनेवाला है।

नगरों का भविष्य

भगवान् ने इन्द्र का नाम 'पुरंदर' याने नगरों का विदारण करनेवाला कहा है। वह शब्द सत्य होकर रहेगा। मेरे सामने ये जो बंबई, कलकत्ता, टाटानगर जैसे बड़े-बड़े शहर हैं और जब लोग कहते हैं कि ये बढ़ रहे हैं, तो मैं कहता हूँ कि बढ़ने दो, यह मृग-जल बढ़ने दो। लेकिन ज्यों ही विचार समझ में आयेगा, लोग यह सारा तोड़ देंगे। जहाँ यह विचार समझ में आयेगा कि रात को तो सिनेमा

नहीं देखना चाहिए, उत्तम-उत्तम नक्षत्र देखने चाहिए, जो आत्मा को ठंडक पहुँचाते और अनंत ज्ञान देते हैं, वहीं सिनेमा बंद हो जायगा। मनुष्य सृष्टि को रूप दे सकता है, पर सृष्टि मनुष्य को रूप नहीं दे सकती। मुझसे यह पूछा गया कि आपको प्यास लगी, तो पानी आपको पीना ही होगा। तब क्या आपका जीवन पानी पर निर्भर नहीं रहेगा? मैंने कहा कि मैं पानी पीना चाहूँगा, तो पानी पीऊँगा, लेकिन पानी खुद होकर मेरे गले में नहीं जा सकता। पानी, अन्न, यह सारी जड़ सृष्टि है और मैं चेतन हूँ।

विचार-धारा सतत बहती रहे

इसलिए मैं अपने कार्यकर्ताओं को समझाता हूँ कि वे विचार पर श्रद्धा रखें। हमारे कार्य में सातत्य की भी कमी है। इसलिए मनुष्य अलसाता है और थोड़ी देर काम करके ही चुप बैठता है। लेकिन सचमुच श्रद्धा से निरंतर प्रचार करते रहना चाहिए, पर हम ऐसा नहीं करते। जैसे नदी निरंतर बहती रहती है, कभी थकती नहीं, वैसे ही हमारा प्रचार निरंतर चलना चाहिए। हमारा अगर सद्विचार है, तो सारी दुनिया को उसे कबूल किये बगैर चारा नहीं। पहले साल लोग हमसे पूछते थे कि आपका काम अच्छा है, पर पूरा होने में कितना समय लगेगा? वे विनोद में पूछते थे, तो मैं भी विनोद में, किन्तु गणित करके जवाब देता था कि पाँच सौ साल लगेंगे। हमारा इष्टांक प्राप्त करने के लिए पहले साल के हिसाब से पाँच सौ साल ही लग जाते। लेकिन हमने काम जारी रखा। हमारे मन में यह विचार ही नहीं आया कि पाँच सौ साल तक हम कैसे जियेंगे? अब हमसे कोई पूछता है, तो हम कहते हैं कि पचास साल लगेंगे, क्योंकि अब दसगुनी रफ्तार बढ़ गयी है। पर हमारा विश्वास है कि हम सद्विचार का निरंतर प्रचार और चिंतन करते रहें, तो तीसरे साल कोई वजह नहीं कि और दसगुना काम न बढ़े।

मंगल के सामने अमंगल टिक नहीं सकता

यह विचार की महिमा है। "नहि ज्ञानेन सदृशम् , पवित्रम् इह विद्यते।" ज्ञान के समान पवित्र वस्तु कोई नहीं है। उसके सामने कोई अमंगल विचार टिक नहीं सकता। मैं जमीन का मालिक हूँ, यह एक अमंगल विचार है और मैं जमीन का सेवक हूँ, यह एक मंगल विचार या सद्विचार है। दुनिया को उसे

कबूल करना ही पड़ेगा, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है। इसलिए हम अपने कार्यकर्ताओं से कहते हैं कि सतत काम करो। हमारा शरीर कितना गंदा है! हम अमृतान्न खाते हैं, तो भी उसका मल-मूत्र बनता है। फिर भी हम उसे हर रोज स्वच्छ रखते हैं, क्योंकि हमने स्वच्छता का व्रत लिया है। हम धोने में हार नहीं खायेंगे। हम शरीर से कहते हैं कि तू गन्दा होता रहता है, तो मैं भी तुझे धोता रहूँगा। याने यह गन्दा शरीर भी पवित्र बनता है और उससे हम अच्छे काम कर सकते हैं, गन्दे शरीर से भी स्वच्छ काम ले सकते हैं। इसलिए हम कार्यकर्ताओं को सद्‌विचार में दृढ़ करना, मजबूत बनाना चाहते हैं।

जब बहरा भी हमारा विचार सुनेगा

आप निराश मत होइये। यह मत सोचिये कि हमारे खिलाफ दुनिया में ताकतें खड़ी हैं। बल्कि यह सोचिये कि वे ताकतें तो जीर्ण-शीर्ण हो चुकी हैं, मर चुकी हैं। वे असद्‌विचार हैं। असत्कल्पना बाजार में हो, उसका कितना भी प्रचार हो और उसका भाव बड़ा हो, तो भी वह मर चुकी है। उसकी प्रतीति ही आयेगी कि वह गलत है, इसलिए एक क्षण में नष्ट होनेवाली है। उसे नष्ट करने में हमें तकलीफ नहीं होगी। जब कार्यकर्ता कहते हैं कि लोग पूरे दिल से अभी दान नहीं देते, तो मैं कहता हूँ कि वे आज इसलिए नहीं दे रहे हैं कि कल देनेवाले हैं। यह सद्‌विचार है और मनुष्य विचार करनेवाला प्राणी है। मनुष्य का मतलब ही है विचार करनेवाला। 'मन' धातु से वह शब्द बना है। इसलिए छह महीने पहले हम जितने उत्साह से विचार का प्रचार कर रहे थे, आज भी उसी उत्साह से कर रहे हैं। भगवान् चाहेगा और अगर जमीन का मसला हल नहीं होगा और जब तक हिन्दुस्तान को यह विचार कबूल नहीं होगा, तब तक हम प्रचार करते रहेंगे। जो फल की वासना नहीं रखता है, उसकी बीज पर श्रद्धा है, फल पर नहीं। वह जानता है, कि बीज है तो फल है ही। इसलिए मैं श्रद्धा से, सातत्य से समाज के कानों में यह विचार समझाता जाऊँगा और एक दिन आयेगा कि जब बहरा भी हमारा विचार सुनेगा।

गया
२-५-'५२

क्रान्ति विचार से ही होती है

[तरुण कार्यकर्ताओं के साथ चर्चा]

प्रश्न : "क्या भूदान-यज्ञ-कार्य के लिए हम कॉलेज छोड़ें ?"

उत्तर : "मैंने तो कहा कि भूदान-यज्ञ में काम न करना हो, तो भी कॉलेज छोड़ दीजिये। हम तो सन् सोलह में कॉलेज छोड़कर ही निकले थे। पर जिन्हें एक साल के बाद मोह होगा, तो वे फिर से कॉलेज में जा सकते हैं। और एक साल यह काम करते हुए अगर उनका मोह छूट गया, तो ठीक ही है। जो विद्यार्थी एक साल के बाद पुरानी तालीम नहीं चाहते, उनके लिए तालीम देने की सर्व-सेवा-संघ के जरिये एक योजना हो सकती है। उनके लिए नयी तालीम का कुछ इंतजाम हो सकता है। हरएक प्रांत में एक-दो ऐसी संस्थाएँ खुल सकती हैं। जो विद्यार्थी काम करना चाहते हैं, वे तीन प्रकार के होंगे : (१) कुछ तो ऐसे होंगे, जो सिर्फ छुट्टी में काम करेंगे, (२) कुछ ऐसे होंगे, जो एक साल के लिए कॉलेज से मुक्त होकर काम करेंगे, और (३) कॉलेज से बिल्कुल ही मुक्त होकर काम करेंगे।

"तिलक महाराज जब कॉलेज में थे, तो बहुत ही कमजोर थे। इसलिए उन्होंने एक साल कॉलेज छोड़कर व्यायाम किया और चार साल का कोर्स उन्होंने पाँच साल में किया। उन्होंने कहा है कि 'उससे मैंने कुछ खोया नहीं, उसीके आधार पर जिंदगी की तकलीफें झेलीं।' उन्हें तकलीफें काफी झेलनी पड़ीं, यह तो सभी जानते हैं।"

तेलंगाना में कम्युनिस्टों की जीत

प्रश्न : "लोगों का विचार है कि भूदान-यज्ञ से साम्यवाद को भारत में फैलने से रोका जा सकता है। तो क्या तेलंगाना में अब साम्यवादी पार्टी का उतना जोर नहीं है ?"

उत्तर : "तेलंगाना में भूदान-यज्ञ का विशेष काम हुआ ही नहीं। जो हमने किया, उसके बाद वहाँ कुछ भी नहीं हुआ। जिन्होंने हमारे साथ कुछ काम किया, वे चुनाव के लिए खड़े नहीं हुए। चुनाव के लिए तो कांग्रेसी खड़े हुए और उसी समय कम्युनिस्टों ने अपनी नीति बदली, इसलिए उन्हें जेल से छोड़ा गया। इस तरह जो दो-दो, तीन-तीन साल तक जेल में रहे, वे अब छूटकर 'हीरो' बनकर आये थे। इसीलिए वे जीते। कांग्रेसवाले खुद कुछ काम किये बिना हमारे पुण्य पर मुफ्त में नहीं जीत सकते।

"हमारा काम कम्युनिज्म रोकने का नहीं है। यह एक स्वतंत्र विचार है। यह 'पॉजिटिव्' है, 'नेगेटिव' नहीं। हिन्दुस्तान में गरीबी है। अगर वह अच्छे तरीके से दूर की जा सकती है, तो कोई भी बुरा तरीका इस्तेमाल न करेगा। किसीको प्यास लगी है और पीने को स्वच्छ पानी मिल जाता है, तो वह गंदा पानी क्यों पियेगा? लेकिन स्वच्छ पानी न मिले, तो वह गंदा पानी पी सकता है। हिन्दुस्तान में अच्छे तरीके से गरीबी की समस्या हल होगी, तो बुरा तरीका नहीं आयेगा। तेलंगाना में हमने दो महीनों में बारह हजार एकड़ जमीन इकट्ठी की थी। उसके बाद वहाँ के लोगों ने कुछ भी नहीं किया। वह बारह हजार आरंभ-मात्र ही था। अगर वहाँ जोरों से यह काम चले, तो लोगों की श्रद्धा इस पर बैठेगी।"

भारतीय साम्यवादी

प्रश्न : "भारतीय साम्यवादियों को आप कैसा समझते हैं?"

उत्तर : "भारतीय साम्यवादी याने क्या? हिन्दुस्तान में तो हम साम्यवाद का कोई काम ही नहीं देखते। यहाँ के साम्यवादियों ने जो कुछ थोड़ा-सा किया है, तेलंगाना में किया। वहाँ दो-तीन साल लगातार कत्ल, लूटमार, डकैतियाँ चलती रहीं। लेकिन इसका नतीजा यह हुआ कि आखिर किसान को कुछ भी नहीं मिला। इसलिए मेरा तो मानना है कि साम्यवादी लोग कुछ भी रचनात्मक काम नहीं करते, सिर्फ प्रचार करते हैं। प्रचार का काम वे उत्साह से करते हैं। यहाँ के कम्युनिस्ट तो सिर्फ जड़वादी ही नहीं, जड़-बुद्धि भी हैं। जड़वाद एक वाद है।

इसलिए वे सिर्फ जड़वादी ही होते, तो कोई हर्ज नहीं होता। लेकिन वे तो उधर रूस में क्या हो रहा है, यह देखकर सारा काम करते हैं। रूस का रूप बदला, तो इनका भी रूप बदल जाता है। इनकी कोई स्वतंत्र अक्ल नहीं है। इसलिए हम इन्हें भला-बुरा कुछ भी नहीं कह सकते। जो स्वतंत्र अक्ल से काम करता है, उसीके बारे में हम अपनी राय दे सकते हैं। इसलिए अगर भला-बुरा कुछ भी कहना है, तो उन्हें कहना चाहिए, जो इनके मार्गदर्शक हैं।

"साम्यवाद का एक ग्रंथ है और आर्य-समाजियों के समान साम्यवादी भी उसी किताब को प्रमाण मानते हैं, एवं परिस्थिति और अक्ल, दोनों को छोड़ देते हैं। दरअसल किताब, अक्ल, और परिस्थिति तीनों का समन्वय होना चाहिए। पर ये लोग ग्रंथ को वेद मानते हैं। आज मार्क्स हिन्दुस्तान की परिस्थिति में होता, तो अपने विचार में अवश्य परिवर्तन करता। मैं कम्युनिस्टों से कहता हूँ कि आप मार्क्सियन् हैं, परंतु मार्क्स खुद मार्क्सियन् नहीं था, वह मार्क्स ही था। इसलिए वह बदल सकता था। कम्युनिस्ट लोग हिन्दुस्तान के दस हजार साल के सारे विचार-प्रवाह के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं रखते। उस विचार में अगर दोष हो, तो उसे जानने के लिए भी उस विचार का ज्ञान होना चाहिए। इसलिए कम्युनिस्टों में दो मुख्य दोष देखता हूँ : एक तो वे पुस्तक-पूजक हैं और दूसरे, वे यहाँ के विचार-प्रवाह को नहीं जानते।"

संस्था की मर्यादा

प्रश्न : "क्या इतना बड़ा यज्ञ संस्था के बिना सुचारु रूप से चल सकता है?"

उत्तर : "हम संस्था के बिलकुल खिलाफ नहीं हैं। आप स्थानिक संस्थाएँ खड़ी कर सकते हैं। लेकिन जहाँ अखिल भारतीय संस्था खड़ी करने की बात आती है, वहाँ अनुशासन आता है और फिर सारा मामला 'बोगस' हो जाता है। हम इससे मुक्त रहना चाहते हैं। जब व्यापक संस्था निकम्मी होती है, तो उसका नाहक अभिमान ही पैदा होता है और काम नहीं होता। उसका लेबिल चिपकता है—हम कांग्रेसवाले, हम सोशलिस्ट, ऐसा कहा जाता है। हर कोई अपना अलग-अलग पंथ बनाते हैं याने सारी दुनिया से अलग रहते हैं। सारी दुनिया

को अपना रूप देने के बजाय दुनिया से ही अलग रहते हैं। अगर हम कोई खास संस्था बनाते, तो आज हमें जो सहयोग मिल रहा है, वह न मिलता।"

चीन की मिसाल

प्रश्न : "चीन की आधुनिक जन-सरकार तीन वर्ष के अंदर ही इतनी उन्नति कर गयी कि जितने विदेशी वहाँ जाते हैं, वे आश्चर्य से चकित होकर बड़ाई करने लगते हैं। क्या भारत की परिस्थिति ऐसी नहीं कि अपने देशवासियों को सुखी बनाने के लिए वह चीन का रास्ता अपनाये? क्या आपका भूदान-यज्ञ ऐसा माध्यम साबित हो सकता है कि वह इतने कम समय में चीन की तरह देश की उन्नति करे?"

उत्तर : "चीन की तारीफ बहुत-से लोग करते हैं। किन्तु चीन में एक राज्य-क्रांति हुई है। ऐसी राज्य-क्रांति जहाँ होती है, वहाँ दूसरे तरीके से काम होता है। उसके लिए चीन में तीस साल तक 'सिविल वार' हुआ है। पर उसे कोई नहीं देखता और सिर्फ राज्य-क्रांति के बाद का दो-तीन साल का काम देखते हैं। लेकिन राज्य-क्रांति के बाद सरकार के हाथ में जो शक्ति आती है, वैसी शक्ति हिन्दुस्तान के पास नहीं है। दंड-शक्ति भी नहीं है और आपकी सेना भी काफी नहीं है। आज जो सेना है, उसे रखने में ही तो बजट का साठ प्रतिशत खर्च हो जाता है। इसलिए और सेना बढ़ानी हो, तो सारा खर्च सेना ही खा जायगी। इसलिए चीन का उदाहरण अपने देश को लागू नहीं होता। फिर भी हम मानते हैं कि अभी हमारी सरकार जितनी प्रगति कर रही है, उससे अधिक प्रगति कर सकती है। किन्तु कांग्रेस आज राज्यकर्ता जमात बन गयी है। इसलिए उसमें पूँजीवादी भी आ गये हैं। उनके खिलाफ काम करने की हिम्मत सरकार में नहीं है। और मुख्य बात यह है कि अब तक विचार की सफाई ही नहीं हुई है।"

राष्ट्रीकरण का प्रश्न

प्रश्न : "भारत-सरकार बड़े-बड़े कारखानों का राष्ट्रीकरण क्यों नहीं करती?"

उत्तर : "इसका कारण एक तो यह है कि सरकार उस विचार को मानती नहीं है। सरकार पर पूँजीवाद का असर है। फिर राष्ट्रीकरण होने से बहुत लाभ होगा,

सो बात नहीं है। सरकार के हाथ में आज जो शक्ति है, उसीका उपयोग वह ठीक तरह से कर नहीं सकती, तो अधिक शक्ति देने से क्या फायदा? देश में जब तक चारित्र्यवान् लोग नहीं उत्पन्न होते, तब तक काम नहीं होता। आज घूसखोरी चलती है। अधिकारियों के हाथ में और भी काम दें, तो वह और बिगड़ेगा। इसलिए जनता की विचार-शुद्धि और चारित्र्य-शुद्धि होनी चाहिए। तभी शील सुधरेगा और फिर काम बनेगा।"

विचार से पूँजीवाद का अन्त

प्रश्न : "पूँजीवाद का अन्त कैसे होगा?"

उत्तर : "पूँजीवाद का अंत न प्रेम से होगा और न संघर्ष से, बल्कि विचार से ही होगा। प्रेम या संघर्ष किसीका अन्त नहीं करते। संघर्ष में घर्षण हो जाता है, तो दोनों क्षीण हो जाते हैं। और प्रेम भी कोई नयी चीज नहीं पैदा करता। प्रेम उत्साह पैदा करता है, पर समाज में क्रान्ति होती है विचार से ही। हम हिस्सा माँगते हैं, भिक्षा नहीं, क्योंकि लोगों को यह विचार समझाना चाहते हैं कि जमीन सबकी है। विचार को कबूल किया, इसकी निशानी की तौर पर हम हिस्सा माँगते हैं। आखिर जमीन सबकी बननी ही है। हम विचार में जितनी श्रद्धा रखते हैं, उतनी और किसी चीज पर नहीं। संघर्ष से क्रांति नहीं, क्षय होता है और प्रेम से क्रांति नहीं, वृद्धि होती है। फिर भी अगर संघर्ष का मौका आये, तो हम विचार-प्रचार के लिए संघर्ष भी करेंगे, उसे टालेंगे नहीं। संघर्ष भी एक तरकीब है। उसकी कोई आवश्यकता हो, तो वह भी करेंगे। किंतु क्रांति केवल विचार-प्रचार से ही होती है, इसलिए हम विचार-प्रचार करते हैं।"

पुराना नेतृत्व

प्रश्न : "आज के काम से नया नेतृत्व नहीं मिलता, बल्कि पुराने नेताओं को ही फिर से संजीवन मिलता है।"

उत्तर : "अगर पुराने नेताओं को फिर से संजीवन मिलता है, तो उसमें क्या हानि है? अगर उन्हें यह विचार पसंद आये और उनमें परिवर्तन हो जाय, तो फिर उन्हें नेतृत्व मिले, तो क्या बुराई है? और अगर उनका ढोंग ही है, तो

उसकी भी इस काम से परख हो जायगी। संस्कृत में श्लोक है कि "वसंतसमये प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः" कौआ और कोयल, दोनों काले होते हैं, पर वसंत ऋतु आने पर दोनों की पहचान हो जाती है! इसी तरह इस काम में जो नकली लोग होंगे, वे दीख पड़ेंगे। पर नया नेतृत्व इस काम में नहीं होगा, तो और किस काम में होगा? यह एक ऐसा आंदोलन निकला है, जो सारे समाज को त्याग की प्रेरणा देता है। इसमें नये-नये लोग आ रहे हैं और उससे नया नेतृत्व निर्माण होता है।"

बुरों का साथ क्यों?

प्रश्न : "आप कहते हैं कि प्रसाधन अच्छे हों, यह हमारा आग्रह है। फिर आप भूदान-यज्ञ के काम के लिए बुरे मनुष्यों का उपयोग क्यों करते हैं?"

उत्तर : "जो बुरा मनुष्य माना जाता है, वह कायम का बुरा है, ऐसा नहीं है। जैसा पुराना खयाल था कि ब्राह्मण के कुल में जन्म हुआ, तो वह ब्राह्मण ही रहेगा, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता, वैसे ही यह प्रश्न-कर्ता सोचता है। किन्तु मनुष्य में हमेशा परिवर्तन हुआ करता है। इसलिए हम मनुष्य को अच्छा या बुरा नहीं मानते। साधन कैसे हों, यह हम देखते हैं। अगर बुरा मनुष्य भी इस काम में आयेगा और धमका कर जमीन माँगेगा, तो जमीन नहीं मिलेगी। अगर वह धमकाने लगेगा, तो लोग उससे कहेंगे कि विनोबाजी तो ऐसा नहीं कहते। इस जवाब से वह धमकानेवाला फीका पड़ जायगा। जो यह माने कि 'इसमें किसी भी तरह का लोभ या भय दिखाया जा सकता है', तो उससे जनता साफ-साफ कह देगी कि 'तू इस टोली में शोभा नहीं देता'। इस प्रकार इस काम में प्रति-क्षण भले-बुरे की परीक्षा होती है।"

गया
४-५-'५३

'धन और धरती बाँट के रहेगी' : १४ :

हम सारे समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं। इन दिनों नारा लगाया जाता है : "भूखी जनता अब न सहेगी, धन और धरती बँट के रहेगी"। हम चाहते हैं कि गरीब लोग जाग्रत हो जायँ, अन्याय सहन न करें और अपने हकों की माँग करें। हम समझते हैं कि जमीन पर सबका हक है। हम चाहते हैं कि गरीब लोग धर्म समझकर अपने हक पर डटे रहें। आखिर में वे यह कर सकते हैं कि हम श्रीमानों की जमीन पर काश्त नहीं करेंगे। इस तरह हम एक बाजू से गरीबों को तैयार कर रहे हैं। दूसरी बाजू से सरकार को इस काम के लिए तैयार कर रहे हैं कि वह गरीबों के हकों की रक्षा करे। तीसरी बाजू से श्रीमानों के हृदय में सोये हुए भगवान् को जगा रहे हैं।

हम चाहते हैं कि श्रीमान् लोग कहें : "सुखी जनता अब न सहेगी, धन और धरती बाँट के रहेगी।" जब आसपास के लोग गरीब हैं, दुःखी हैं, उस हालत में हम मिठाइयाँ खायें, यह हमें शोभा नहीं देता। ऐसा गलत, पापी सुख हम हर्गिज नहीं सहन करेंगे। हम अपनी भूमि और सम्पत्ति गरीबों में बाँट देंगे। हम श्रीमानों में इस तरह की जाग्रति पैदा करना चाहते हैं। इस प्रकार हम तिहरा काम कर रहे हैं। जब गरीब जाग्रत हो जायँगे, अपने दुर्गुण छोड़ेंगे, सरकार गरीबों के अनुकूल हो जायगी और श्रीमानों में से बहुत-से लोग जाग जायँगे, तब समाज में परिवर्तन होगा। अहिंसक क्रांति की यही प्रक्रिया है।

भलुहार (गया)

७-५-'५२

अहिंसा सरल रेखा है : १५ :

एक सज्जन ने अहिंसा के विषय में कुछ विवेचन किया है। अहिंसा को माननेवाले कुछ लोग होते हैं। बहुत-से अहिंसा को मानते भी नहीं। जो अहिंसा को नहीं मानते, वे कहते हैं कि उससे चाहे कोई व्यक्तिगत मसला हल हो जाय, पर जब तक समाज में दुर्जनता मौजूद है, तब तक समाज के मसले हल नहीं हो सकते। हम उनकी बात छोड़ देंगे। यद्यपि हिंसा से कोई मसला हल होता है, यह सिद्ध नहीं हुआ है, फिर भी अहिंसा-शक्ति सामुदायिक तौर पर सिद्ध करने की बात है। कुछ तो अहिंसा के प्रयोग हुए हैं, पर आजकल समाज जितना व्यापक बना है, उतने व्यापक प्रयोग अभी तक नहीं हुए हैं। इसलिए जो अहिंसा-शक्ति पर विश्वास नहीं रखते, हम उनसे कोई खास चर्चा करने की जरूरत नहीं मानते। लेकिन जो उसमें विश्वास रखते हैं, उन्हें लगता है कि अहिंसा से काम तो बनेगा और स्थायी बनेगा, पर उसमें अल्प समय लगेगा। उस सज्जन ने लिखा है कि ऐसा लगता है कि अहिंसा से काम तो होगा, पर शीघ्र ही होगा। इस लेख पर उन्होंने मेरा अभिप्राय पूछा था और मैंने आज ही उन्हें जवाब दिया है। मैंने लिखा कि 'यह बात तो ठीक है। 'यूक्लिड' ने सिखाया है कि दो बिन्दुओं में कम-से-कम फासला सरल रेखा है। इसलिए अहिंसा शीघ्र परिणाम-कारी होगी, ऐसी ही अपेक्षा होनी चाहिए।

अहिंसा शीघ्र परिणामकारी कब ?

अहिंसा में जो मुख्य वस्तु है, वह यह कि उसकी प्राप्ति हमें कहाँ तक हुई है ? अहिंसा की प्राप्ति हो जाय, तो परिणाम शीघ्र होगा, इसमें कोई शक नहीं। जो भी समय जाता है, अहिंसा अपने हृदय में स्थिर करने में जाता है। उतना समय मान लें, तो परिणाम शीघ्र होता है। हमारे लिए यह सोचने की बात है। एक शस्त्र का परिणाम जल्दी या देरी से—इसकी हम चर्चा करते हैं, पर यह नहीं सोचते कि वह शस्त्र हमारे हाथ में है या नहीं। उसे उठाने के लिए जो

तपस्या और चित्त-शुद्धि चाहिए, वह हमने कहाँ की ? पर्याप्त चित्त-शुद्धि न हो या उतनी तपस्या हम न करें, तो अहिंसा का उदय ही नहीं होगा। सूर्यनारायण का उदय होने के बाद अन्धकार मिटने में देर नहीं लगती। किन्तु उसके उदय में ही समय लग सकता है। वैसे ही अगर थोड़े लोगों के हृदय में भी अहिंसा का वास्तविक उदय हो जाय, तो समाज में वह फैलेगी। विचार और कल्पना में तो हम यहाँ तक मानते हैं कि एक भी मनुष्य परिपूर्ण शुद्ध हो जाय, अहिंसा का साक्षात्कार उसने किया हो, तो वह अकेला समाज पर परिणाम दिखा सकता है। बापू कई बार यह कहा करते थे। इसलिए अहिंसा के स्थायी या शीघ्र परिणाम के बारे में सन्देह नहीं है। बल्कि अहिंसा के लिए जो अन्तःशोधन, तपस्या और शुद्धि जरूरी है, वह हम कहाँ तक करते हैं, यही देखना है। वह हो जाय, तो अहिंसा शीघ्र परिणामकारी हो सकती है।

अहिंसा आत्मा की शक्ति

अहिंसा आत्मा की शक्ति है। आत्मा नहीं मरता, यही उसकी शक्ति है। हिंसा देह की शक्ति है, देह मारी जाती है। देह से बढ़कर आत्मा की शक्ति है, यह तो मानी हुई बात है। किन्तु हम देह-बुद्धि में फँसे रहते हैं। जिस किसीकी ओर देखते हैं, उसे देह ही मानते हैं। अगर हम देह का आवरण छोड़ देह से परे अंदर जो वस्तु है, उसकी तरफ देखें, तो हमारा सारा व्यवहार—बोलने-चालने और सोचने का ढंग-ही बदल जायगा। दुनिया दूसरे ही रंग से रँगी दीख पड़ेगी। ऐसा हो जाय, तो ऐसे मनुष्य के संपर्क में जो आयेगा, उस पर उसीका रंग चढ़ेगा। उस मनुष्य पर दूसरे का रंग नहीं चढ़ेगा। यह बात ध्यान में आ जाय, तो हम अगर अहिंसा में विश्वास करते हैं, उसका सामूहिक प्रयोग करना चाहते हैं, तो मुख्य चिंता हमें यह होनी चाहिए कि अपने निजी जीवन में हम उसे कैसे लायें ? उसकी उपासना कहाँ तक और कितनी एकाग्रता से हम करते हैं, यही सवाल है।

निज का जीवन-शोधन ही मूल वस्तु

अभी भूदान-यज्ञ का आंदोलन चल रहा है। वैसे ही समाज की आवश्यकता के अनुसार दूसरे भी आंदोलन चलेंगे। किन्तु उन आंदोलनों के मूल में जो श्रद्धा

है, वह हृदय-परिवर्तन में है। वह तभी दृढ़ होगी, जब हमारा खुद का हृदय परिवर्तित होगा। अक्सर हम मानते हैं कि हमारा हृदय जैसा होना चाहिए, ठीक वैसा ही है। दूसरे का ही परिवर्तन करना हो, तो वह हृदय-परिवर्तन ढोंग होगा या असंभव मालूम होगा। हृदय-परिवर्तन के बारे में शंका पैदा होती है, तो अहिंसा की मूल शक्ति पर ही प्रहार होता है। हृदय-परिवर्तन के लिए परिस्थिति में परिवर्तन एक अंग ही है। उसे हृदय-परिवर्तन से अलग मानना गलत है। अगर हम किसी विषय की आसक्ति छोड़ना चाहते हैं, तो बाहर का वातावरण भी वैसा बना लेते हैं, जिससे आसक्ति छूटे। एकाग्रता के लिए हम उसके अनुकूल एकांत ढूँढते हैं। बिना एकांत के एकाग्रता नहीं हो सकती या बिना बाह्य परिवर्तन के हृदय-परिवर्तन नहीं हो सकता है—यह मानना एकांगी है। हृदय-परिवर्तन के लिए समाज और परिस्थिति में परिवर्तन करना जरूरी है, यह कहना ठीक है, पर जो चीज जरूरी है, वह हृदय-परिवर्तन से ही बनेगी। एकाग्रता से ही ध्यान होता है। एकांत में भी वह होता है। पर एकांत में चित्त इधर-उधर दौड़ भी सकता है। इसलिए एकांत बाह्य साधन है और एकाग्रता मुख्य वस्तु। वैसे ही अहिंसा-शक्ति के लिए हृदय-परिवर्तन मुख्य वस्तु है। उसके लिए बाह्य परिवर्तन जरूरी है, तो कर लेते हैं।

लेकिन अहिंसा काम करती है हृदय-परिवर्तन के जरिये ही, बाह्य परिवर्तन के जरिये नहीं। हम बाह्य परिवर्तन भी कर तो लेते हैं। लोगों से दान-पत्र भरवा लेते हैं, छठा हिस्सा माँगते हैं—यह सारा एक बाह्य परिवर्तन ही है। पर उसके जरिये अन्दर का हृदय-परिवर्तन न हो, तो काम सफल न माना जायगा। तब तो छठा हिस्सा माँगना टैक्स के जैसा होगा। वैसे तो सरकार भी कानून बनाकर जमीन का छठा हिस्सा ले सकती है, पर उससे अहिंसा-शक्ति प्रकट नहीं होगी। अगर अहिंसा-शक्ति प्रकट नहीं हुई, तो समाज की प्रगति नहीं होगी। चाहे जमीन का बँटवारा आज से कुछ अच्छा हो जाय, पर उससे समाज न सुधरेगा। यह सोचते हुए ध्यान में आता है कि मुख्य वस्तु अपना निज का जीवन-शोधन ही है।

मारोमार

८-६-'५२

सर्वोदय का राजनैतिक विचार

: १६ :

आज मैं आपके सामने अपना राजनैतिक विचार रखूँगा। आजकल राजनीति कोई ऐसा विषय नहीं रहा, जो जीवन से बिलकुल ही अलग हो। पुराने जमाने में राजाओं की सत्ता चलती थी, पर वह सत्ता बहुत ही कम थी। जुल्मी बादशाह भी जनता को थोड़ी पीड़ा देते थे। आम जनता पर उनका ज्यादा असर नहीं हो सकता था। क्योंकि सरकार चुनी हुई नहीं थी और न आज के जैसे आमदरफ्त के साधन ही थे। उस समय किसी बादशाह का सारे हिन्दुस्तान में संदेश पहुँचने में महीनों लग जाते थे और बादशाह का हुक्म मानना या न मानना सरदारों की इच्छा पर निर्भर रहता था। निजाम जैसे शक्तिशाली सरदार तो हुक्म भी मानते नहीं थे। इस तरह उस समय की हालत ही दूसरी थी। उस समय सरकार की सत्ता बहुत सीमित थी। सरकार बहुत ज्यादा जीवन का नियन्त्रण नहीं कर सकती थी, सिर्फ विदेश के आक्रमणों का प्रतीकार करने के लिए थोड़ी-सी सेना रखना और सेना के लिए ही दो-चार रास्ते बना देना—ऐसे सीमित काम वह करती थी। जो लोकहितकारी राजा होते थे, वे प्रजा के लिए कुछ करते थे, पर वह उनका व्यक्तिगत उपकार था। वे लोगों के जीवन का नियमन नहीं कर सकते थे।

अंग्रेज यहाँ आये, तब तक हिन्दुस्तान में कई राजा हो चुके थे। किन्तु राष्ट्रीय ऋण जैसी कोई भी चीज उस समय नहीं थी। माधवराव पेशवा को मरते समय यह चिंता थी कि उन पर जो नौ-दस करोड़ का कर्जा था, वह उन्होंने राज्य के लिए ही लिया था, फिर भी वह उनका व्यक्तिगत कर्जा माना गया। अंत में नाना फडनवीस ने कुछ साहूकार लाकर उनके जरिये वचन दिलवाया कि हम कर्जा चुकायेंगे। लेकिन आज तो कई देशों पर कर्जा है। हिन्दुस्तान के सिर पर भी है। अंग्रेजों ने यहाँ जो लड़ाइयाँ लड़ीं, उनका कर्जा भी हमारे ही सिर पर है। आज जो सरकार होती है, वह चाहे लादी भी गयी हो, देश की सरकार

होती है। पहले राज्य व्यक्तिगत इस्टेट थी। एक राजा सब व्यक्तियों के जीवन का नियंत्रण नहीं कर सकता था।

किंतु आज की राजनीति बहुत व्यापक हो गयी है। सारे जीवन पर उसका नियन्त्रण चलता है, आज की सरकार अगर पापी कानून बनाये, तो व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि मैं निष्पाप जीवन बिताऊँगा। जीवन के हरएक पहलू पर आज सरकार का नियन्त्रण चलता है। यहाँ तक कि तालीम पर भी सरकार का नियन्त्रण है। पर पहले ऐसा नहीं था। ज्ञानी लोग तालीम देते थे, वे स्वतन्त्र थे। पर आज सरकार एक पाठ्य-पुस्तक तय करती है और वही सब स्कूलों में चलती है। उस किताब में क्या होना चाहिए, इसका भी नियन्त्रण सरकार करती है। इस तरह शिक्षण जैसा विषय भी, जो बिल्कुल ही स्वतन्त्र होना चाहिए था, आज राज्य के नियन्त्रण में है। कुछ प्राइवेट स्कूल चलते हैं, पर उनमें कुछ ही विद्यार्थी आते हैं। मैंने भी एक ऐसा स्कूल चलाया था, जिसमें बहुत अच्छे विद्यार्थी तैयार हुए। लेकिन आज गाँव-गाँव में जितने स्कूल बनेंगे, वे सरकार के ही बनेंगे। फिर यदि सरकार कम्युनिस्ट आयी, तो स्कूल में उनका तत्त्वज्ञान सिखाया जायगा। फासिस्ट शासन हो, तो लड़कों को उसी तरह की तालीम मिलेगी। याने जैसी सरकार हो, उसीके अनुसार लड़कों के दिमाग बनाये जाते हैं। इस तरह आजकल दिमाग बनाने की बात चलती है। इसलिए राजनैतिक विचार करने की जिम्मेदारी हरएक व्यक्ति पर आती है।

हरएक को एक वोट का हक

आज जो मैं कहूँगा, वह जीवन का एक बुनियादी विचार है। आप देखते हैं कि आजकल दुनिया में लोकसत्ता चलती है। सबको वोट का हक दिया गया है। बहुसंख्या से चुनाव होते हैं और कानून भी बहुमत से बनता है। हरएक को एक वोट मिला है। यद्यपि हम सब मानते हैं कि हरएक का चारित्र्य और योग्यता अलग-अलग होती है, फिर भी पंडित जवाहरलालजी को भी एक ही वोट का हक मिला है और किसी एक साधारण २१ साल की उम्र के व्यक्ति को भी एक ही वोट का हक मिला है। यह एक बड़ी बुनियादी बात मानी गयी है।

लेकिन कोई भी सोचेगा, तो मालूम होगा कि व्यवहार में ऐसा नहीं होता। घर में भी घर के सब-के-सब व्यक्ति मिलकर चर्चा करते हैं, पर हरएक को वोट का हक नहीं दिया जाता। चर्चा के बाद घर के मुख्य मनुष्य की ही बात मानी जाती है। आजकल वोट की प्रथा पड़ी है, लेकिन सत्य का निर्णय बहुमत से नहीं होता। पृथ्वी घूमती है या सूरज? इसका निर्णय बहुमत से नहीं हो सकता। इस बात का जीवन से बहुत सम्बन्ध है। फिर संख्या से आजकल जो निर्णय होता है, उसका क्या मतलब है? पाश्चात्यों ने बहुत ऊपरी-ऊपरी विचार कर बहुमत से निर्णय की बात चलायी। मैंने कहा था कि हरएक को एक वोट का हक है, इसका मतलब यह है कि वे आत्मा की समता याने हरएक में समान आत्मा है, यह बात मानते हैं। मैंने यह विवेचन इसलिए किया है कि दूसरी किसी भी दृष्टि से देखा जाय, तो व्यक्ति की योग्यता समान नहीं मालूम होती। इसके लिए मानव आत्मा की समता को ही मानना पड़ेगा। इस तरह मैंने उनके सिर पर आत्मवाद लादा है, पर वे आत्मवादी नहीं हैं। पाश्चात्यों ने जो यह बात चलायी है, वह अत्यन्त अस्वाभाविक है, प्रकृति के और अनुभव के विरुद्ध है।

बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक के झगड़े

फिर भी यह बात चल रही है। इसीलिए आजकल वोट इकट्ठा किये जाते हैं। इस तरह एक किस्म की लड़ाई ही चलती है। फिर वोट हासिल करने के कई तरीके होते हैं। उनमें विचार समझाने की बात नहीं आती, क्योंकि बहुत-से लोग विचार समझते ही नहीं। इस तरह एक अत्यन्त स्थूल यांत्रिक गणिती विचार आज समाज में रूढ़ हुआ है। इसलिए जो निर्णय होता है, वह बहुसंख्यकों का होता है और कई बार तो वह ठीक भी नहीं होता! इससे अल्पसंख्यक असंतुष्ट होते हैं। उन्हें लगता है कि हमारा विचार सही है, फिर भी वह चलता नहीं। सही विचार चाहे एक व्यक्ति का क्यों न हो, सही है। अगर एक व्यक्ति ने भी पहचान लिया कि पृथ्वी घूमती है, तो फिर लाखों लोग उसके विरुद्ध हों, तो भी उसीका कहना सही है। जिसने इस बात का शोध किया था, वह उस पर अड़ा रहा। उस समय 'चर्च' वाले लोग उसके विरुद्ध थे। वे कहते थे कि पृथ्वी घूमती है, यह

कहना ईसाई-धर्म के विरुद्ध है और इसीलिए उन्होंने उसे बहुत पीड़ा दी। अधिक पीड़ा के कारण उसने एक दिन कहा कि मैं वैसा ही लिखूँगा। परन्तु जब लिखने का समय आया, तो उसने लिखा : 'पृथ्वी घूमती है, मुझे अब भी वह घूमती हुई दिखाई देती है।' आखिर उसने दस्तखत नहीं किये। इस तरह बहुमत का निर्णय हमेशा सही होता है, ऐसी बात नहीं। फिर भी आजकल वह लादा जाता है। फिर अल्पसंख्यकों के सामने यह सवाल पैदा होता है कि हम अपना निर्णय किस तरह लादें ? फिर इसीमें से हिंसा की बात आती है।

आजकल देश में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक, ऐसे दो पक्ष निर्माण हुए हैं। यह एक नया जातिभेद है। हिन्दुस्तान में तो इसके साथ-साथ पुराने जातिभेद भी आते हैं। एक पार्टी ने एक जाति का मनुष्य खड़ा किया, तो दूसरी पार्टीवाले भी उम्मीदवार चुनते समय जाति का ही विचार करते हैं। वोट इकट्ठा करने के लिए यह सब किया जाता है। विचार समझाना, उस पर अमल हो, इसलिए धीरज रखना—यह बात आजकल नहीं रही। पहले जिस तरह तलवार से निर्णय लादा जाता था, वैसे ही आजकल तलवार के बदले बहुमत से वह लादा जाता है। तलवार के बारे में कहा जाता है कि उसमें अक्ल नहीं होती, इसीलिए हमने उसे छोड़ दिया। लेकिन बहुमत में भी अक्ल नहीं होती। सिरों की गिनती करके निर्णय लेना गलत ही है। इसका नतीजा यह है कि असन्तोष पैदा होता है, कशमकश चलती है। सभी एक-दूसरों को गिराने की कोशिश करते हैं, इसी पर सारी रचना बनती है। आज यह सभी देशों में चला है, क्योंकि सर्वत्र सिरों की गिनती करके सब कुछ चलाने की बात चलती है। सिरों के अन्दर क्या माद्दा है ? यह नहीं देखा जाता। मेहरबानी इतनी ही है कि पागल को वोट का हक नहीं दिया गया। मगर इसका इलाज क्या है ? यह हम न ढूँढ़ें और पक्षभेद, सरकारी पक्ष, विरोधी पक्ष, उन दोनों में अखंड विरोध—यह सारा पश्चिम का ढाँचा हिन्दुस्तान में लायें, तो यहाँ कोई भी काम न चलेगा। एक पक्ष दूसरे पक्ष के काम बिगाड़ता ही जायगा।

पाँच बोले परमेश्वर

इसके लिए एक ही इलाज है। अपने यहाँ एक धार्मिक रिवाज है। अपने

संस्कार और सभ्यता में ही यह बात है कि 'पंच बोले परमेश्वर'। अक्सर लोग इसका सही अर्थ नहीं समझते। ग्राम-पंचायत निर्माण करे, इतना ही इसका अर्थ नहीं। बल्कि यह अर्थ है कि पंचों की एक राय से जो निर्णय होगा, वही माना जायगा। लेकिन आज तो चार विरुद्ध एक, तीन विरुद्ध दो—इस तरह सब चलता है। यह जो 'तीन बोले परमेश्वर' की बात आज चलती है, वह खतरनाक है। 'पाँच बोले परमेश्वर' यह चले, तभी ठीक होगा। अब भी 'क्वेकर्स' में वह चलता है। वे एकमत से ही निर्णय करते हैं। फिर इसमें और भी कई सवाल उठाये जा सकते हैं।

केन्द्रीकरण के दोष

कुछ लोग कहते हैं कि इसमें एक भी मनुष्य अड़ जाय; तो सारा मामला खतम हो जाता है। इसलिए आज का 'बहुमत का तरीका ही ठीक है। लेकिन आजकल तो एक ही मनुष्य को चुनने के लिए लाखों लोगों का वोट लिया जाता है। इतना बड़ा सामुदायिक प्रयोग चलता है, जिसमें कई बुराइयाँ पैदा होती हैं। इसलिए हमने इसके इलाज में जो बात सुझायी है, वह है राज्य का विकेंद्रीकरण। बहुत-सी सत्ता तो गाँव में ही होनी चाहिए। फिर एक गाँव का दूसरे गाँव से जो सम्बन्ध आता है, उसका नियन्त्रण जिला करेगा। एक जिले का दूसरे जिले से जो सम्बन्ध आता है, उसका नियन्त्रण प्रान्त करेगा और दो प्रान्तों के बीच के सम्बन्ध का नियन्त्रण केन्द्र करेगा।

लेकिन आज तो केन्द्र और प्रान्त में ही हिन्दुस्तान के हरएक गाँव के सब व्यवहारों को नियन्त्रित करने की सत्ता है। गाँववालों को कोई भी निर्णय करने का हक नहीं है। गाँव में बाहर के डॉक्टर आयें या न आयें, इसे तय करने का हक गाँववालों को नहीं। नतीजा यह हुआ कि गाँव के सारे धंधे तोड़े गये। लेकिन अब ये धन्धे फिर से शुरू करना या तोड़ना, इस बारे में सारी सत्ता केन्द्र में है, गाँव में नहीं। परिणाम यह होता है कि सारा स्वराज्य केन्द्र में होता है, गाँव में नहीं। गाँव में सिर्फ झाड़ू लगाने का स्वराज्य होता है। मुख्य विषयों में गाँववालों को अधिकार ही नहीं होता।

आज हिन्दुस्तान-सरकार का एक राज्य हुआ है। पुराने राजा-महाराजाओं के राज्य खतम हुए, यह अच्छा ही हुआ। फिर भी राजाओं के अलग-अलग अनेक राज्य थे, तब प्रजा को कुछ तो संरक्षण मिलता था; लेकिन अब वह सब चला गया। जहाँ केन्द्र में सारी सत्ता केन्द्रित रहती है, वहाँ महत्त्वाकांक्षी लोगों को सत्ता हाथ में लेने की इच्छा होती है। फिर ये अक्लवाले हों, तो कारोबार ठीक चलता है और बेवकूफ हों, तो सब मामला बिगड़ जाता है। चन्द लोगों की ही अक्ल से काम हो और बाकी सबकी अक्ल परती रहे, ऐसा अब नहीं होगा। अगर हिन्दुस्तान की थोड़ी-सी अच्छी जमीन में फसल हो और बाकी सारी जमीन परती रखी जाय, तो सारे हिन्दुस्तान के लिए पर्याप्त फसल पैदा नहीं हो सकती।

विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता

आजकल गाँववाले से कहा जाता है, रास्ते बनाओ, झाड़ू लगाओ। इसका मतलब यह है कि उनके सिर्फ हाथों का उपयोग हो, दिमाग का नहीं। ऐसी हालत में उन्हें काम करने में उत्साह कैसे आयेगा? फिर जब वे काम नहीं करते, तो सरकार कहती है कि लोग आलसी हैं। अंग्रेजी में मजदूरों को 'हैण्ड्स' कहा जाता है और उनकी देखभाल करनेवाले चन्द लोगों को 'हेड्स' कहते हैं। इस तरह समाज के दो टुकड़े कर राहु-केतु निर्माण किये गये हैं। अगर किसीके हाथ तोड़कर अलग किये जायँ और फिर उनको कहा जाय कि 'काम करो', तो वे कैसे काम कर सकते हैं? हाथों से काम तब बनता है, जब हाथ के साथ दिमाग रहता है। रास्ता बनाने और झाड़ू लगाने का ही स्वराज्य गाँववालों को दिया जाय, तो फिर उनमें उसके लिए दिलचस्पी नहीं पैदा होती। अपने जीवन की मुख्य वस्तुओं पर नियन्त्रण करने की सत्ता उन्हें मिलनी चाहिए।

जिसे 'फेडरेशन' (संघ) कहते हैं, वैसी ४ लाख देहातों की एक सम्मिलित सरकार निर्माण होनी चाहिए। इसमें सब गाँव अपनी-अपनी अक्ल से काम करेंगे, केन्द्र सिर्फ सलाह देगा। उसे मानना, न मानना गाँववालों की इच्छा पर निर्भर होगा। इसमें कुछ गाँववालों ने ठीक काम [illegible]

काम बिगड़ेगा। पर आज काम बिगड़ा, तो सारे राज्य का ही बिगड़ेगा। जैसे घर में रोटी बनाने में कुछ रोटियाँ बिगड़ जायँ, तो भी बाकी सब अच्छी ही रहती हैं। लेकिन 'बेकरी' में काम बिगड़ गया, तो सब रोटियाँ बिगड़ जाती हैं। पहले राजा लोगों के हाथों में सत्ता होते हुए भी जो नुकसान नहीं होता था, वह आज हो रहा है; क्योंकि पुराने राजाओं के हाथ में सब-का-सब बिगाड़ने या बनाने की सत्ता नहीं थी, जो आज की सरकार के हाथ में है। इसलिए आज की सरकार सब-का-सब बिगाड़ सकती है। पाँच साल बाद चुनाव होते हैं और उसमें नयी सरकार भी आ सकती है। लेकिन पुरानी सरकार ने जो किया, वह नयी सरकार को आगे चलाना पड़ता है। नयी सरकार पुरानी सरकार के वचनों से बाध्य रहती है। अगर आज की सरकार ने विदेशियों के साथ व्यापारविषयक कुछ करार किये, तो आगे आनेवाली सरकार को उन्हें चलाना पड़ता है। इससे छुटकारा पाने के लिए रक्तरंजित क्रान्ति ही करनी पड़ती है। लेकिन ऐसी क्रान्तियाँ बार-बार नहीं होतीं। इस प्रकार आज सरकार के हाथ में सारी सत्ता इस तरह केन्द्रित हुई है कि मामला सुधरा, तो सारा-का-सारा सुधरेगा और बिगड़ा, तो सारा-का-सारा बिगड़ जायगा। इसलिए विकेन्द्रीकरण आवश्यक है।

सर्वोदय-रचना के दो सिद्धान्त

सर्वोदय-रचना में हर गाँव में एक ग्राम-पंचायत होगी और प्रान्त के लिए प्रतिनिधि चुनने का हक ग्राम-पंचायत को होगा। ग्राम-पंचायत के ही हाथ में सारी सत्ता रहेगी और ऊपर की सरकार के हाथ में नाममात्र की सत्ता होगी। ऊपर की सरकार तो सिर्फ सलाह देगी और रेल्वे, रास्ते, विदेशों के साथ व्यवहार आदि पर उसका नियंत्रण रहेगा। इससे आज महत्त्वाकांक्षी लोगों को सत्ता हासिल करने में जितना अधिक उत्साह मालूम होता है, उतना फिर नहीं मालूम होगा, क्योंकि तब प्रान्त या केन्द्र के हाथ में कुछ अधिकार ही नहीं रहेगा। सारा अधिकार गाँव को रहेगा और गाँव में पंचायत का काम 'पाँच बोले परमेश्वर' के नियम से ही होगा।

इस पर यह शंका पूछी जाती है कि इस योजना में एक भी मनुष्य अड़ा रहेगा,

तो कोई निर्णय नहीं हो सकेगा। लेकिन अगर जो ग्राम-पंचायत इस तरह कोई निर्णय नहीं कर सकेगी, तो वह समाप्त हो जायगी और दूसरी ग्राम-पंचायत चुनी जायगी। ऐसी हालत में सभी को आपस में सलाह करके एकमत से राय देने की प्रेरणा होगी। पहले के जमाने में लोग इस तरह राय देते थे, जैसे आज की 'क्वैकर्स' का काम चलता है। अगर हम यह करते हैं, तो सारी व्यवस्था अहिंसा की होती है। किसीको असंतुष्ट होने का मौका नहीं आता। देश में सबकी अक्ल का उपयोग होता है और काम करते समय कुछ बिगड़ा, तो दो-चार गाँव का बिगड़ता है, सबका नहीं।

आज किसी एक की टेक्निकल गलती के लिए 'बाइ-इलेक्शन' (उप-निर्वाचन) होते हैं। फिर से चुनाव के लिए हजारों लोग काम करते हैं, हजारों रुपया खर्च होता है। कितना समय बरबाद होता है और लोगों में कितना भेद-भाव फैलता है! गाँव-गाँव में भेद और वैर पैदा हो जाता है। अगर हम यह सारा तोड़ना चाहते हैं, तो हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे महत्त्वाकांक्षी लोगों के हाथों में सत्ता न रहे, पक्षभेद मिटे। किसी एक के या चन्द लोगों के ही हाथ में सत्ता रहने से वे दुनिया को बना सकते या बिगाड़ सकते हैं। इसके लिए एक ही इलाज है : (१) ग्रामों के हाथ में सारी सत्ता होनी चाहिए और (२) ग्राम-पंचायतों का काम 'पाँच बोले परमेश्वर' इस न्याय से चलना चाहिए। यही सर्वोदय है। 'सर्वोदय' का मतलब है कि गाँव की ही सत्ता चले और गाँव का जो निर्णय हो, वही सबका निर्णय हो। यही सच्चा और अहिंसक स्वराज्य होगा।

कहीं एकमत से, तो कहीं बहुमत से निर्णय

'बहुमत' और 'अल्पमत' का सवाल कृत्रिम है। आज जो लोकतन्त्र चलता है, उसीने यह सवाल पैदा किया है। अगर इससे मुक्त होना चाहते हों, तो सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर ग्रामों में 'पाँच बोले परमेश्वर' के न्याय से काम चलाना होगा। इस पर यह सवाल उठाया जाता है कि 'यह गाँव तक के लिए तो ठीक है। पर गाँव की तरफ से जो प्रतिनिधि प्रान्त के लिए चुने जायँगे, वे तो

बहुमत से ही निर्णय करेंगे ?' बीच के समय के लिए यह चलेगा। परन्तु वे इस तरह से चुने जायँगे कि उन्हें आदत ही ऐसी पड़ेगी कि विधानसभाओं के मुख्य निर्णय एकमत से किये जायँ। जीवन की मुख्य बातों—जैसे खाना, पीना, कपड़ा, तालीम—की सत्ता तो गाँव में ही रहेगी। फिर जो दूसरी मामूली बातें हैं, उनमें बहुमत से निर्णय हुआ, तो किसीके हित की हानि नहीं। उसमें कोई भी ऐसी बात नहीं होती कि अल्पमतवालों के दिलों में रंज पैदा हो। लेकिन अगर वहाँ अन्न, तालीम आदि मुख्य विषयों में मतभेद होता है, बहुमत की बात चलती और अल्पमत की न चलती, तो अल्पमतवालों को दुःख होता है। फिर आघात-प्रतिघात चलता है। जहाँ प्रान्त के हाथ में गौण विषय हैं, वहाँ बहुमत से निर्णय हो, तो कोई हर्ज नहीं। फिर उसमें भी हम ऐसे नियम कर सकते हैं कि कुछ विषयों के लिए ७० या ८० फी सदी मत अवश्य होने चाहिए। आखिर समाज को यह आदत डालनी ही चाहिए कि एकमत से निर्णय हो।

केन्द्र का निर्णय तो एकमत से ही होगा। आज भी यही होता है। मन्त्रि-मण्डल में बड़े-बड़े मसलों पर एकमत से ही फैसला किया जाता है। मतभेद हो तो फैसला नहीं होता, सिर्फ चर्चा चलती है। इसलिए केन्द्र के बारे में तो कोई चिन्ता ही नहीं है।

विचार भिन्न हों, आचार एक

इस तरह गाँवों और केन्द्र के बारे में तो चिन्ता ही नहीं है और प्रान्त में भी जो लोग चुनकर आयेंगे, उन्हें एकमत से निर्णय करने की आदत होगी। इसमें सार्वजनिक हित का और बुनियादी विचार यह है कि आज देश में भिन्न-भिन्न [illegible] हैं। इस हालत में कोई भी देश प्रगति करना चाहता हो, तो ऐसा कोई एक कार्यक्रम निकालना चाहिए, जिसमें सब पक्षों की एक राय हो। विचार में मतभेद हो, परन्तु आचार में सबकी राय एक हो। ऐसा एक कार्यक्रम सबको मंजूर हो, तो निश्चय ही प्रगति होगी। लेकिन अगर कार्यक्रम में ही मतभेद रहा, तो हिन्दुस्तानी की प्रगति नहीं हो सकती, क्योंकि इस देश के लोग प्रवृत्तिशील नहीं हैं। देश में बहुत आलस्य भरा है।

विचार-मंथन अवश्य हो

हरएक को विचार-प्रचार करने का पूरा हक होना चाहिए। मंथन से नव-नीत निकलता है। किन्तु आजकल तो कार्यक्रम का ही मंथन चलता है और उससे जनता निष्क्रिय और हताश होती है। हमें जैसे-जैसे राज्य का अधिक अनुभव होगा, वैसे-ही-वैसे यह मालूम होगा कि जनता में बुद्धिभेद पैदा न करना चाहिए। कोई एक छोटा-सा ही कार्यक्रम उठाना चाहिए, जिसमें सब एकमत हों। मुझे इस बात की खुशी है कि भूदान-यज्ञ में सब एकमत हैं। इसलिए उतना ही कार्यक्रम लोगों के सामने रखा जाय और वह पूरा किया जाय। इस तरह एक-एक कार्यक्रम को पूरा करते-करते हम आगे बढ़ें। हिन्दुस्तान में चुनाव का इतना बड़ा काम तीन-चार महीने में ही खतम हो गया, क्योंकि सभी लोग उसमें लग गये थे। यद्यपि हम निष्क्रिय हैं, फिर भी सब लोगों ने मिलकर उसे पूरा किया। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि उस चुनाव में दूसरे देशों की तुलना में बुराइयाँ कम हुईं और देश ने एक अच्छा काम किया। इस तरह हम एक-एक कार्यक्रम, एक-एक अमली काम उठाते जायँ और उसे पूरा करते जायँ, तो देश का भला होगा। नहीं तो भिन्न-भिन्न मतों के साथ भिन्न-भिन्न कार्यक्रम भी होंगे। फिर कार्यक्रमों में टक्कर हुई, तो देश आगे नहीं बढ़ सकेगा।

नेतरहा
१२-८-'५२

हम लोगों में 'नीति-विचार' नया नहीं, पुराना है। नीति को अक्सर 'धर्म' कहा गया है। आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध, ऐहिक जीवन और उसकी समाप्ति के बाद का जीवन—यह सब उसमें आ जाता है। इस लोक में जिस तरह का व्यवहार करना चाहिए, वह सारा धर्म का विषय है।

धर्म के दो अंग

आजकल हमारे राज्य को धर्म निरपेक्ष राज्य कहा जाता है। यह हमारे लिए कोई नयी कल्पना नहीं। जो सच्चा और अच्छा राज्य होता है, वह धर्म-निरपेक्ष ही होता है, 'धर्महीन' नहीं। धर्म में कई बातें आती हैं। धर्म का एक अंग मृत्यु के बाद का जीवन है, जिसमें आत्मा, परमात्मा आदि बातें आती हैं। उनका सम्बन्ध राज्य से नहीं आता। इहलोक के व्यवहार और सत्य, प्रेम, न्याय आदि के सिद्धान्त धर्म का दूसरा अंग है, जिनका सम्बन्ध राज्य से है। इन सिद्धान्तों पर ही राज्य निर्भर होना चाहिए। इस अर्थ में हर सरकार धार्मिक सरकार होनी चाहिए। धर्मनिरपेक्ष राज्य का मतलब 'लोकयात्रिक सरकार' है। लोगों का ऐहिक जीवन अच्छा चले, इतना ही खयाल करनेवाली सरकार 'लोकयात्रिक सरकार' है। धर्म के पुराने अर्थ में हम उसे धार्मिक कहते हैं और धर्म के पारलौकिक अर्थ में उसे धार्मिक नहीं कहते।

'धर्म' एक व्यापक शब्द है। जिस नीति-विचार पर हमारा जीवन चलता है, उसे हम 'धर्म' कहते हैं। धर्म अविचल होता है। उसके सिद्धान्त पक्के होते हैं। जिस तरह गणित के सिद्धान्त इस देश और उस देश में तथा इस काल और उस काल में भी स्थिर रहते हैं, उसी तरह धर्म के सिद्धान्तों में भी फर्क नहीं होता। धर्म के सिद्धान्त मूलभूत होते हैं, तीनों कालों और सब देशों में समान एवं अविचल होते हैं। सत्यनिष्ठा, प्रेम, दया, ये सद्गुण, जिन्हें भगवान्

ने 'दैवी-सम्पत्ति' का नाम दिया है, वस्तुतः वही सनातन-धर्म है, जो अविचल, ध्रुव, शाश्वत, स्थिर और नित्य होता है। यह हमने प्राचीन काल से माना है और आज भी मानते हैं।

आज की सापेक्ष नीति

बाद में समाज में एक विचार चल पड़ा—इस देश में और दूसरे देश में भी। वह विचार यह था कि 'यह अविचल धर्म और सत्य, अहिंसा, प्रेम आदि धर्म के सिद्धान्त सब लोगों के लिए लागू नहीं होते। इनका आचरण करनेवाला एक विशेष पारमार्थिक वर्ग होता है, जिसमें संन्यासी आदि आते हैं। दूसरे लोगों को सत्य का मिश्रित पालन करना चाहिए, सत्य बिलकुल ही छोड़ना नहीं चाहिए। इसका नतीजा यह हुआ कि सत्य, अहिंसा, प्रेम आदि तत्त्व चन्द लोगों के लिए रह गये और बाकी लोग धर्म के नाम पर व्यावहारिक सहूलियत से आचरण करने लगे। धर्म के हरएक नियम के अपवाद ढूँढ़े गये। फिर संन्यासी के लिए एक धर्म माना गया और गृहस्थ के लिए दूसरा धर्म। गृहस्थ परिग्रही हो सकता है, पर संन्यासी को अपरिग्रही होना चाहिए; गृहस्थ मौके पर हिंसा कर सकता है, असत्य बोल सकता है, पर संन्यासी को हमेशा अहिंसा और सत्य का पालन करना चाहिए, इस तरह विभाजन हुआ। लेकिन जहाँ गुणों का विभाजन होता है, वहाँ समाज की हालत अत्यन्त खतरनाक हो जाती है। समाज छिन्न-विच्छिन्न हो जाता है। वही हालत आज अपने देश की है और दूसरे देशों की भी। हरएक स्कूल में बच्चों को सत्य की महिमा पढ़ायी जाती है। वहाँ झूठ की बात पढ़ाना कोई भी पसन्द नहीं करता। लेकिन यह सत्य स्कूल तक ही सीमित रहता है। कॉलेज की पढ़ाई में कुछ दूसरी ही बातें आ जाती हैं। जिस तरह समाज में सत्य संन्यासियों के लिए ही है, उसी तरह शिक्षा में वह बच्चों के लिए ही है। परन्तु जब वे बच्चे बड़े होते हैं, तब उन्हें सत्य के अपवाद सिखलाये जाते हैं।

अक्सर पिछड़ी हुई या वन्य जातियाँ अधिक सत्यनिष्ठ होती हैं। लेकिन जैसे-जैसे उनका बाहर की दुनिया से सम्बन्ध आया, वैसे-ही-वैसे वे सत्य को भूलते गये। यह उन लोगों ने लिख रखा है, जिन्होंने उनमें काम किया है।

इसमें पूरी सत्यनिष्ठा आवश्यक है। अपने हिसाब में कहीं भी गलती न होनी चाहिए। वचन की निष्ठा होनी चाहिए। जरा भी दबाव का प्रयोग न होना चाहिए। अविचल नीति पर पूरा आधार रखकर ही क्रांति हो सकती है। हम केवल भूमिप्राप्ति पर ही जोर दें, तो दुनिया में वैसे कई काम आज तक हुए हैं। पर हम चाहते हैं कि सारे समाज का उत्थान हो, सारा समाज ऊपर चढ़े। आज हिन्दुस्तान की इतनी दुर्दशा इसीलिए है कि हर कोई अपने लिए बटोरना, संग्रह करना चाहता है। कोई भी संग्रह की मर्यादा नहीं रखता। कितना संग्रह किया जाय, इसकी मर्यादा नहीं रखता। इसी तरह साधनों की मर्यादा, नाप या परिमाण भी नहीं रहा है। हम कहते हैं कि कोई भी अपनी वही जमीन दान करे, जिस पर उसका कानूनी हक हो। दान कोई यांत्रिक वस्तु नहीं, कोई टैक्स नहीं। वह तो हृदय से निकलनेवाली वस्तु है। जमीन के साथ हम चाहते हैं कि उसका नीति-विचार भी लोग समझें और उस पर अमल करें। आखिर जो जमीन देगा, वह जमीन के साथ-साथ और भी चीजें देगा और अपने जीवन में ही परोपकार की निष्ठा रखेगा। जो जमीन देगा, वह अपने पड़ोसी की चिन्ता भी करेगा। इस तरह समाज का उत्थान हो, यही हम चाहते हैं। इसलिए हममें से जो इस काम के लिए जीवन देना चाहते हैं, वे अपने जीवन की नित्य-निरंतर शुद्धि की बात ध्यान में रखकर ही काम करें।

नेतरहाट
१४-६-'५२

धर्म-चक्र-प्रवर्तन कब होता है ? : १८ :

हम एक नैतिक ताकत पैदा करना चाहते हैं। हिन्दुस्तान ने अपनी आजादी अनोखे ढंग से हासिल की, इसलिए एक नैतिक ताकत निर्मित हुई। आज भी हिन्दुस्तान में कोई ताकत पैदा हो सकती है, तो वह नैतिक ताकत ही।

नैतिक दबाव और हृदय-परिवर्तन

हम सबको यह धर्म सिखाना चाहते हैं कि भूखे पड़ोसी की चिन्ता करना हमारा कर्तव्य है। आसपास के लोगों में भूख, अज्ञान और बीमारी हो, तो जिनके पास धन, बुद्धि और शक्ति है, उन्हें कभी सुख न मालूम होना चाहिए। इसीको हम 'हृदय-परिवर्तन' कहते हैं। 'नैतिक दबाव' और 'हृदय-परिवर्तन' में फर्क करना ही गलत है। बिहार में अब तक चालीस हजार लोगों ने दान दिया है। जमीन तो ज्यादा नहीं मिली, क्योंकि उसमें बहुत सारे लोग गरीब थे। किन्तु उसका प्रभाव अब बड़े लोगों पर हो रहा है। अब उनके दिल पसीज रहे हैं, उनमें एक भावना हो रही है, जिसे वे टाल नहीं सकते। इस जिले में तो एक राजा हमारे एजेंट बनकर घूम रहे हैं। क्या यह हृदय-परिवर्तन नहीं है ? परन्तु हृदय-परिवर्तन हिसाब से नहीं होता। एक मनुष्य का हृदय-परिवर्तन हुआ, तो आसपास के पचासों लोगों पर उसका असर होता है। इसीको मनुष्य के 'विचार का दबाव' कहते हैं। यह हिंसा-शक्ति से सर्वथा भिन्न है। वेद में कहा है : दान दिया जाता है, वह लोक-लज्जा से दिया जाता है। इसलिए लोक-लज्जा एक बड़ी बात है। सारा समाज क्या कहता है, यह देखकर कुछ करना हृदय-परिवर्तन ही है। हृदय-परिवर्तन की मात्रा नापनी ठीक नहीं है।

बाहर की परिस्थिति से हृदय-परिवर्तन होता है और हृदय-परिवर्तन का परिणाम बाहर की परिस्थिति पर होता है। एक-दूसरे का परिणाम एक-दूसरे पर होता है। बीज से फल पैदा होता है और फल से बीज। अगर किसी व्यक्ति

का बुढ़ापे में लड़का मर गया और उसे वैराग्य हुआ, तो क्या आप यह कहेंगे कि बुढ़ापे के कारण वैराग्य हुआ है? यह सच्चा नहीं है। हाँ, यह सही है कि जब वह जवान था और उसका लड़का जिन्दा था, तब उसमें आसक्ति थी। किन्तु कई लोग बूढ़े होते और कई लोगों के लड़के मर जाते हैं, फिर भी वे वैरागी नहीं बनते। इसका मतलब यह है कि उसके हृदय में पहले से ही कुछ भावना थी और लड़के की मृत्यु एक निमित्त बन गयी, जिससे अन्तर की वह भावना जाग्रत हो उठी। इसलिए हरएक मनुष्य के हृदय में अच्छी भावना है, ऐसा विश्वास रखो। हमने हरएक को मत (वोट) का हक दिया है, इसके माने यही हैं कि हम मानते हैं कि हरएक के हृदय में सद्भावना है।

दोहरा काम : हृदय-परिवर्तन और परिस्थिति-परिवर्तन

हम दो बाजू से काम कर रहे हैं : (१) हरएक व्यक्ति, गरीब और श्रीमान् के अन्दर जो परमेश्वर है, उस पर भरोसा रखते हैं और (२) ऐसी परिस्थिति निर्माण करना चाहते हैं, जिससे लोगों में जाग्रति पैदा हो, जिससे लोगों को दान दिये बगैर रहा न जाय। इस तरह हम नैतिक जाग्रति याने हृदय-परिवर्तन और जन-जाग्रति, ऐसी दोहरी जाग्रति करना चाहते हैं। केवल लोक-जाग्रति हो और नैतिक जाग्रति न हो, तो परिणामस्वरूप हिंसा की शक्ति पैदा हो सकती है। और केवल नैतिक जाग्रति हुई, तो काम बनने में बहुत समय लगेगा। इसलिए हम दोहरा काम कर रहे हैं। जैसे पंछी के दो पंख होते हैं, वह एक पंख से उड़ नहीं सकता, वैसे ही धर्म-कार्य दो तरह से होता है, अन्दर से जाग्रति निर्माण करना और परिस्थिति में परिवर्तन करना।

धर्म-चक्र-प्रवर्तन

सामान्य धर्म-प्रचार और क्रान्ति या 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन', ये दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। सामान्य धर्म तो ऋषि और संत लोग हमेशा समझाते रहते हैं। इसलिए सर्वसाधारण धर्म-प्रचार एक बात है और जमाने की माँग क्या है, वह पहचान कर धर्मविचार को उसके साथ जोड़ देना दूसरी बात है। गांधीजी ने देश को इसी तरीके से अहिंसा सिखायी है। प्रेम से, अहिंसा से लड़ने की बात तो

पुरानी ही थी, पर उसे वे स्वराज्य के साथ नहीं जोड़ते, तो उन्हें सिर्फ दस बीस अनुयायी मिल जाते। उस समय हम तलवार से लड़ नहीं सकते थे, क्योंकि निःशस्त्र थे और अंग्रेज लोग शस्त्रों में हमसे बहुत ताकतवर थे। इसलिए अहिंसा से लड़ना ही अच्छा था। परिस्थिति भी उसके अनुकूल थी। इस तरह धर्मविचार का आन्तरिक बल और परिस्थिति का बल, दोनों को जोड़कर उन्होंने देश को अहिंसा सिखायी और उसीसे हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ। इसी तरह आज गरीबों को जमीन की आवश्यकता है। सिर्फ हिन्दुस्तान में ही नहीं, सारे एशिया में जमीन की भूख है। गरीबों को जमीन मिले बगैर वे शान्त नहीं रह सकते, ऐसी परिस्थिति है। उसीके साथ हम लोगों को धर्म-विचार भी समझा रहे हैं कि भूखे पड़ोसी को जमीन देनी चाहिए, जमीन परमेश्वर की देन है, इसलिए उस पर सबका समान अधिकार है। अगर यही विचार हम हजार-पाँच सौ साल पहले समझाते, तो लोग हमारी बात न सुनते। किन्तु आज इस बात को भी हम जमाने की माँग के साथ जोड़ देते हैं, तो वह सिर्फ मामूली धर्म-प्रचार नहीं, बल्कि धर्म-चक्र-प्रवर्तन हो जाता है। संत और ऋषि मामूली धर्म-प्रचार हमेशा करते ही रहते हैं, परन्तु उससे धर्म-चक्र-प्रवर्तन नहीं होता। लेकिन जहाँ परिस्थिति के साथ धर्म-भावना जुड़ जाती है, वहाँ वह लोगों के दिल को छू लेती है। उसीमें से बड़ी शान्ति पैदा होती है और उससे धर्म-चक्र-प्रवर्तन होता है।

एक ऐसा मौका होता है, जब धर्म करने की प्रेरणा होती है। आज ही देखिये, आज ग्रहण का दिन है। कोई दान देने की बात समझाता है, तो वह फौरन मन को पकड़ लेती है। वैसे दान तो हर रोज करना चाहिए, लेकिन ग्रहण के दिन वह बात जल्दी समझ में आ जाती है, क्योंकि वह एक मौका है। आज हमें लाखों एकड़ जमीन मिल रही है। पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ था। तो, क्या एकदम इतने सारे लोगों के दिल धर्म-भावना से भर गये? ऐसा तो नहीं हो सकता। इस दान में धर्म की भावना है, परन्तु उसके साथ परिस्थिति की आवश्यकता, जमाने की माँग या युग-धर्म भी है।

सबका हृदय-परिवर्तन तब होता है, जब जमाने की माँग और धर्म की

भावना, दोनों जुड़ जाते हैं। यह बिलकुल आन्तरिक हृदय-परिवर्तन तो नहीं कहा जायगा, परन्तु कुछ हृदय-परिवर्तन जरूर है। अगर कोई पूरे हृदय-परिवर्तन के साथ दान देता है, तो उसे मोक्ष मिल ही जायगा। परन्तु यों ही धर्म-भावना से देता है, तो हमारे आन्दोलन के लिए उतना भी काफी है। हमारे आन्दोलन के लिए यह जरूरी नहीं कि हर कोई पूरी चित्त-शुद्धि से ही दान दे। आज जमीन देना आवश्यक है, इस बात को लोग समझ लें, तो हमारे लिए उतना ही बस है।

परमेश्वर की फजीहत

यह ईश्वर का काम है और वही हमारे जैसे तुच्छ औजार के जरिये इसे करवा रहा है। नहीं तो हमारे जैसे साधारण मनुष्य के शब्दों की आज इतनी कीमत न होती। परन्तु वह जब चाहता है, तो सब कुछ हो सकता है। लोग पूछते हैं कि यह काम असफल हुआ, तो क्या होगा? लेकिन हम इस तरह कभी नहीं सोचते। यह काम विनोबा का नहीं है, परमेश्वर का है। इसलिए अगर यह असफल हुआ, तो विनोबाजी की नहीं, बल्कि परमेश्वर की फजीहत होगी।

सिसई
२७-६-'५३

अपनी इस यात्रा में हमें बहुत कीमती अनुभव आये और मानव-स्वभाव का बहुत ही अच्छा दर्शन हुआ। हमारे पुराणों और दूसरे धर्मग्रन्थों में देव और दानवों की लड़ाई का जिक्र आता है। ये देव और दानव कौन हैं, कहाँ रहते हैं, और आज कहाँ हैं? ये सवाल सहज ही पैदा होते हैं।

देवासुर-संग्राम हर हृदय में

हमारे शास्त्रकारों ने समझाया है कि देव और राक्षस, दोनों मनुष्य के अन्दर रहते हैं। मनुष्य के हृदय, मन और बुद्धि में जो असद्भावनाएँ होती हैं, वही राक्षसों का रूप है। इस तरह इनकी लड़ाई न सिर्फ प्राचीनकाल में हुई, बल्कि हर रोज और हरएक हृदय में चल रही है। इसीको 'देवासुर-संग्राम' कहते हैं। इस तरह का देवासुर-संग्राम जहाँ हुआ, वहाँ थोड़ी देर के लिए राक्षसों की जीत भले ही दिखाई दे, परन्तु आखिर में देवों की ही जीत होती है, ऐसा सब पुराणों में लिखा है। कहने का सार यह है कि मनुष्य के हृदय में जो अच्छी भावनाएँ हैं, वे बलवती हैं और जो बुरी भावनाएँ हैं, वे कमजोर हैं। बुरी भावनाएँ थोड़ी देर के लिए दर्शन देती हैं, तो ऐसा लगता है कि सारा समाज भ्रष्ट हुआ, सर्वत्र अधर्म फैल गया। लेकिन फौरन देव जाग जाते हैं, जो मनुष्य के अन्दर छिपे रहते हैं। उनके जागने पर असुर टिक नहीं पाते। जैसे सूर्योदय होने पर नक्षत्र खतम हो जाते हैं और अन्धकार नहीं टिकता, वैसे ही जहाँ देव जाग जाते हैं, वहाँ सारी बुराइयाँ भाग जाती हैं। मनुष्य के हृदय की गहराई में देव ही रहते हैं और राक्षस मनुष्य के मन और बुद्धि में छिपे रहते हैं।

दानात् देवः, रक्षणात् राक्षसः

बिहार की इस यात्रा में हमें यही अनुभव आया। हम जहाँ-जहाँ गये और जिस किसीको भूदान का संदेश सुनाया, सबने उसे पसन्द किया। कुछ लोगों ने काफी दान दिया, कुछ लोगों ने हिसाब से दिया और जिन्होंने

नहीं दिया, उन्होंने भी देना उचित मानकर हमारे विचार को कबूल किया। इसके मानी यह है कि उन्होंने मौका आने पर देना कबूल किया। अभी तक मुझे ऐसा कोई भी नहीं मिला, जिसने देना कबूल न किया हो। हम इसका अर्थ यही समझें कि सत्य-युग आ रहा है। पुराणों में चार युगों का जिक्र किया गया है। उनकी कुछ मियाद बनी हुई है, ऐसा कहा गया है। किन्तु उन चारों युगों के अन्दर भी युग आते रहते हैं। जैसे दिन में प्रकाश और रात में अन्धकार होता है, जैसे देह में श्वास और उच्छ्वास प्रतिक्षण चलते रहते हैं या जैसे चंद्र की लगातार क्षय-वृद्धि होती है, वैसे ही एक-एक युग के अन्दर भी दूसरे-दूसरे युग आते-जाते रहते हैं।

इस समय चाहे कलियुग चल रहा हो, तो भी आज उसमें सत्ययुग आ सकता है और सत्ययुग चल रहा हो, तो उसमें कलियुग आ सकता है। पुराणों में हम देखते हैं कि रामजी के युग में रावण जैसा राक्षस हुआ और इस कलियुग में भी असंख्य सत्पुरुष हुए। इसके मानी यह है कि युग तो नाममात्र के लिए, ज्योतिष के खयाल से कुछ भी चलता हो, परन्तु भावना के खयाल से एक ही युग में चारों युग होते हैं, और कुल मिलाकर सत्ययुग बहुत लम्बा होता है। कलि का मतलब एक है, उससे दुगुना द्वापर-युग होता है, उससे तिगुना त्रेता-युग होता और चौगुना कृत-युग होता है। संस्कृत में कलि का मतलब है एक, द्वापर का मतलब है दो, त्रेता का मतलब है तीन और कृत का मतलब है चार। इसके मानी यह है कि कलियुग से सत्ययुग की ताकत चार गुना अधिक होती है और मनुष्य में भी कलियुग से सत्ययुग की ताकत चार गुना अधिक होती है। बीच-बीच में कलि का जोर चलता है, परन्तु सत्य अधिक बलवान् है। जिसे हम 'मानवता' कहते हैं, वह दैवी सम्पत्ति भी मनुष्य के हृदय में अधिक होती है। मानव में सत्त्वगुण प्रधान है और रजोगुण और तमोगुण जैसे राक्षस गौण हैं। इसका दर्शन हमने बिहार में किया।

लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान में चारों ओर भ्रष्टाचार फैला हुआ है, हिन्दुस्तान के लोग बिगड़ गये हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। हमने तो देखा कि लोगों का हृदय पवित्र है। वह देखकर न सिर्फ आनन्द हुआ, बल्कि हमने

पावनता भी महसूस की। ऐसी कई घटनाएँ घटीं, जिनसे हम कह सकते हैं कि सत्ययुग नजदीक आ रहा है। छोटे-छोटे बच्चों ने अपने माँ-बाप से त्याग करवाया और जमीन दिलवायी। स्त्रियों ने स्वयं दान दिया और पुरुषों को भी दान देने की प्रेरणा की। छोटों और बड़ों ने सर्वस्व दान दिया। यह सब देखकर हम कह सकते हैं कि मनुष्य में देव ही प्रधान है, राक्षस तो छिपे और कमजोर हैं। मनुष्य के हृदय में जितने बुरे भाव हैं, वे सब राक्षस हैं और जितने अच्छे भाव हैं, वे सब देव हैं। संस्कृत में कहा है कि 'दानात् देवः, रक्षणात् राक्षसः' याने जो दान देते हैं, वे देव हैं और जो अपने पास रख लेते हैं, वे राक्षस हैं। सब सद्गुणों का सार है, दान देने की वृत्ति और सब दुर्गुणों का सार है, संग्रह की वृत्ति। संग्रह से बढ़कर कोई राक्षस नहीं और देने से बढ़कर देव नहीं हैं।

सूर्योदय की आगाही करनेवाले पंछी

आज की परिस्थिति देखकर हमारा उत्साह बढ़ता है। हमारा विश्वास है कि जिस सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति की हम अपेक्षा करते हैं, वह होकर रहेगी। जो लोग भूदान के काम में निमित्त बनकर काम कर रहे हैं, वे बहुत भाग्यवान् हैं। वह जमाना जोरों से आ रहा है, हम उसे ला नहीं रहे हैं। किंतु हम उसके साथ हो जायँ, तो हमें यश मिलनेवाला है। वैसे दुनिया में सब कुछ तो भगवान् ही रता है, परन्तु वह अपने भक्तों को यश देता है, यही उसकी खूबी है। सूर्योदय होता ही है, परन्तु पक्षी उसकी आगाही का गीत गाते हैं, तो उन्हें सूर्योदय लाने यश मिल जाता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि "पंछी बन बोले"। पंछी सूर्य आह्वान करते हैं, इसलिए उन्हें नाहक यश मिल जाता है। वैसे ही इसमें काम वाले हम सब पक्षी हैं। हम गाँव-गाँव जाकर बोलते हैं कि सूर्योदय हो रहा । ोग कहते हैं कि विनोबा को जमीन मिल रही है। किन्तु घूमने से जमीन नहीं । जब यह काम शुरू हो गया, तो इससे मसला हल हो सकता है, सारे में परिवर्तन हो सकता है।

में ऐसी शक्ति है, यह अनुमान उस समय किसीने नहीं किया और किया था। फिर भी मेरी श्रद्धा थी। जिस दिन मैंने भगवान् का

वह इशारा पाया और काम शुरू किया, उसी दिन से मेरी श्रद्धा है कि भगवान् चाहता है कि हिन्दुस्तान में यह काम हो। हिन्दुस्तान में स्वराज्य के बाद यही काम करना है। जैसे दिन के बाद रात आती है, वैसे ही राजनैतिक आजादी के बाद आर्थिक आजादी सहज प्रवाह में आती है। जिन साधनों से हमने राजनैतिक आजादी प्राप्त की, वह साधन-सम्पदा मिट नहीं सकती। वह कुछ देर तक दबी हुई-सी मालूम हो, परन्तु प्रकट होनेवाली ही है, ऐसा मेरा विश्वास था। हम मानते थे कि जो पुण्य प्रभाव स्वराज्य के आन्दोलन में प्रकट हुआ और बीच में चार साल लुप्त हुआ था, वही फिर से प्रकट होगा। जो जोर राजनैतिक आन्दोलन में प्रकट हुआ था, वह उससे भी अधिक प्रमाण में इस आन्दोलन में प्रकट होगा।

भूदान से किसानों का नैतिक संगठन

यह काम शहरों में प्रचार करने, सभाओं में प्रस्ताव पारित करने, किसीके खिलाफ निषेध-प्रस्ताव पास करने से या अखबारों से नहीं होगा। इसके लिए गाँव-गाँव जाना पड़ेगा। क्रान्ति की शक्ति अगर कहीं होती है, तो ग्रामीणों में ही, क्योंकि ग्रामीण ही देश की रक्षा करनेवाले हैं। अक्सर कहा जाता है कि क्षत्रिय देश की रक्षा करते हैं। ये क्षत्रिय एक चुना हुआ वर्ग है। जिसे 'फौज' कहते हैं, वह नहीं है। सिर्फ फौज देश की रक्षा नहीं कर सकती। जो लोग भूमि के साथ जुड़े हुए हैं, वे ही भूमि की रक्षा कर सकते हैं। आजकल की लड़ाइयों ने जाहिर कर दिया है कि जिस देश के नेतृत्व के पीछे देश का किसान है, वही देश यशस्वी होता है। जो भूमि-पुत्र हैं, वे ही भूमि-माता की रक्षा कर सकते हैं। स्टालिनग्राड की लड़ाई में यही हुआ। कितनी घनघोर लड़ाई हुई, कितने किसान मर-मिटे! जब कि जर्मनी की सारी ताकत रूस के खिलाफ लगी हुई थी और रूसवाले ऐंग्लो-अमेरिकनों से कहते ही रहे कि 'सेकण्ड फ्रण्ट' (दूसरा मोर्चा) खोलो, तो भी उसे खोलने में देर लगी। ऐसे समय पर किसीको भी अन्दाजा नहीं था कि रूसवाले जीतेंगे। जब कि जर्मनी की सारी वार-मशीनों का दबाव रूस पर था, तब किसीने नहीं सोचा था कि रूस लड़ेगा। किन्तु वह लड़ा और जीता, क्योंकि वहाँ के किसान वहाँ के नेतृत्व के पीछे थे। इसीलिए जो

जमीन की काश्त करता है, वही देश की रक्षा कर सकता है। ऐसे लोगों के साथ सम्पर्क लाने का एक निमित्त भूदान-यज्ञ हम सबको मिला है। जिन लोगों को क्रान्ति का थोड़ा भी दर्शन है, वे इस मौके को अपने हाथ से जाने नहीं देंगे। वे किसानों से सम्पर्क रखने के इस मौके से लाभ उठायेंगे और उनका नैतिक संगठन करेंगे। मैं कम्युनिस्टों से पूछता हूँ कि किसानों के नैतिक बल का संगठन करोगे या सिर्फ संख्याबल का ही? जब नैतिक शक्ति प्रकट होती है, तभी यश मिलता है।

नीति का अधिष्ठान खेती

आखिर किसान ही तो दुनिया में पैदा करते हैं, फिर भी वे दबे हुए-से हैं; क्योंकि उनकी नैतिक शक्ति जाग्रत नहीं हुई है। नैतिक शक्ति जितनी उनमें जाग्रत हो सकती है, उतनी और किसीमें नहीं। कारण नीति का अधिष्ठान खेती है। खेती सभी से उत्तम उद्योग है। खेती करनेवाला नीतिमान् होता है। वह परमेश्वर का उपासक होता है, क्योंकि वह ब्रह्मदेव का काम करता है। वह पहले पैदा करता है, फिर खाता है। वह किसीको लूटता नहीं। वह निर्माण का ही कार्य करता है। इसीलिए वेदों ने आज्ञा दी है कि 'कृषिमित् कृषस्व, वित्ते रमस्व, बहु मन्यमानः।' खेती करो। व्यापार में जितना ज्यादा पैसा मिलता है, उतना खेती में नहीं मिलेगा। किन्तु खेती में जो फसल पैदा होती है, वह बहुत है। चाहे वह ऐशो-आराम के लिए काफी न हो, फिर भी खेती में से लक्ष्मी पैदा होती है। और दूसरे उद्योगों में तो सिर्फ धन पैदा होता है, लक्ष्मी नहीं। धनपति कुबेर हैं, तो क्ष्मीपति भगवान्। यह जो सारी सृष्टि दीखती है, यह जो वनश्री और सस्यश्री जो तरकारी, अनाज और फल पैदा होते हैं, सृष्टि में मनुष्य के प्रयत्न से जो सुन्दरता निर्माण होती है, वही लक्ष्मी है। लक्ष्मी प्रसन्न होकर किसान के ाती है। ऐसे किसान से सम्पर्क रखने का भूदान-यज्ञ से बेहतर दूसरा कोई नहीं।

क्रांति के दर्शन से पक्षभेद मिटेंगे

छ लोग कहते हैं कि चुनाव में किसान के पास पहुँचने का मौका मिलता वह तो किसानों से लाभ उठाने का मौका है और भूदान-यज्ञ में

किसानों को लाभ कराने का मौका है। वैसे किसानों को लूटने के लिए चोर भी रात को उनके पास जाते हैं, लेकिन उससे किसानों का सम्पर्क नहीं बढ़ता। चुनाव में तो आत्म-स्तुति, पर-निन्दा और मिथ्या भाषण, ये तीन कार्यक्रम होते हैं और इन्हींको लेकर लोग जनता के पास जाते हैं। इनसे जनता का उत्थान नहीं हो सकता। इसलिए हम राजनैतिक नेताओं को आगाह कर देना चाहते हैं कि यह जो पार्टियों का और बड़े-बड़े चुनावों का, जिनमें करोड़ों लोगों को लाया जाता है; तरीका उन्होंने पश्चिम से लाया है, उसमें बहुत बड़ा खतरा है। इसलिए हमें दूसरा कोई तरीका ढूँढ़ना होगा। चुनाव में जो जनसम्पर्क होता है, उसकी भूदान-यज्ञ के जनसम्पर्क से कोई तुलना ही नहीं हो सकती; क्योंकि भूदान-यज्ञ से जनता की दिव्य-शक्ति या देवत्व प्रकट होने का मौका मिलता है। इसीलिए तो जिन्हें क्रान्ति की दृष्टि है, ऐसे लोग इस काम में लगे हैं। जयप्रकाशजी इस काम में लगे हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि विशाल और व्यापक है। उन्हें दर्शन है कि दुनिया में क्रान्तियाँ कैसे हुई और अहिंसक साधनों से वह कैसी होती हैं। इसीलिए वे रात-दिन इस काम में लगे हैं। अगर हम लोगों को क्रान्ति का वैसा दर्शन होगा, तो हमारे सारे भेद मिट जायँगे। सूरज उगने पर तारे मिट जाते हैं, वैसे ही हमारे सारे पक्ष-भेद, जाति-भेद और व्यक्ति-भेद खतम हो जायँगे।

राँची
१-७-’५२

अपने आन्दोलन की गहराई पर जब मैं सोचता हूँ, तब मुझे ढाई हजार साल पहले हिन्दुस्तान में उठे उस बड़े भारी आन्दोलन का, जिसमें भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर ने अपने-अपने ढंग से काम किया था, स्मरण हो आता है।

प्राचीन जमाने में दुःख अधिक था

उन दिनों लोगों की हालत आज की हालत से बहुत बेहतर थी, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं। अक्सर हम पुराने जमाने की अच्छाई याद रखते और बुराई भूल जाते हैं। इसीलिए जो चीज जितनी पुरानी होती है, उसका उतना ही अधिक आकर्षण मालूम होता है। किन्तु सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण हर हालत में रहते हैं। इसलिए आम जनता का हाल उस समय आज से अच्छा था, यह मानने का कोई कारण नहीं। अगर अच्छा हाल होता, तो इस ढंग से सोचा ही नहीं गया होता कि सारी दुनिया दुःख से भरी हुई है और उस दुःख को मिटाना ही धर्म-कार्य है। तब दूसरे ही ढंग से सोचा गया होता। जिन्दगी का उद्देश्य दुःख-निवृत्ति ही है, ऐसा मानने की प्रवृत्ति तब होती है, जब दुःख बहुत ज्यादा होता है। जब दुःख बहुत ज्यादा नहीं होता, तब जीवन का उद्देश्य सुख और दुःख दोनों से कुछ भिन्न मानने की प्रवृत्ति होती है। लेकिन जहाँ दुःख मिटाने की बात आती है, वहाँ उसका अर्थ काम-क्रोध आदि से मुक्ति किया जाता है। तभी वह बात तत्त्वज्ञान में टिकती है। सिर्फ दुःख-मुक्ति की बात तत्त्वज्ञान में नहीं टिकती, परिस्थिति में टिकती है।

आज कम्युनिस्ट कहते हैं कि दुःखमुक्ति ही हमारा उद्देश्य है। याने दुःख एक ऐसी बात है, जिससे मुक्ति पाना ही इस जीवन की परम सीमा मानी गयी है। सबको खाना-पीना और कपड़ा मिले, सबको तालीम मिले, दवा-दारू मिले, न्याय मिले, यही हमारा उद्देश्य है—ऐसा वे कहते हैं। ये बातें उनके लिए

बहुत महत्त्व की हो गयी है। किन्तु हम जरा सोचेंगे, तो मालूम होगा कि ये जीवन की साधारण बातें हैं। खाना-पीना तो मामूली बातें हैं। पर जहाँ दुःख बहुत बढ़ जाता है, वहाँ तत्त्वज्ञान में भी दुःख मिटाने की बात आती है। लेकिन तत्त्वज्ञान में उस दुःख का अर्थ गहरा करते हैं, सब दुःखों से मुक्ति पाना। इसे वे परम पुरुषार्थ मानते हैं। सब दुःखों से मुक्ति याने काम-क्रोध से मुक्ति, ऐसा वे कहते हैं। यह तत्त्वज्ञान उस समय जँचता है, क्योंकि लोग बहुत दुःखी रहते हैं।

इसलिए बुद्ध भगवान् के ऐसे तत्त्वज्ञान से मालूम होता है कि उस समय समाज दुःखी था और वह स्वाभाविक भी था। बड़े-बड़े जंगल पड़े थे, जंगली जानवरों से मुकाबला नहीं होता था। विज्ञान की प्रगति नहीं थी, सृष्टि पर विजय पाना मालूम नहीं था। किसीका दाँत दुखता हो, तो उसे उखाड़ने की कला मालूम नहीं थी। किसीके पेट में दर्द हो, तो ऑपरेशन करना मालूम नहीं था। ढोरों के मुवाफिक मनुष्य को भी फाड़ते थे, लोग आज के जैसा ऑपरेशन करना नहीं जानते थे। जिस जमाने में ऐसी सब हालत थी, विज्ञान का थोड़ा-सा आरम्भ ही हुआ था, उस जमाने में मनुष्य-जीवन सुखी था, यह मानना ही गलत है। फिर भी बड़े-बड़े महल बने, बड़े-बड़े शहर बने, राजा-महाराजा निर्माण हुए, यह सब कैसे हुआ ? देहातों को लूटकर ही हुआ।

बुद्ध भगवान् की दुःख-मुक्ति की खोज

बुद्ध भगवान् के पिताजी ने इसकी फिक्र रखी कि अपने बच्चे को दुःख का दर्शन न हो; क्योंकि अगर बच्चे को खुली दुनिया में सैर करने देते, तो वह उस लूट में शामिल न होता। इसीलिए उन्होंने उसके लिए जिधर देखो, उधर आराम, बगीचे और सुख निर्माण किया। ऐसी सृष्टि में उसे रखा, फिर भी उसने एक दफा घूमते समय दुःख का दर्शन कर ही लिया। वह बुद्धिमान् था, इसलिए उसने सोचा कि बावजूद इसके कि मैं राजपुत्र हूँ और मुझे दुःख से दूर रखा है, इतना दुःख दिखाई देता है, तो दुनिया में कितना दुःख होगा। इसलिए यह सारा मामला बनावटी है। ये जो सुख दीखते हैं, वे दुनिया को

लूटकर पैदा किये गये हैं। इसीलिए उन्होंने घर छोड़ा और तपस्या की। फिर उन्हें दर्शन हुआ कि वासना बढ़ाने से दुःख होता है। चन्द लोग अपनी वासनाएँ इतनी बढ़ाते हैं कि उनके लिए उन्हें दूसरों को लूटना पड़ता है। आखिर मनुष्य-देह के साथ कुछ वासनाएँ तो जरूरी ही हैं, परन्तु उन्हें जब्त में रखो। यह समझो कि हमारी जैसी दूसरों की भी वासनाएँ हैं। इसलिए वासनाओं को महदूद रखो। यह रास्ता बुद्ध भगवान् ने बताया और उस जमाने के सुखी लोगों को यह शिक्षा दी।

उन्हें पहला शिष्य मिला, उनके पिताजी। इस तरह उन्होंने दुःख-निवारण का काम राजमहल से शुरू किया। उन्होंने लोगों को समझाया कि तुम दूसरों को दुःखी बनाकर सुखी नहीं हो सकते। आँख को दुःखी बनाकर पाँव सुखी नहीं हो सकता। सब एक ही शरीर के अवयव हैं। एक के दुःख से दूसरा दुःखी होता है, क्योंकि सबका दुःख जुड़ा हुआ है। उन्हें कुछ लोग ऐसे मिल गये, जिन्हें उन्होंने इन्सानियत का पाठ पढ़ाया। इसका मतलब यह है कि उस जमाने में लोग आज से सुखी थे, ऐसा मानने की जरूरत नहीं। आज जिस तरह लूट चलती है, वैसे ही उस जमाने में भी चलती थी। केवल उस लूट के तरीके भिन्न थे। उससे मुक्त होने का रास्ता बुद्ध भगवान् ने बताया, यह बड़ी भारी चीज है। दुनिया उसे हमेशा याद रखेगी।

बुद्ध भगवान् का महान् कार्य

आज बुद्ध-धर्म एक धर्म के रूप में हिन्दुस्तान में प्रचलित नहीं है, परन्तु हरएक हिन्दू धर्म-कार्य करते समय कहता है कि 'बौद्धावतारे' याने आज भी बुद्ध का अवतार चल रहा है। मुझे याद आता है कि बुद्ध भगवान् ने यति-संघ और भिक्षु-संघ निर्माण किये थे। 'यति' का मतलब है, संयम करनेवाला और 'भिक्षु' का मतलब है, जो दुनिया की निरंतर सेवा करता है और दुनिया जो खिलाती है, वही खाता है। समाज चाहे कुछ भी खिलाये, वह काम करता जाता है। उन्होंने इस तरह के व्रत लेनेवाले हजारों के तादाद में निर्माण किये, जब कि उस जमाने में आमदरफ्त के साधन नहीं थे। वे भिक्षु गाँव-गाँव घूमे और उन्होंने लोगों को धर्म की दीक्षा दी।

बुद्ध भगवान् की एक कहानी है : एक दफा एक शिष्य एक भाई को भगवान् के पास ले आया और उनसे कहा : इसे दीक्षा दीजिये। भगवान् ने उससे पूछा : क्या तुम्हारा आज खाना-पीना हुआ है? जब उसने बताया कि मैंने दो दिन से कुछ खाया नहीं, तो भगवान् ने अपने शिष्य से कहा : इसे पहले खाना खिलाओ। इससे बढ़कर इसे देने के लिए मेरे पास दूसरा कोई उपदेश नहीं है। यही है बुद्ध-धर्म। इसीके प्रचार से हम जो उस समय जानवर थे, इन्सान बन गये। यही किस्सा अरबिस्तान में हुआ, जहाँ 'रहीम' और 'रहमान' का नाम लेकर एक फकीर पैदा हुआ और उसने वहाँ के लोगों को इन्सान बनाया। यही किस्सा फिलस्तीन में हुआ, जहाँ ईश्वर के दूत ने बताया कि प्रेम ही ईश्वर का रूप है। ईश्वर क्या मूर्ति या चित्र है? वह तो हमारे ध्यान के लिए एक संकेत बनाया गया है, पर ईश्वर का असली रूप प्रेम है।

तो, मैं कह रहा था कि बुद्ध भगवान् ने चाहा कि भिक्षु जनता के सबसे छोटे और दुःखी लोगों के लिए अपना सर्वस्व छोड़ें। भिक्षुओं को सबको सुखी बनाने के लिए त्याग करना और गाँव-गाँव घूमना चाहिए। जब मैं भूदान-यज्ञ के बारे में सोचता हूँ, तो उन भिक्षुओं का स्मरण हो आता है। वे कैसे घूमते होंगे, इसका मुझे स्मरण हो आता है। एक कहानी है : एक दिन आनन्द ने एक बहन को भगवान् के पास लाकर कहा कि अब तक आप पुरुषों को ही दीक्षा देते थे, लेकिन अब इस बहन को भी दीजिये। तब उन्होंने उसे भी दीक्षा दी। फिर स्त्रियों को दीक्षा देना आरम्भ हुआ और हिन्दुस्तान में हजारों स्त्रियाँ ब्राह्मणी और संन्यासिनी बनकर घूमती रहीं। जब मैं इसे याद करता हूँ, तो मुझे गौरव महसूस होता है कि मैं ऐसे देश में पैदा हुआ हूँ। इतनी महान् विरासत और किसे मिली होगी?

भिक्षु की वृत्ति चाहिए

अभी जो यज्ञ शुरू हुआ है, उसके लिए हमें सर्वस्व छोड़नेवाले यति और भिक्षु चाहिए। फिर भी जैसा कि मैंने चारिडल में कहा था, मैं संघ नहीं बनाऊँगा, बल्कि एक वृत्ति निर्माण करूँगा। वृत्ति निर्मित होने पर वे लोग अपने जीवन

में परिवर्तन करेंगे। जैसे दीपक से दीपक लगता है, वैसे ही एक-एक व्यक्ति के जरिये दूसरे व्यक्तियों के जीवन में परिवर्तन होगा। विचार-प्रचार के लिए संघ बनाने पर तो संकुचितता आ जाती है, विचार को खुला या मुक्त छोड़ना ही जरूरी है। एक बार एक भाई ने मुझसे पूछा कि हम भूदान का काम करना चाहते हैं, परन्तु हमारा घर है और घर में खेती का काम है। इसलिए उस काम के लिए भी कुछ समय देना पड़ेगा। मैंने उससे पूछा कि अगर आप जेल में होते, तो क्या करते? उसने कहा : जेल में होता, तो फिर घर-बार की चिन्ता छोड़नी ही पड़ती। मैंने कहा : जेल में होते, तो जो करते, वही अब करो। घर का काम जैसा चल रहा है, वैसा चलने दो। आखिर वहाँ से एक दिन उठना ही है। फिर जब जाओगे, तो घर का क्या होगा? मैंने ऐसे भी बेदरकार और दगाबाज लोग देखे हैं, जो बीबी और चार-पाँच बच्चों को छोड़ बिना नोटिस के एक क्षण में चले जाते हैं। इसलिए उसकी चिन्ता न करनी चाहिए।

भिक्षु और यति घर तोड़कर जाते थे। इस तरह तोड़ने की शक्ति जब तक हममें नहीं आती, तब तक काम नहीं होगा। जब तक मनुष्य सोचेगा कि पुराने दस-पाँच कामों के साथ एक यह भी नया काम उठा लूँ, तो क्रान्ति नहीं हो सकती। समर्थ विचार जहाँ फैलाना होता है, वहाँ तोड़ने की ताकत चाहिए। इसीको 'संन्यास' कहते हैं। ऐसा फकीरी बाना लेकर, सब छोड़कर, नम्र बनकर काम करनेवाले कार्यकर्ता चाहिए। हमें पाँच करोड़ एकड़ जमीन का बँटवारा करना है, एक क्रान्ति करनी है, ऐसा हम कहते हैं। किन्तु किये बगैर कैसे काम होगा? लोगों के हृदय में परिवर्तन लाने का काम छोटा नहीं।

कुछ लोग सर्वस्व त्याग करें

कम्युनिस्ट लोग कहते हैं कि आपको कुछ लाख एकड़ जमीन मिली, तो उससे क्या हुआ? वे ठीक कहते हैं, थोड़ी जमीन हासिल करने से हमारा काम नहीं होगा। हमें तो हृदय-परिवर्तन करके जमीन प्राप्त करनी है। हम चाहते हैं कि जिन्होंने जमीन दी, वे गरीब को अपने घर का लड़का मानें। मानव के मन में ऐसा परिवर्तन लाने की हिम्मत होनी चाहिए। यह हिम्मत वे ही कर सकते हैं,

जो अपने मन में परिवर्तन लाते हैं, निरन्तर जाग्रत रहते और आत्मबुद्धि की सतत कोशिश करते हैं। कम्युनिस्ट यह भी कहते हैं कि 'सारे समाज का ढाँचा बदले बगैर काम नहीं होगा।' उनके कहने में कुछ सार जरूर है, पर मैं चाहता हूँ कि यह काम शान्ति और प्रेम से हो। जो ताकत शान्ति और प्रेम में है, वह अशान्ति और द्वेष में नहीं। अशान्ति और द्वेष से अगर कुछ काम बना भी, तो फौरन दुःख पैदा होता है। इसीलिए हम प्रेम का रास्ता लेना चाहते हैं।

यह काम आत्मशुद्धि और सर्वस्व त्याग के बगैर नहीं होगा। हम सारी दुनिया को सर्वस्व त्याग करने के लिए नहीं कहते। दुनिया से तो सिर्फ यही कहते हैं कि गरीब को घर में स्थान देकर छठे हिस्से का दान करो। आपके हृदय में गरीब के लिए भाव पैदा हो, यही हम चाहते हैं। इसीलिए पूरे प्रेम से और समझ-बूझकर दान देनेवाले लोग हमें चाहिए। लेकिन इसके लिए कुछ लोगों को सर्वस्व छोड़ना होगा। सबको परिमित और समान भोग देने के लिए कुछ लोगों को सर्वस्व त्याग करना होगा। लोगों को जब हम थोड़ा-सा त्याग सिखाना चाहते हैं, तो कुछ लोगों को असीम त्याग भी करना होगा। सूर्य जब तपता रहता है, तभी हमारे शरीर में ९७ डिग्री उष्णता रहती है। अगर वही ९७ हो जाय, तो हमारी क्या हालत होगी? अगर हम चाहते हैं कि लोगों का जीवन प्रेममय हो, तो हमें अपना जीवन पूरा प्रेममय बनाना होगा।

राँची
२-७-'५३

बनी-बनायी संस्था से क्रांति नहीं होती

हमें ध्यान में रखना चाहिए कि क्रांति कभी बनी-बनायी संस्था से नहीं होती। कोई कितनी भी बड़ी संस्था हो, फिर भी वह एक पार्टी है, नेशन (राष्ट्र) नहीं। चाहे कुछ भी हो, वह पार्टी लाइन पर चलेगी। लेकिन क्रान्तियाँ पार्टी-लाइन से नहीं होतीं। क्रांति के अग्रदूत हमेशा व्यक्ति होते हैं। क्रांति का झंडा व्यक्ति से ही उठाया जाता है। वे आम समाज में जाते, उन्हें संदेश सुनाते और समाज का कोई कार्यक्रम उठा लेते हैं। जिन्हें क्रान्ति का दर्शन होता है, वे सीधे जनता में जाकर काम करते हैं। जो राजनैतिक और संकुचित दायरे में सोचते हैं, वे Strength (शक्ति) और Power (प्रभुत्व) का भेद नहीं पहचानते। Power को ही Strength समझते हैं।

यह काम मेरे लिए है !

हमें सारे समाज में परिवर्तन करना है, तो इसमें वीरों की अहिंसा चाहिए। इसीलिए कोई हमारा विरोध करे, तो उससे हमेशा प्रेम से बोलना चाहिए। इस क्रान्ति के लिए सबसे बड़ा तेज औजार है, निरंतर क्षमाशीलता। हमारी वृत्ति मेरु-पर्वत के जैसी स्थिर होनी चाहिए और विचार अधिकाधिक शुद्ध होना चाहिए। मैंने तो अपने मन में समझ लिया था कि यह काम मेरे लिए है। और किसीके लिए है या नहीं, यह वे ही जानें। किंतु यह काम मेरे लिए है और मैं इसीमें खतम हो जाऊँगा।

एवरेस्ट और ऊँचे व्यक्ति

हम लोगों में एक बहुत बड़ी खामी है। हिन्दुस्तान में बड़े बड़े, ऊँचे लोग इतने हैं कि दुनिया के किसी भी देश के ऊँचे लोगों के मुकाबले में वे टिक सकते या उनसे भी ऊँचे साबित हो सकते हैं। फिर भी हिन्दुस्तान की आम जनता का स्तर (level) दूसरे देशों की आम जनता के स्तर से कम है, यह एक बड़ी विचित्र बात है। इसका कारण यही है कि यहाँ जो सत्पुरुष हुए, उन्होंने ध्यान,

योग आदि की साधना बहुत की है। उन्होंने दुनिया से अपने को अलग रखने की हिम्मत की, परंतु उससे एकरूप होने की हिम्मत नहीं की। जहाँ कहीं गड़बड़ होती या बुराई दिखाई देती है, वहाँ से दूर ही भागने की उनकी प्रवृत्ति रही है। ऐसे स्थान में तो हमारी ज्यादा जरूरत है, ऐसा उन्होंने कभी नहीं सोचा। एकान्त में जाने में उन्हें काफी तकलीफ उठानी पड़ी। किन्तु वह व्यक्तिगत तकलीफ उन्होंने सहन की, पर सामाजिक तकलीफ उठाने की कोशिश नहीं की। यहाँ के कुछ ऊँचे लोग 'एवरेस्ट' जैसे अगम्य रहे हैं। लेकिन अब लोग एवरेस्ट पर भी पहुँचे हैं, तो हम उम्मीद करते हैं कि साधारण लोग भी उन ऊँचे सज्जनों के पास पहुँच सकेंगे। गांधीजी ने रास्ता खोल दिया है। अब सज्जनों को साधारण लोगों में दिलचस्पी निर्माण होगी। गांधीजी के जमाने में ही यह हुआ है। उसी जमाने में हम एवरेस्ट तक पहुँचे।

राँची
२-७-'५३

आज के युग में आत्मौपम्य : २२ :

इस दुनिया में विविधता है और विषमता भी। किसी एक का चेहरा दूसरे के चेहरे के साथ नहीं मिलता। हरएक का चेहरा दूसरे के चेहरे से अलग होता है। यहाँ तक कि एक पेड़ पर जो पत्ते होते हैं, उनमें भी अपनी-अपनी विशेषता रहती है। इस तरह सारी सृष्टि में विविधता, विचित्रता और विभिन्नता है।

आन्तरिक एकता ही

किन्तु यह विभिन्नता बाहर की है। अन्दर से तो हम एकता ही महसूस करते हैं। प्यास और भूख की भावना सबमें समान रूप से पायी जाती है। प्रेम को भी सभी महसूस करते हैं। इस तरह कुछ बुनियादी भावनाएँ सबमें समान रूप से वास करती हैं। इसीलिए शास्त्रकारों ने हमें समझाया है कि हम अपने पर से दूसरों का खयाल करें। हमें भूख लगती है और उस समय खाना मिलने से खुशी होती है, तो दूसरों को खिलाकर खाना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हमें भूख

नहीं लगती, तो दूसरों को खिलाकर खाने का धर्म हमें नहीं मिल पाता। किन्तु चूँकि हमें भूख और प्यास है, इसलिए दूसरों की भी भूख और प्यास का खयाल करना चाहिए। सब धर्मों ने यह सीधी-सादी-सी शिक्षा दी है कि आत्मौपम्य भाव से बर्ताव करो।

हनुमान् रावण के सामने खड़ा होकर कह रहा था कि तुम भी गृहस्थ हो और रामजी भी गृहस्थ। तुम्हारे भी पत्नियाँ हैं और रामजी के भी पत्नी है। इसलिए तुम्हें भी उन भावनाओं का अनुभव है, जिनका रामजी को है। खयाल करो कि अगर तुम्हारी पत्नी का कोई हरण करता है, तो तुम्हें कितना दुःख होगा? यही सोचकर सीताजी को छोड़ दो, तो रामजी इतने क्षमाशील हैं कि वे तुम्हें क्षमा कर देंगे। इस तरह हनुमान् ने रावण को आत्मौपम्य का बोध दिया।

धर्म की बुनियाद आत्मौपम्य

आत्मौपम्य से बर्ताव करो, यही तो धर्म की बुनियादी बात है। आज कल स्पर्धा की बात चलती है। भगवान् ने जिसे ज्यादा बुद्धि, शक्ति या संपत्ति दी है, उन ताकतों का उपयोग वह व्यक्ति दूसरों को दबाने में करता है। लेकिन जब तक यह चलता रहेगा, तब तक मनुष्य-समाज में मानवता नहीं रहेगी और वह आसुरी समाज बन जायगा। आज विज्ञान के कारण मानव के हाथ में कई प्रकार की शक्तियाँ और सिद्धियाँ आयी हैं। मानव अगर उनका उपयोग आत्मौपम्य से करेगा, तो दुनिया का स्वर्ग बन जायगा। एक जमाना था, जब कि कुदरत के साथ लड़ने में मनुष्य की बहुत-सी ताकत खर्च होती थी; क्योंकि उसे कुदरत के कानूनों का ज्ञान नहीं था। आज भी पूरा ज्ञान तो नहीं है, फिर भी कुछ ज्ञान है, इसलिए कुदरत के साथ लड़ने में उतनी शक्ति खर्च नहीं करनी पड़ती, जितनी उस समय खर्च करनी पड़ती थी। इसलिए आज हमारे हाथ में ऐसी शक्ति आयी है, जिससे दुनिया पर स्वर्ग ला सकते हैं। विज्ञान के साथ हिंसा को जोड़ दिया, तो दुनिया का संहार होगा।

मैं विज्ञान की बहुत प्रगति चाहता हूँ, क्योंकि मैं मानता हूँ कि विज्ञान के कारण मनुष्य का जीवन सफल बन सकता है, समृद्ध बन सकता है। किन्तु उसके

साथ और एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वैद्य बीमार को दवा बताता है और उसके साथ पथ्य भी। वैद्य कहता है कि यह दवा कारगर और वीर्यवान् है, परन्तु उसके साथ इस पथ्य का पालन जरूरी है। अगर पथ्य का पालन नहीं करते हो, तो यह दवा जितनी कारगर और वीर्यवान् है, उतना ही शरीर का नाश करेगी। इसी तरह विज्ञान के लिए अहिंसा का पथ्य जरूरी है। पहले के जमाने में, जब कि मनुष्य अपने मसलों को आम तौर पर हिंसा से हल करता था, हिंसा उतनी बढ़ी नहीं थी। इसलिए वह हिंसा उतना नाश नहीं कर सकती थी। बिहार में प्राचीन काल में भीम और जरासंध की कुश्ती हुई थी। उस द्वंद्व-युद्ध में जरासंध खतम हुआ और इसी तरह फैसला हुआ। किन्तु उससे दूसरे लोगों को तकलीफ नहीं हुई, क्योंकि उस समय हिंसा सीमित थी। इसलिए वह हिंसा ज्यादा नाश नहीं कर सकती थी। किंतु आज द्वंद्व-युद्ध का जमाना नहीं रहा है। आज हिंसा से कोई मसला हल करने की कोशिश करो, तो दूसरे पचास मसले खड़े हो जाते हैं। आज तो भयानक परिमाण में लड़ाई होती है। अतः हिंसा से आज मसला हल करने का सोचा कि दूसरा मसला खड़ा हो जाता है। इसलिए विज्ञान के साथ अहिंसा का पथ्य जरूरी है।

अगर हम यह पथ्य नहीं चाहते, तो हमें दवा भी नहीं लेनी चाहिए। फिर तो विज्ञान की प्रगति रोकनी पड़ेगी। किंतु कोई भी विज्ञान की प्रगति रोकना नहीं चाहता। चाहेगा तो भी रोक न सकेगा, ऐसी आज की हालत है। हम तो चाहते हैं कि विज्ञान बढ़े, पर उसके लिए बहुत जरूरी है कि मानव के मसले मानवता से ही हल किये जायँ। इसलिए हिंसा को छोड़ना होगा और सारे मसले आत्मौपम्य भाव ही से हल करने होंगे।

रामगढ़
१३-७-'५२

देश के रोग का मूलशोधन और उपाय

आज सुबह यहाँ गोवध-बंदी के लिए अनशन करनेवाले वीरजी के सामने मैंने अपनी बातें रखीं। उन्होंने मेरा विचार कबूल किया और अनशन तोड़ा। उनके सामने मैंने जो बातें कहीं, उनका थोड़ा सार अभी मैं आपके सामने रखूँगा, क्योंकि उसमें एक धर्म-विचार है।

अनशन कब किया जाय?

मैंने कहा कि कोई भी व्यक्ति अपने विचार के लिए अपने को खपा रहा है और शायद उसकी देह गिरेगी, इस तरह की कोई भावना रखकर मैं कुछ नहीं कह रहा हूँ। आखिर शरीर तो गिरनेवाला ही है, इसलिए किसीकी प्राण-रक्षा के खयाल से मैं नहीं बोलता और न सरकार से ही कहता हूँ कि उसके प्राण बचाओ। मैं एक विचार समझाता हूँ। अगर आप इसे कबूल करते हों, तो अनशन तोड़ो और नहीं कबूल करते, तो मत तोड़ो। मैंने आगे कहा कि हमारे इतने बड़े देश में—जहाँ अनेक प्रान्त, अनेक भाषाएँ, अनेक जातियाँ, अनेक पन्थ और अनेक धर्म हैं, जहाँ असंख्य मसले मौजूद हैं और जनता की तरह-तरह की कठिनाइयाँ मौजूद हैं—एक-एक मसले के लिए एक-एक व्यक्ति सरकार के खिलाफ अनशन करे, तो बड़ा भारी अनवस्था का प्रसंग निर्माण होगा। अगर सरकार इस तरह के एक-एक अनशन के आगे झुकती जायगी, तो लोगों द्वारा उस पर डाली गयी जिम्मेवारी की दृष्टि से वह अयोग्य सिद्ध होगी और अगर झुकती नहीं है, तो एक मनुष्य के प्राण-संकट की बात आती है, दया-बुद्धि का खयाल आता है और नाजुक हालत पैदा होती है। अभी बंगाल में एक भाई बिहार का कुछ हिस्सा बंगाल में जोड़ दिया जाय, इसलिए अनशन कर रहे थे। खुशी की बात है कि उन्होंने अपना अनशन त्याग दिया। इसी तरह बंगाल के हिस्से बिहार में जोड़ दिये जायँ, इसलिए कोई बिहारी भाई अनशन

कर सकता है। किन्तु एक-एक मसले के लिए किसीको तीव्रता मालूम हो और वह सरकार के खिलाफ उपवास करे, तो इसमें अहिंसा नहीं होगी।

इसका मतलब यह नहीं है कि सत्याग्रही को अनशन का मौका नहीं मिलेगा या उसे अनशन का हक नहीं है। हम मानते हैं कि अनशन सत्याग्रही का उत्तम शस्त्र है। हम सत्याग्रही को निःशस्त्र बनाना नहीं चाहते, परन्तु उस शस्त्र की सफलता इस पर निर्भर है कि उसका ठीक उपयोग हो। नहीं तो वह बेकार साबित होगा। जहाँ सरकार गुमराह हो और जनता कुछ भी न सुने, वह बहक गयी हो, वहाँ अत्यन्त व्याकुल होकर महापुरुष परमेश्वर की प्रार्थना के लिए उपवास कर सकता है। किन्तु जहाँ सरकार किसी विषय पर सोच रही हो और बहस की तथा जनता के आन्दोलन चलाने के लिए जनमत तैयार करने की गुंजाइश हो, वहाँ उपवास नहीं करना चाहिए। जहाँ जनता और सरकार, दोनों गुमराह हों, और जैसा कि व्यास भगवान् ने आखिर में कहा था 'न च कश्चित् शृणोति मे'—मेरी कोई सुनता नहीं, ऐसी हालत हो, वहाँ वह महापुरुष—जो अपने हृदय में शुद्धि पाता हो और जिसने दुनिया की बहुत सेवा की हो—उपवास कर सकता है। किन्तु ऐसे प्रसंग कम ही आते हैं। साधारण हालत में उपवास करना गलत है।

सत्याग्रह धमकी नहीं, प्रेम का प्रकर्ष

मेरा यह भी कहना नहीं कि जहाँ जनता की शक्ति प्रकट है, जनता के हाथ में सत्ता आ गयी है, वहाँ सत्याग्रह के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं। सत्याग्रह तो कुटुम्ब में भी हो सकता है। इसलिए अपना राज्य होने से सत्याग्रह नहीं करना चाहिए, ऐसी बात नहीं। सत्याग्रह कोई धमकी नहीं, वह तो प्रेम की पराकाष्ठा है। वह एक तीव्र उपाय है। सामनेवाले को अपनी आत्मा में स्थान देना है, इसी वृत्ति से सत्याग्रह हो सकता है। सत्याग्रह करने का हक तो माता का है। माँ-बाप, बच्चों के खिलाफ या बच्चे माँ-बाप के खिलाफ सत्याग्रह कर सकते हैं—जैसे प्रह्लाद ने अपने पिता के सामने अत्यन्त निर्वैर भाव से सत्याग्रह किया था। इस तरह अपने राज्य में भी सत्याग्रह का मौका आ सकता है। अन्तिम सत्याग्रह 'अनशन' है। जहाँ प्रेम का प्रकर्ष हो, वहीं पर वह हो सकता है। जब दूसरों को मारा-पीटा नहीं जा सकता, तब उपवास किया जाय, ऐसी बात नहीं।

अभी भाषावार प्रान्त-रचना के लिए उपवास हुए। उसके साथ-साथ हिंसा भी चली। उपवास और हिंसा, दोनों मिलाकर एक मसला हल करने की कोशिश हुई। इस तरह का उपवास प्रेम-प्रकर्ष का चिह्न नहीं। वह तो एक दबाव डालने का तरीका है। इसलिए उसकी गिनती एक किस्म की हिंसा में ही हो सकती है। उससे तो शस्त्र से भी ज्यादा हिंसा हो सकती है।' अतः विवेक रखकर ही उपवास के प्रयोग किये जाने चाहिए। हिन्दुस्तान में जहाँ-जहाँ मेरी यह आवाज पहुँचेगी, वहाँ-वहाँ मैं चाहता हूँ कि अनशन करने का मौका आने पर मेरी सलाह ली जाय। गीता ने भक्तों का यह लक्षण बताया है कि वे एक-दूसरे से सलाह करके अपने काम करते हैं, 'बोधयन्तः परस्परम्।' इस तरह सलाह करने से वे कुछ भी न खोयेंगे, बल्कि बहुत पायेंगे। अगर सचाई हो, तो मुझ जैसा मनुष्य अनशन की बात नहीं टालेगा। इसलिए मैं चाहता हूँ कि जो कोई अनशन करना चाहता है, वह पहले मुझसे सलाह करे।

प्लॉनिंग में मूलभूत गलती

हम अखबार में रोज पढ़ते हैं कि लोग उठते हैं और ट्रेन रोकते हैं और फिर पुलिस द्वारा पीटे जाते हैं। आखिर यह सब क्यों होता है? उधर मद्रास में राजाजी ने तालीम में परिवर्तन करना चाहा। उन्होंने एक नयी योजना बनायी, जिसके अनुसार विद्यार्थी तीन घंटे पढ़ाई करेगा और बाकी का समय बढ़ई, बुनकर, किसान, इनमें से किसीके पास उद्योग सीखने में बितायेगा, ताकि उसका दिल और दिमाग, दोनों विकसित हो सके। लेकिन कुछ लोगों को यह विचार पसन्द नहीं आया। वे कहने लगे, "आप शहरवालों की बुद्धि तो बढ़ने देते हैं और हमें ही श्रम करने के लिए कहते हैं। हमें कहते हैं कि आटा पीसते और हल जोतते रहो।" इस तरह कुछ लोगों ने इसका विरोध किया। उन्होंने इसके विरोध का तरीका निकाला, ट्रेन रोको, गड़बड़ करो। उधर बङ्गाल में भी यही बात हो रही है। इसलिए हमें सोचना चाहिए कि यह जो हिंसा की शक्ति काम कर रही है, इसका मूल कारण क्या है?

स्पष्ट है कि हमें स्वराज्य तो मिल गया, लेकिन सारे मसले अभी तक वैसे

ही पड़े हैं। पाँच साल के लिए सरकार ने एक योजना बनायी और उसमें से आधा समय बीत जाने के बाद अब ध्यान में आता है कि बेकारी बढ़ रही है। इसका मतलब यही है कि हमारा दिमाग सुस्त है। वह ठीक ढंग से नहीं सोच रहा है। मैं मानता हूँ कि कोई भी योजना कायमी तौर पर नहीं बनती, वह लचीली होती है। किन्तु हमने एक योजना बनाकर दिल्ली के लिए रास्ता बनाया और उस रास्ते से कुछ चलने पर बीच में महसूस हुआ कि हम कलकत्ते की ओर जा रहे हैं, दिल्ली की तरफ नहीं, तो कहीं चिन्तन में गड़बड़ जरूर है। चाहे हमारा वेग कितना ही कम क्यों न हो, हमें कुछ तो दिल्ली के करीब जरूर जाना चाहिए था। उसमें कुछ थोड़ा-सा साधारण परिवर्तन करने से भी लाभ न होगा, क्योंकि मूल में ही गलती हुई है। आज के योजना बनानेवाले बहुत बड़े देश-सेवक हैं। उनमें कई मेरे मित्र भी हैं। उन्होंने देश के लिए अपना शरीर खपाया और आज भी खपा रहे हैं। वे देश-सेवा ही करना चाहते हैं। किन्तु जहाँ देश का मसला हल करना है, वहाँ बुनियादी तौर पर न सोचा जाय, तो क्या फल होगा? मैंने दिल्ली में प्लॉनिंग कमीशन के सामने बड़े प्रेम से कहा कि आप इस देश में बेकारी का मसला हल करने की जिम्मेदारी नहीं उठाते, तो आपका प्लॉनिंग 'नेशनल प्लॉनिंग' (राष्ट्रीय नियोजन) नहीं, बल्कि 'पार्शियल प्लॉनिंग' (आंशिक नियोजन) होगा। क्योंकि 'नेशनल प्लॉनिंग' का यह गृहीत तत्त्व है कि इससे हम देश के सब लोगों को काम दे सकते हैं। यह कोई सिद्ध करने की बात नहीं है। यूक्लिड के गृहीत तत्त्व सिद्ध नहीं करने पड़ते। इसलिए जिस किसीने यह मान लिया कि देश के सब लोगों को हम काम नहीं दे सकते, तो उसका मतलब हुआ, उसने नेशनल प्लॉनिंग करने में अपनी नालायकी साबित कर दी। कोई भी बाप कितना ही गरीब क्यों न हो, यह नहीं कहता कि मैं अपने घर के चन्द लोगों को ही खिला सकता हूँ और दूसरों को नहीं खिला सकता। हरएक पिता यही कहता है कि इस कुटुम्ब में जो कमाई होगी, वह कुटुम्ब के सभी व्यक्तियों में बँटेगी।

इसी दृष्टि से मैंने यह बात देश के सामने रखी। मैंने कहा कि अक्सर हर-एक घर में पाँच भाई होते हैं। इसलिए छठा भाई दरिद्रनारायण का प्रतिनिधि

बनकर मैं आया हूँ, ऐसा मानो। वह अव्यक्त है, परन्तु नारायण अव्यक्त ही होता है। इसलिए उस पर श्रद्धा रखकर उसके लिए छठा हिस्सा दो। मैं मानता हूँ कि हमारी राष्ट्रीय सरकार भी सब लोगों से ऐसी ही माँग कर सकती है। उसे वैसी माँग करने का हक है और उसे सहयोग देना लोगों का कर्तव्य भी है। अगर ऐसा हो जाय, तो देश में कोई भी भूखा नहीं रहेगा। सबको तकली देने से सबको काम मिलता है, तो हम तकली दें। चरखा देने से काम मिले, तो चरखा दें। यंत्र का ही आग्रह न रखना चाहिए। 'आंशिक बेकारी या यंत्र', ऐसा सवाल आपके सामने हो, तो हम यंत्र ही इस्तेमाल करेंगे, ऐसा कहना और यंत्रों की आसक्ति रखना ठीक नहीं है। मैं यंत्रों का विरोधी नहीं हूँ।

यंत्रसम्बन्धी विवेक

इसका यह अर्थ नहीं कि मैं यंत्रों का विरोधी हूँ। यंत्र तीन प्रकार के होते हैं : (१) समयसाधक, (२) संहारक और (३) उत्पादक। इनमें समय-साधक यंत्रों का मैं विरोध नहीं करता। ट्रेन, हवाई जहाज जैसे यंत्रों से उत्पादन नहीं बढ़ता, बल्कि समय बचता है। दस हजार घोड़ों से हवाई जहाज की बराबरी नहीं हो सकती। इसलिए ऐसे यंत्रों को हम चाहते हैं। किन्तु तोप, बंदूक, बम जैसे संहारक यंत्रों का अहिंसा में स्थान नहीं है। इसलिए ऐसे यंत्रों को हम नहीं चाहते।

तीसरे प्रकार के उत्पादक यंत्र दो प्रकार के होते हैं : (१) पूरक और (२) मारक यंत्र। जहाँ लोग अधिक हों, वहाँ यदि कोई यंत्र लोगों को बेकार बनाता है, तो वह मारक यंत्र है। पर जहाँ मनुष्य-शक्ति कम और काम ज्यादा हो, वहाँ वही यंत्र मारक नहीं, पूरक साबित होगा। एक देश में एक यंत्र पूरक है, तो वही दूसरे देश में मारक। हिन्दुस्तान में बड़े-बड़े ट्रैक्टर जैसे यंत्र लाने से लाजिमी तौर पर बेकारी बढ़ेगी। पर अमेरिका और रूस जैसे देशों में वे ही यंत्र मारक नहीं, उत्पादक साबित होंगे। इसी तरह एक ही यंत्र एक काल में मारक बन जाता है, तो दूसरे काल में पूरक। इस तरह देश, काल और परिस्थिति के अनुसार कोई भी यंत्र पूरक या मारक साबित होता है। इसलिए हम किसी यंत्र का

'यंत्र' के नाते न स्नेह रखना चाहते हैं और न द्वेष। किसी यंत्र की उपयोगिता देखकर ही हम उसका उपयोग करेंगे। किन्तु अगर हम यंत्र की आसक्ति रखते और कहते हैं कि मिल की बराबरी करनेवाले 'एफीशिएण्ट' (सक्षम) औजार ग्रामोद्योग के नहीं हैं, इसलिए हम उनका उपयोग नहीं करेंगे, तो कहना होगा कि ऐसा कहनेवाला देश के लिए जैसा चिंतन करना चाहिए, वैसा चिंतन नहीं करता। अगर हम कोई बात केवल पश्चिम में चल पड़ने के कारण उसके चक्कर में और भुलावे में आकर करते हैं—बावजूद इसके कि गांधीजी ने हमें आगाह कर दिया था—तो अवश्य गलती करते हैं।

मैंने यह भी देखा कि हम जहाँ समता की बात करते हैं, वहाँ सामनेवाला उसके विरोध में विषमता की बात तो नहीं कर पाता, पर क्षमता की बात जरूर करता है। वह कहता है कि आप समतावादी हैं, तो हम क्षमतावादी। इस तरह वह एक गुण के विरुद्ध दूसरा गुण खड़ा करता है, जिससे लड़ाई चल सकती है। आजकल पूँजीवादियों ने इसी क्षमता का नारा लगाया है। मैं भी क्षमता चाहता हूँ, पर यह नहीं चाहता कि कुटुम्ब में कुछ लोगों को खाना मिले और कुछ को नहीं। मैं चाहता हूँ कि सबको खाना मिले। अगर आज की हालत में ग्रामोद्योग के औजार सबको खाना देने में समर्थ हैं, तो उनका उपयोग करना चाहिए। चंद लोगों के लिए बाकी लोगों को बेकार रखकर हम कभी भी सक्षम बनने का दावा नहीं कर सकते। मुझे खुशी है कि अभी आगरा में कांग्रेस-कमेटी की बैठक में ग्रामोद्योग पर ध्यान दिया गया है।

आज के असंतोष का कारण, बेकारी

आज हिन्दुस्तान में सर्वत्र असंतोष व्याप्त है। किसीके दिल में समाधान नहीं है। असंतोष किसी-न-किसी कारण प्रकट होता है। कई मसले लेकर लोग हिंसा करने को प्रवृत्त होते हैं, क्योंकि उनके दिल में समाधान है और वह हिंसा के रूप में फूट निकलता है। मैं जब शरणार्थियों में काम कर रहा था, तब मैंने देखा कि वहाँ के मारवाड़ी व्यापारी सिंधी व्यापारियों का विरोध करते थे और वहाँ मारवाड़ी-सिंधी का वाद चला था। मैंने कहा कि यह वाद तो निकम्मी बात

है। यह एक निमित्त बना है, कभी मारवाड़ी विरुद्ध सिंधी, कभी तेलुगु विरुद्ध कन्नड़, कभी बिहारी विरुद्ध बंगाली और कभी हिन्दू विरुद्ध मुसलमान, ये जो सारे वाद चलते हैं, उनमें मूल बात यह है कि हिन्दुस्तान में आज उत्पादन अत्यन्त कम है और बेकारी ज्यादा है। इसी कारण यह असंतोष निर्माण हुआ है। वह किसी-न-किसी तरह फूट निकलता है। इसके लिए कुछ किया जाना चाहिए। असंतोष मिटाने की कोशिश होनी चाहिए।

पहले भुखिया

गांधीजी की यह खूबी थी कि वे पहले जिसे मदद की सबसे अधिक जरूरत है, उसे मदद देते थे। अभी कवि 'दुखायल' ने मुझे सुनाया कि मदद देने का क्रम यह है कि पहले भुखिया, फिर दुखिया और बाद में सुखिया। किंतु आज तो इससे उल्टा क्रम चला है। गांधीजी हमेशा यही सोचते थे कि जिन्हें मदद की सबसे प्रथम आवश्यकता है, उन्हें मदद देने का तरीका ढूँढ़ा जाय। इसीमें से चरखा निकला है। यह उनकी अद्भुत प्रतिभा थी। वह काव्य-शक्ति थी। सिर्फ कुछ सतरें लिख डालने से कोई कवि नहीं बनता। यास्काचार्य ने कहा है, "कविः क्रान्तदर्शी"—जिसे क्रान्त दर्शन होता है, जिसे दूर का दर्शन होता है, जिसे सूक्ष्म दर्शन होता है, वह कवि है। इसी अर्थ में गांधीजी कवि थे। उन्होंने कई साल पहले से कह दिया था कि हिन्दुस्तान के लिए ग्रामोद्योग जरूरी है। उन्होंने नयी तालीम, राष्ट्रभाषा, जमीन का बँटवारा आदि के सम्बन्ध में कई साल पहले से कह रखा था। कितना उनका उपकार है, कितनी उनकी महान् बुद्धिमत्ता है, कितनी उनकी प्रतिभा है, कितनी उनकी वत्सलता है! इतना सब होने पर भी, उनसे इतना प्रकाश पाकर भी हम आज लड़खड़ाते हैं, तो हम कितने कम-बख्त हैं।

सरकार को सबका सहयोग हासिल होगा, तभी काम आगे बढ़ेगा। किन्तु जनता का सहयोग तो तब हासिल होता है, जब उसे यह महसूस होता है कि साक्षात् उसके लिए कुछ हो रहा है। 'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' में जनता का सहयोग इसीलिए नहीं मिल रहा है कि चिन्तन का ढंग ही ठीक नहीं है। ग्राम को आयात-

निर्यात पर रोक लगाने का हक होना चाहिए। गाँव में जो कच्चा माल पैदा होता है और जिसके पक्के माल की उसे जरूरत है, उसे गाँव में बाहर से ठूँसा जाय। जनता को विश्वास हो कि उसकी भलाई की बात हो रही है। सारांश, अगर हम देश में शान्ति चाहते हैं, तो जनता के हित का बुनियादी चिन्तन होना चाहिए।

हिंसा कदापि न हो

दूसरी बात है कि अगर हम देश में शांति चाहते हैं, तो हमारे हृदय से हिंसा का खयाल निकल जाना चाहिए। हिंसा से यह देश बरबाद होगा। यह देश पिछड़ा है, यहाँ वर्षों से लक्ष्मी की अकृपा रही है। अगर हम लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति की उपासना करना चाहते हैं, तो अज्ञान, भूख और बीमारी, इन तीन राक्षसों को हटाना चाहिए। इसके लिए चित्त में हिंसा के भाव न रखकर परस्पर सहयोग का भाव होना चाहिए। मैं जैसे आप लोगों को देख रहा हूँ, वैसे ही अपने सामने इस चीन को अत्यन्त स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ कि हिन्दुस्तान की विभिन्न राजनैतिक पार्टियाँ अगर आपस में सहयोग करना न सीखेंगी, तो देश की बरबादी हो जायगी।

चुनाव खेलो, लड़ो मत

मुझे बिहार में ही क्या प्रेरणा हुई कि मैं यहाँ का मसला हल करूँ। ऋषियों की आज्ञा है, "चरैवेति चरैवेति।"

> कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
> उत्तिष्ठन् त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्॥

इस श्रुति पर विश्वास रखकर मैंने चलना शुरू किया। मैं चाहता हूँ कि दिल जुड़ जायँ। लोग कहते हैं कि आप जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े कर रहे हैं, तो मैं कहता हूँ कि अरे, जहाँ दिल टूटे हैं, वहाँ जमीन की क्या सोचते हो? पहले दिल जुड़ने दो। अगर दिल जुड़ जाय, तो सारी दुनिया जुड़ जायगी। और जमीन के टुकड़े कहाँ हैं? मैं तो जहाँ देखता हूँ, वहाँ अनन्त आसमान, अखण्ड पृथ्वी और परमेश्वर की असीम कृपा ही देखता हूँ। आप "वन्दे मातरम्" कहते हैं और भाई-भाई आपस में झगड़ते हैं। जो "वन्दे मातरम्" के साथ "वन्दे भ्रातरम्" नहीं कहते, उन पर माता प्रसन्न नहीं होती, ऐसा रवीन्द्रनाथ ने कहा है। इसलिए मैं

आपसे कहता हूँ कि चुनाव खेलो, 'चुनाव लड़ना' मत कहो। 'चुनाव लड़ना' यह जो अंग्रेजी भाषा का प्रयोग है, वह हमें बरबाद कर देगा। हमारे ऋषियों ने कहा है कि 'दुनिया एक खेल है'। जैसे कुश्ती में जीतनेवाले को इनाम मिलता है, और लोग उसकी जयजयकार करते हैं और हारनेवाले की भी जयजयकार होती है, और उसे नारियल मिलता है, ऐसी दृष्टि रखकर चुनाव खेलो।

एक बार हमारे आश्रम में एक भाई आये, जो एक राजनैतिक नेता थे। मैंने उनसे कहा : आपके और मेरे विचार भिन्न हैं, फिर आप मेरे परम मित्र हैं। मैं आपके लिए जान दे सकता हूँ, क्योंकि आप पर मेरा बहुत प्रेम है। लेकिन मैं आपको वोट नहीं दे सकता, क्योंकि आपके विचार मुझे जँचते नहीं। आप और हम एक साथ काम करेंगे, एक ही आश्रम में रहेंगे, लेकिन जब तक आपके और मेरे विचार में फर्क है, तब तक मैं जनता से कहूँगा कि यह मेरा मित्र है, पर इसे वोट मत देना, क्योंकि इसका विचार गलत है। और आप भी जनता से कहेंगे कि विनोबा मेरा मित्र है, पर उसे वोट मत देना, क्योंकि उसके विचार गलत हैं। फिर प्रजा हम दोनों में से चाहे जिसे चुनेगी। उसके बाद जिन्हें वोट मिलेंगे, वे सरकार में जाकर जनता की सेवा करेंगे और जिन्हें वोट नहीं मिलेंगे, वे सीधे जनता में जाकर सेवा करेंगे। इस तरह दोनों जनता की सेवा करेंगे और दोनों एक-दूसरे से प्यार करेंगे। अगर ऐसा नहीं हुआ, तो पश्चिम से आयी हुई यह चुनाव-प्रणाली इस देश को खतम किये बगैर नहीं रहेगी, क्योंकि इस देश में पहले ही जाति, भाषा-भेद आदि के कितने ही भेद हैं।

शंकर और विष्णु जैसे सेवक

इसलिए चुनाव खेलते समय भी प्यार रखो। जनता चाहे जिसे चुने। जो जनता में जाकर सेवा करेंगे, वे शंकर भगवान् जैसे होने चाहिए, और जो सत्ता में जायँगे, वे विष्णु भगवान् जैसे सत्ता और सम्पत्ति में अनासक्त और अलिप्त रहें। जो सत्ता में जायँगे, वे राजा जनक जैसे होंगे और जो सत्ता में नहीं जायँगे, वे शुकदेव जैसे होंगे। राजा जनक वैभव और भोग, दोनों में अत्यन्त अनासक्त और विरक्त थे। लोग उनके बारे में कहते थे कि "जनको जनक इति वै जना

धावन्तीति"—यह जनक आ रहा है, मेरा बाप आ रहा है, ऐसा कहकर लोग उसके पास दौड़ जाते थे। उनके बारे में कहा जाता है कि वे सोते थे, तो पास में यज्ञ की अग्नि होती थी। अगर नींद में कहीं उनका पाँव उस पर पड़ा, तो भी वे न जागते थे। इतने वे अनासक्त और विरक्त थे और शुकदेव तो विरक्त थे ही। विष्णु भगवान् लक्ष्मी से अलिप्त रहते थे। लक्ष्मी उनके चरणों के पास पड़ी रहती, तो भी वे उसकी ओर ध्यान नहीं देते थे। इसलिए जिन्हें सत्ता में जाना हो, उन्हें जनक या विष्णु बनना चाहिए और जिन्हें सत्ता में न जाना हो, उन्हें शुकदेव या शंकर बनना चाहिए। आज देश के लिए यह जरूरी है कि कोई ऐसा कार्यक्रम बनाया जाय, जिसमें सबका सहयोग प्राप्त हो सके। भूदान-यज्ञ के पीछे अगर कोई चीज है, तो यही है कि वह एक ऐसा कुशल कार्यक्रम है, जो सबको एक साथ ला सकता है, और सबको एक-दूसरे से प्यार करने का मौका दे सकता है।

मैंने अभी दो मुख्य बातें बतायीं। एक तो यह कि जनता के दुःखों के निवारण का बुनियादी चिन्तन होना चाहिए और दूसरी बात यह कि सब पक्षों को परस्पर प्रेम करने का मौका मिलना चाहिए। वैसी वृत्ति और उतनी मानसिक अहिंसा आवश्यक है। भूदान-यज्ञ के जरिये ऐसा मौका मिल सकता है। अगर हिन्दुस्तान में ये दो बातें नहीं चलीं, तो हमारी आजादी बरबादी साबित होगी।

हजारीबाग
१८-७-'५३

कोरिया का युद्ध, जो तीन साल से चल रहा था, अब शान्त हो गया और वहाँ सुलह हो गयी है। अब इस सुलह को मजबूत बनाने का काम करना होगा। लेकिन बहुत खुशी होती है कि एक बार इस दुष्ट युद्ध का अन्त तो हुआ। इसके कारण जागतिक युद्ध की आशंका हो रही थी, इसलिए दुनिया की निगाहें इस पर लगी थीं। समझौते की चर्चाएँ तो चल ही रही थीं, पर उनमें अनेक विघ्न-बाधाएँ भी उपस्थित होती जाती थीं। लेकिन परमेश्वर की कृपा से उनका निर्विघ्न अन्त हो गया। इसलिए हम परमेश्वर की कृतज्ञतापूर्वक मानसिक पूजा करते और उससे प्रार्थना करते हैं कि वह हम मानवों को सद्बुद्धि दे, ताकि ऐसे भयानक युद्ध खड़े ही न हों।

आज के युद्ध प्राकृतिक नियम के विरुद्ध

ऐसे युद्ध क्यों होते हैं ? युद्ध होने पर किसीको अच्छा तो नहीं लगता। जो इस युद्ध में शामिल होते हैं, वे लाचार ही हो जाते हैं। इन दिनों जो युद्ध चलते हैं, वे तो बड़े ही भयानक और खतरनाक होते हैं। तीन साल से चल रहे इस युद्ध के बाद उस देश को फिर खड़े होने में न मालूम कितने साल लगेंगे। इससे जो नुकसान हुआ है, कहा नहीं जा सकता कि उसकी कैसे पूर्ति होगी। इस युद्ध में जो मरे, वे तो छूट गये। पर जितने मरे होंगे, उनसे कई गुना अधिक जखमी होकर जीवनभर के लिए भारभूत हो गये होंगे। आजकल के युद्धों में बड़ी खतरनाक बात यह होती है कि ये युद्ध प्रकृति के वैज्ञानिक नियमों के विरुद्ध होते हैं। प्रकृति का नियम है, सरवाइवल ऑफ दी फिटेस्ट (सबसे शक्तिशाली ही जीवित रहता है)। लेकिन इन हिंसात्मक युद्धों में, जो आजकल वैज्ञानिक ढंग से चलाये जाते हैं, बड़े पैमाने पर जवानों की आहुति दी जाती है। जो 'फिटेस्ट' होते हैं, उनकी आहुति दी जाती है और जो 'अनफिटेस्ट' होते हैं, वे घर बैठते और बच जाते हैं। यह सृष्टि के कानून के विरुद्ध बात होती है। अतः इनके कारणों का संशोधन होना चाहिए।

स्थिति-स्थापकता और हिंसा

इन युद्धों के कारण स्पष्ट हैं। इसके लिए बारीक संशोधन की आवश्यकता नहीं है। समाज में जो भी रचना होती है, वह समाज को सुखी और स्वस्थ रखने के खयाल से होती है और समाज को उससे कुछ लाभ भी होता है। लेकिन कुछ बरसों के बाद उसके लाभ मिट जाते हैं और जैसे पुराने मकान के गिरने के बाद नये मकान बनाने पड़ते हैं, वैसे ही समाज की रचना बदलनी पड़ती है। जहाँ समाज-रचना बदलने की बात आती है, वहाँ मानव को कुछ क्लेश होता है। जो क्लेश सहन नहीं करना चाहते, वे 'स्थिति-स्थापक' कहलाते हैं, 'स्टेटस-को' वादी बन जाते हैं। वे सुधार बहुत धीरे-धीरे करते हैं और जहाँ तक समाज का ढाँचा कायम रह सके, उसे वैसा रखना चाहते हैं। गिरनेवाला मकान तो एक दिन गिर ही जाता है, फिर उसे टिकाने में व्यर्थ शक्ति क्यों खर्च करते हैं? लेकिन जब वह गिरता है, तो उसके अन्दर कई मनुष्यों का खात्मा हो जाता है। इस तरह शान्तिवादी लोग पुराणवादी हो जाते हैं। पुराण को कायम रखें, तो 'बिना कत्ल किये समाज नहीं बदल सकता' ऐसा सोचनेवाले फिर समाज को बदलने के लिए हिंसावादी हो जाते हैं। वे कहते हैं कि पुराना रूप कायम रखेंगे, तो क्रान्ति नहीं होगी। सुधार चाहते हों, तो हिंसा का आश्रय लेना होगा। इस तरह दो पक्ष पड़ जाते हैं।

शान्तिमय क्रान्तिवाद : सत्याग्रह

जहाँ शान्तिवादी लोग आगे बढ़ते हैं, वहाँ स्थिति-स्थापकता में विश्वास रखना पड़ता है और जहाँ क्रान्तिवादी लोग आते हैं, तो वहाँ हिंसा में विश्वास रखना पड़ता है। इस तरह क्रान्तिवाद का सम्बन्ध हिंसा से जुड़ गया। जहाँ पुराना समाज नहीं रहा, वहाँ क्रान्ति आती है और जहाँ पुरानी रचना रखनी है, वहाँ शान्ति का तरीका काम में लाया जाता है। अब हमें नया तरीका और नया विचार मिला है, जहाँ हम क्रान्ति और शान्ति, दोनों से समाज का ढाँचा बदलना और उसका पूरा परिवर्तन चाहते हैं। हम शान्ति भी चाहते हैं और क्रान्ति भी। क्रान्ति के बिना काम नहीं होगा, पुराने घर को भुलाना ही ठीक है। जब हम शान्ति चाहते हैं, तो हमें यह सिद्ध करना होगा कि शान्ति में कोई ऐसी ताकत है, जिससे समाज

का ढाँचा बदला जा सकता है—धीरे-धीरे नहीं, पर क्रान्ति के तौर पर। अगर यह सिद्ध हो जाय, तो क्रान्तिवाद के साथ हिंसा अनिवार्य न होगी और समाज बच जायगा। इसे हम शान्तिमय क्रान्तिवाद अर्थात् "सत्याग्रह" कहते हैं।

श्रद्धा, निष्ठा और तपस्या का समन्वय

हम सर्वोदयवाले, जनहित चाहनेवाले सत्याग्रह का आधार लेते हैं, और उससे समाज को मजबूत बनाना चाहते हैं। इसके लिए सत्याग्रह में विचार पर बहुत श्रद्धा होनी चाहिए। दूसरी बात यह कि उसके लिए दुःख सहने की तैयारी होनी चाहिए। जितना भी त्याग और दुःख भोगना पड़े, उसे सहन करने की हममें ताकत चाहिए। दुःख सहन करने की तैयारी और विचार की निष्ठा, इन दो बातों के सिवा तीसरी बात चाहिए, हृदय-परिवर्तन करने की हिम्मत। हम मनुष्य का हृदय-परिवर्तन कर सकते हैं। उसके हृदय में ज्योति होती है। भले ही ऊपर से अंधकार का आवरण छा जाय, पर अंदर की ज्योति कभी बुझती नहीं। उसके चैतन्य पर हमें विश्वास होना चाहिए। सारांश, हममें विचार पर निष्ठा और दुःख सहने की तैयारी या तपस्या और हृदयस्थ ईश्वर पर श्रद्धा होनी चाहिए। ये तीनों चीजें जहाँ होती हैं, वहीं हम शांति के तौर पर समाज में क्रांति ला सकते हैं। इसके लिए समाज के जरूरी मसले हाथ में लेना, सामाजिक तौर पर उनके प्रयोग करना और साथ ही अंतःशुद्धि एवं आंतरिक कार्य करने चाहिए। हमें समाज का कार्य उठाकर यह सिद्ध करना चाहिए कि शांति से समाज का ढाँचा बदला जा सकता है।

हृदयस्थ परमेश्वर पर श्रद्धा

भूमि-दान के इस काम से हम जीवन-निष्ठा और सत्याग्रह की ताकत बढ़ाना और उसके साथ ही शांति की शक्ति प्रकट करना चाहते हैं। इस दृष्टि से अगर आप इसकी तरफ देखें, तो आपको एक सुंदरता दिखाई देगी। लोग कहते हैं कि यह काम कानून से हो सकता है। हम उनसे कहते हैं, "करो भाई। हम तो किसीको रोकते नहीं।" पर हमें तो मजा आता है, जनशक्ति बढ़ाने में ही। हमारी इच्छा है कि इसमें कम-से-कम समय लगे। हमारा

विश्वास है कि यह काम होकर रहेगा और जल्द-से-जल्द होगा। इस काम से ऐसे गुण और ऐसी कुंजी हासिल होगी, जो पचास तालों को लग सकती है। उससे सारे मसले हल हो सकते हैं। जमीन कितनी मिली और कैसी मिली, इसका हिसाब-किताब हम रखते हैं। यह बाहरी हिसाब है, इसके साथ हम यह भी कसौटी रखते हैं कि हमें कितने कार्यकर्ता मिले, जो मानवता पर विश्वास और विचार पर निष्ठा रखते हैं। ऐसे सेवकों को हम एक बात बताते हैं कि आपको अपने साथियों पर आंतरिक श्रद्धा होनी चाहिए, जैसे माँ का बच्चे पर विश्वास होता है। बच्चे ने कितने भी बुरे काम किये, तो भी वह कहती है कि वह अंदर से अच्छा ही है। बच्चे के थोड़ा-सा अच्छा काम करते ही उतने भर से वह निश्चय कर लेती है कि लड़का सुधर गया। पचास काम बुरे करने पर भी वह लड़के के लिए श्रद्धा रखती है। ऐसी ही श्रद्धा हमें साथियों और विरोधियों के भी प्रति रखनी चाहिए। साथियों की बुराई सुनी, तो उस पर विश्वास न करना चाहिए, पर यदि उनका अच्छा काम सुनाई पड़े, तो हमें फौरन उस पर विश्वास कर लेना चाहिए। मनुष्य के हृदय में परमेश्वर रहता है, उसीके द्वारा अच्छे काम होते हैं।

बुराई के लिए सबूत चाहिए

हम स्कूल में व्याकरण पढ़ते थे। उसमें एक बात आती थी : 'दि न्यूज इज टू गुड टू बी ट्रू।' अर्थात् यह खबर इतनी अच्छी है कि सत्य हो ही नहीं सकती। हमारे मन में आता था कि ऐसा क्यों? यह क्यों नहीं कि 'दि न्यूज इज टू गुड टू बी फाल्स।' अर्थात् यह खबर इतनी अच्छी है कि गलत हो ही नहीं सकती। यह सत्य होनी चाहिए। किसीमें इतनी अच्छाई नहीं हो सकती, यह बात तो हमें एकदम मानवता के विरुद्ध ले जाती है। कानूनदाँ जानते हैं कि कानून में एक बात है कि चाहे दस गुनहगार छूट जायँ, लेकिन एक भी निर्दोष को दण्ड न होना चाहिए। जहाँ थोड़ा संशय हो, वहाँ उसे संशय का लाभ मिलना चाहिए। संशय का लाभ अच्छाई की तरफ होना चाहिए, बुराई की तरफ नहीं। कानून की यह बात बहुत अच्छी है और वह मानवता पर आधृत है। मनुष्य के हृदय में जो अच्छाई होती है, उसके लिए

कोई सबूत की जरूरत नहीं होती, बुराई के लिए ही सबूत की जरूरत होती है। सबूत मिलेगा, तो विश्वास करेंगे, अन्यथा सबूत मिलने तक समझेंगे कि बुराई नहीं है।

यह मानव पर परम श्रद्धा है। कानून ऊपर से लादे नहीं जाते। मानव में जो अच्छाई है, उसी पर से वह आता है। मानव में यदि वास्तव में बुराई होती, तो उसे बुराई पर इनाम मिलता, अच्छाई के लिए नहीं। अगर मानव के हृदय में बुराई ही होती, तो बुराई के लिए सजा न होती; बल्कि गुनहगार को बुलाया जाता और यदि साबित हो जाता कि उसने अच्छा काम किया, तो उसे सजा देते और बुरा काम किया, तो छोड़ देते। लेकिन कानून तो अच्छाई को इनाम देता है और बुराई को सजा। इसका मतलब यही है कि मानव के हृदय में अच्छाई है। यह श्रद्धा हम न खोयेंगे, तो समाज में शांति के तौर पर क्रांति ला सकते हैं, यह एक बुनियादी विचार है। अगर हममें ऐसी श्रद्धा हो, तो हम यह भूदान-यज्ञ सफल कर सकते हैं।

जुलाई '५२

भूदान-यज्ञ : धर्म का एक नया पहलू : २५ :

पिछली बार जब हम यहाँ आये थे, तब यहाँ के महंतजी ने हमें कुछ जमीन दी थी। लेकिन वह तो पहला वादा था। उसके बाद भूदानवाले उनसे मिलने आये और फिर उन्होंने कुछ जमीन दी। आज भी वे कुछ देंगे। किन्तु इससे भी अधिक खुशी की बात आज हुई है। कुछ किसान अपनी शिकायतें ले आये थे। महन्तजी के मैनेजर के विरुद्ध उनकी शिकायतें थीं। उसमें तहकीकात करके उचित कार्रवाई करने का वचन हमें दिया गया। इस बात को हम बहुत ज्यादा महत्त्व देते हैं। इसके सामने उन्होंने जो भूदान दिया, उसकी भी कीमत कम है। आसपास के किसानों के दुःख समझकर हम उन्हें दूर करते हैं, तो उससे सारा वातावरण सुगंधित हो जाता है और जो भूदान के लिए जाते हैं, उससे भूदान का वातावरण बन जाता है।

भगवान् शंकर का अद्भुत कार्य

इन दिनों कुछ बड़े लोगों ने भी हमें दान दिया है। इनमें से कुछ लोगों ने सचमुच ही दरिद्रनारायण की सेवा की दृष्टि से दान दिया है। कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो दान देकर साथ-साथ हमारे काम के लिए भी निकल पड़े हैं। धर्म का यह नया पहलू प्रकट हो रहा है। धर्म का उदय हो रहा है। हमने गीता में सुना है कि जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तब-तब भगवान् धर्म-बुद्धि जगाता और फिर से धर्म ताजा और मजबूत हो जाता है। आज हिन्दुस्तान में धर्म-बुद्धि जाग रही है, यह खुशी की बात है। यह आश्चर्य की बात नहीं कि इस (बोध-गया के) मठ से जमीन मिली है। यह मठ भगवान् शंकराचार्य का है। आखिर उन्होंने क्या सिखाया है?

न कर्मणा, न प्रजया, न धनेन।
त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।

यह है उपनिषद् का एक वचन, जिसके आधार पर भगवान् शंकराचार्य धर्म समझाते थे और हिन्दुस्तान में पैदल-पैदल घूमते थे। हम भी घूमते हैं, परन्तु हमारा सामान उठाने के लिए हमारे आगे-पीछे मोटरें चलती हैं। उन दिनों ऐसी कोई भी सहूलियत नहीं थी। फिर भी एक दस-ग्यारह साल का लड़का घर-द्वार छोड़कर निकल पड़ा। वह पैदल-ही-पैदल घूमने लगा। उसने ब्रह्मचर्य से ही संन्यास की दीक्षा ली, जिसके लिए उसे बहुत विरोध सहना पड़ा। उसने ज्ञान प्राप्त किया और असाधारण ग्रन्थ लिखे, जिनकी प्रभा आज तक हिन्दुस्तान में काम कर रही है। शंकराचार्य ने बहुत-कुछ लिखा। आम लोगों के लिए स्तोत्र लिखे, जो अमृत से भी मीठे हैं।

शंकराचार्य का संदेश

एकता, सत्यता और त्याग का सन्देश लेकर वे गाँव-गाँव घूमे। ब्राह्मण के लिए इससे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। उन्होंने त्याग से बढ़कर कोई चीज नहीं मानी, यही समझकर कि यह दुनिया एक माया है। वैसे तो यह मायावाद बड़ा

प्राचीन, पुरातन है, लेकिन इसे अगर किसीने अत्यन्त लोकप्रिय बनाया है, तो वह भगवान् शंकराचार्य ने ही। वे तो ब्रह्मचारी थे, उनके कोई सन्तान नहीं थी। लेकिन जो धर्म के सत्पुरुष हो गये, वे सारे इनकी संतान हैं। स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस आदि सभी सत्पुरुष शंकराचार्य की राह पर चलते थे। यह मठ भी उन्हींके नाम पर चल रहा है। इसलिए इससे हम अपेक्षा करते हैं कि ये लोग अपनी कुल सम्पत्ति सब गरीबों को बाँट गरीबों की सेवा के लिए निकल पड़ें। "शिवोहम्"—हम तो शिव हैं, सेवक हैं। शंकराचार्य को गरीबों का कितना अभिमान था! योगभ्रष्ट पुरुष के वर्णन के प्रसंग में गीता ने लिखा है: योगी अगर इस जन्म में कुछ पूरा नहीं कर पाते, तो कुछ खोते नहीं; अगले जन्म में वे श्रीमान् या बुद्धिमान ब्राह्मण के घर जन्म पाते और अपना कार्य पूरा कर लेते हैं। इस तरह अपूर्ण योगी दुहरा जन्म पाते हैं। जो श्रीमान् होते हैं, उनके घर जन्म लेकर क्या भाग्य मिलता है? जो पवित्र हैं और श्रीमान् भी, जैसे राजा जनक, उनके घर में जन्म लेना भाग्य की बात है। पर उससे भी श्रेष्ठ जन्म शंकराचार्य ने लिया है: 'धीमतां दरिद्राणां कुले', जो पवित्र श्रीमानों के कुल में जन्म पाते हैं, उनकी तुलना में दरिद्र योगियों के घर जन्म पानेवाले परम भाग्यशाली हैं। शंकराचार्य ने ऐसे ही दरिद्र कुल में जन्म पाया था। हमें आश्चर्य लगता है कि फिर भी उन्हींके मठवालों के पास इतनी माया, मोह क्यों? हम यह भी जानते हैं कि माया-मोह एकदम छूटता नहीं। इसलिए हम परमेश्वर से प्रार्थना करेंगे कि ऐसे लोगों को, जो शंकराचार्य को मानते हैं, वह सद्बुद्धि दे।

हिन्दू-धर्म की उदारता

हिंदू-धर्म को अगर किसीने मजबूत बनाया है, तो वह शंकराचार्य ने। जो काम भगवान् बुद्ध ने किया, उसीको इन्होंने आगे बढ़ाया। बुद्ध के जमाने में यज्ञयाग, कर्मकाण्ड चलते थे। लोग हत्या करते और परमेश्वर को उसका नैवेद्य चढ़ाते थे। निष्ठुरता को भी लोगों ने धर्म बना लिया था। इससे अधिक मानवता का पतन क्या है? बुद्ध भगवान् ने इसी पर प्रहार किया। शंकराचार्य ने

भी सीधे कर्मकांड पर प्रहार किया। उन्होंने इस पर जोर दिया कि इसी शरीर और जीवन में हृदय की शुद्धि और आत्मा की अनुभूति मिल सकती है। इसीमें सच्ची शुद्धि है और यही धर्म का सार है। शंकराचार्य ने कर्मकाण्ड से हमें मुक्त कर दिया, फिर भी कहीं-कहीं वे चलते ही हैं। हिन्दू-धर्म में किसी भी चीज का आग्रह नहीं है। हिन्दुस्तान में कई विचारों, धर्मों और पन्थों के लोग हैं। जो मूर्ति-पूजा को मानता है, वह हिन्दू हो सकता है और जो नहीं मानता, वह भी। यहाँ तक कि ईश्वर को माननेवाला हिन्दू होता है और न माननेवाला भी। इतनी परम उदारता हिन्दू-धर्म में आयी, इसका सारा श्रेय हम शंकराचार्य को देते हैं। यह कोई नयी चीज नहीं है। जो वेदों और उपनिषदों में थी, उसीको उन्होंने जनता के सामने रखा और सब वचनों का विरोध मिटा दिया।

बुद्ध और शंकर

इसका परिणाम यह हुआ कि लोग कहने लगे कि शंकराचार्य तो "प्रच्छन्न-बुद्धः" याने ढँका हुआ बुद्ध है। लोग कहते थे कि यह शंकर तो है, पर भगवान् बुद्ध का दूसरा अवतार है। उन दोनों में बहुत ही थोड़ा अन्तर था। वह था ब्रह्मविद्या के बारे में। बुद्ध भगवान् उस विषय में शान्त रहे। वे इसकी चर्चा में कभी नहीं पड़े। उनके शिष्य लोग उन्हें इसके बारे में पूछते थे, लेकिन वे शिष्यों से कहते कि 'दीनों की सेवा करो, इसीमें शान्ति है। यही सच्चा कार्य है। आत्मा की बहस में मत पड़ो।' लेकिन उनके जाने के बाद उनके शिष्य वादों के चक्कर में पड़े। शंकराचार्य ने उसकी न्यूनता बतायी। इतना ही शंकराचार्य और बुद्ध में विरोध था। बाकी जो संन्यास भगवान् बुद्ध ने माना था, उसीको शंकराचार्य ने आगे बढ़ाया। कर्मकाण्ड का वैसे ही विरोध किया और वैसे ही यति-संघों का निर्माण एवं धर्म का अनुकरण किया।

हिन्दू-धर्म का सार : वेदान्त और भूतदया

हमें यह सुनकर बहुत खुशी होती है कि इस मंदिर के ट्रस्टी बुद्ध और हिंदू, दोनों हैं। हम मानते हैं कि बुद्ध-धर्म का उज्ज्वल आचरण हिन्दुस्तान में बहुत हुआ है। हम यह दावा नहीं करते कि हमने बहुत अच्छी तरह से आचरण किया। पर

जो भी किया, उस पर से हम कहते हैं कि बुद्ध का संदेश हमारे जीवन में उतर गया है। उनका मुख्य संदेश अहिंसा का था। अहिंसा जितनी यहाँ फूली-फली, उतनी दूसरे देशों में फूली-फली है या नहीं, हम नहीं जानते। बुद्ध-धर्म की दया और करुणा और हिंदू-धर्म की आत्मविद्या मिलकर आज का हिंदू-धर्म बना है। हिन्दू-धर्म में सिर्फ दो बातें हैं : एक ब्रह्मविद्या, जिसे वेदांत कहते हैं और दूसरी भूत-दया। इनमें से एक भी न हो, तो वह हिन्दू-धर्म नहीं हो सकता। शंकराचार्य ने एक स्तोत्र बनाया है, जो रोज उनके मठों में पढ़ा जाता है। वह षट्पदी प्रार्थना है, जिसका एक श्लोक यह है :

"अविनयमपनय विष्णो, दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ॥"

अर्थात् भगवन्, तू ही मेरी भूतदया का विस्तार कर। यही भगवान् बुद्ध ने भी कहा है। इसलिए 'ब्रह्मविद्या और भूतदया' दो शब्दों में हिंदू-धर्म और बुद्ध-धर्म का सार है। इसीको लेकर रामकृष्ण और विवेकानंद आगे बढ़े।

भूदान-यज्ञ में धर्म का नया प्रयोग

इस भूदान-यज्ञ में धर्म का नया प्रयोग, नया पहलू शुरू हुआ है। हम तो केवल निमित्तमात्र बने हैं। हिंदुस्तान में जो धर्म की भावना है, उसीका यह फल है। वेदांत में बताया है कि हम सब आत्मरूप हैं, समान हैं, कोई ऊँच नहीं, कोई नीच नहीं। इससे बढ़कर समता का कोई सबक नहीं हो सकता, आधार नहीं हो सकता। समता का नाम तो रूस ने लिया, ब्रिटेन ने लिया और अमेरिका ने भी लिया; लेकिन वेदान्त में समता का जो आधार मिलता है, वह कहीं नहीं मिलता। भारतीय संस्कृति के दो मूल विचार हैं, जिनमें एक यह आत्यंतिक समता है और दूसरा है, भूतदया। अर्थात् सब गरीबों का भूमि पर हक है, दूसरों को खिलाकर खाया जाय और पिलाकर पीया जाय। भूदान के मूल में ये ही दो विचार हैं। इसमें सबके लिए समान बुद्धि है और दया भी। इसलाम-धर्म में भी भूतदया का आविष्कार है। कुरान में लिखा है कि 'सब पर रहम करो'। ईसाई-धर्म में भी ये ही दो बातें आती हैं। इस तरह भूतदया का विचार सब धर्मों में

आता है। ये बहुत सारे धर्म हिंदुस्तान में फले-फूले हैं। फिर भी हिन्दू-धर्म की अपनी एक विशेषता है और वह है, ब्रह्मविद्या। हम इसी परिशुद्ध धर्म-विचार का प्रचार करना चाहते हैं। इसी धर्म-विचार को प्रचलित करना चाहते हैं। इसके लिए भूदान का निमित्त मिल गया, क्योंकि वही आज के जमाने की समस्या है। अतः हमें इसीको आज हल करना चाहिए।

बोधगया
२-८-'५२

नया अध्याय : २६ :

तेलंगाने में हमने जब काम शुरू किया, तब दो-तीन जमींदारों ने दान दिया था। उन्होंने दान माँगने का भी काम किया था। तब भी जमींदारों ने मदद की थी, लेकिन वह व्यक्तिगत तौर पर थी। लेकिन आज जमींदारों का समाज यह काम उठा रहा है, यह एक अहमियत की बात है। इसीलिए हम कहते हैं कि भूदान-यज्ञ के इतिहास में यह एक 'नया अध्याय' शुरू हुआ है। जिसकी हम कल्पना करते थे, वही आज साकार दीख रहा है। ये लोग अब अपना काम कर सारा समाज एकरस बनाने में मदद देंगे।

हमने बत्तीस लाख एकड़ अच्छी जमीन की माँग की है। लोग हमें परती जमीन भी देते हैं। हम उसे 'ना' नहीं कहते। अपने देश की जमीन न लेना हम मातृ-भक्ति के विरुद्ध समझते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को स्वीकार किया, इसमें विशेषता नहीं थी। लेकिन उन्होंने कुब्जा को जो स्वीकार किया—जिसके आठों अंग वक्र थे—इसीमें उनकी विशेषता है। इसलिए हमें आप जो भी देते हैं, उसे स्वीकार करते हैं। लेकिन परती जमीन में यज्ञ का काम पूरा नहीं होता, इसलिए इसमें अच्छी जमीन ही देनी चाहिए। हमने बत्तीस लाख का कोटा अच्छी जमीन का ही माँगा है।

गया
४-८-'५२

आज अगस्त की नौ तारीख है। इस जमाने के इतिहास में इस दिन का नाम सबके हृदय में अंकित है। इस दिन देश के सामने एक मंत्र रखा गया। स्वराज्य का ही वह मंत्र था, लेकिन उसका वह आखिरी पहलू था।

स्वराज्य का मंत्र

'स्वराज्य' शब्द का उच्चारण तो सन् १९०६ में दादाभाई नौरोजी ने किया। उसके पहले लोगों की छोटी-मोटी शिकायतें और उनके दुःख उस जमाने की सरकार के सामने यहाँ के सेवक तथा नेता रखते और एक-एक दुःख के निवारण की कोशिश करते थे। बहुत कोशिश करने के बाद समझ में आ गया कि इन दुःखों का मूल पारतंत्र्य है। जब तक देश स्वतंत्र नहीं होता, तब तक ये दूर नहीं होते। जब इस चीज का दर्शन हुआ, तभी से महर्षि दादाभाई नौरोजी ने यह 'स्वराज्य' का मंत्र देश के सामने रखा। तभी से इस मंत्र की साधना हुई और इसकी आखिरी आवृत्ति 'भारत छोड़ो' आज के दिन लोगों के सामने आयी। तब देश में एक बड़ी हुकूमत चल रही थी। एक बड़ी ताकत देश के सामने पड़ी थी। उससे लोहा लेना था। उसके पास शस्त्र थे और देश तो निःशस्त्र था। उसी हालत में अहिंसा की शक्ति पर आधार रखकर 'भारत छोड़ो' मंत्र का उच्चार हुआ। इसका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि हजारों लोग गिरफ्तार हो गये, जिनका लोगों पर कुछ असर था। बाकी लोगों ने, जो नेतृत्वहीन हो गये थे, जो मन में आया, सो किया। सरकार ने अपनी ताकत के अनुसार आंदोलन दबाने की चेष्टा की और पूरी ताकत से उसे दबाना चाहा। ऊपर-ऊपर से दीखने लगा कि आंदोलन बंद हो गया, दब गया और लोग पस्तहिम्मत हो गये। उसी जमाने में उधर बंगाल में अकाल पड़ गया, जिसमें कई लाख लोग मर गये। इस तरह हिन्दुस्तान की बहुत ही बुरी हालत थी।

हम लोग उस जमाने में जेल में थे। हम लोगों में आपस-आपस में बहस

हो रही थी कि देश कैसे दब गया, वह अब ऊपर कैसे उठेगा। लेकिन मंत्र कभी दबते नहीं। उनके पीछे दर्शन और शक्ति होती है। दर्शन से जब मंत्र की प्राप्ति होती है, तब वे मंत्र बगैर पंख के उड़ने लगते हैं और स्वयं प्रचारित होते हैं। जिस तरह सूर्यनारायण की किरणें हर जगह पहुँचती हैं, वैसे ही मंत्र हर जगह पहुँचते और हर हृदय में प्रवेश करते हैं। उस जमाने में चाहे ऊपर से अँधेरा छाया था, फिर भी आंदोलन के अन्दर की ज्योति जल रही थी। वह बुझनेवाली नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि इस मंत्र-उच्चारण के पाँच साल बाद अंग्रेजों को हिंदुस्तान छोड़कर जाना पड़ा, यह आपने देख लिया। यह आन्दोलन आज के ही दिन हुआ था। इसीलिए यह दिन हमारे लिए प्रेरक है। इस दिन की याद से हमें प्रेरणा मिलती है, स्फूर्ति मिलती है और नये काम के लिए नया जोश मिलता है। ऐसे दिन का स्मरण हम जाग्रत रखना चाहते हैं।

मन्त्रों के अवतार

जहाँ एक मंत्र समाप्त होता है, वहाँ परमेश्वर दूसरा मंत्र देता और फिर समाज का काम चलता है। इस तरह मंत्रों का अवतार होता है। मंत्र का अवतार ही वास्तविक अवतार है। हम राम-कृष्ण आदि को अवतार मानते हैं; लेकिन वे तो निमित्तमात्र अवतार थे, जिनके जरिये मंत्र फलित हुए। मंत्र में शक्ति होती है, जो आम समाज को चालना और कुछ व्यक्तियों को विशेष स्फूर्ति देती है। तो उन व्यक्तियों के नाम पर बड़े-बड़े काम हो जाते हैं। लोग उन्हींका नाम लेते और कहते हैं कि वे अवतार हैं। लेकिन अवतार वस्तुतः मंत्र के ही होते हैं। राम के पास मंत्र था, जिसे लेकर वे घूमे और ऋषि-आश्रम में पहुँचे। वहाँ एक ढेर लगा था। उन्होंने पूछा : 'यह कैसा ढेर है?' ऋषि ने उन्हें जवाब दिया : 'ऋषि अविरोधी होते हैं। उनके विरोध में जिन राक्षसों ने काम किया, उन्हींकी ये हड्डियाँ हैं।' रामचन्द्र ने कहा : 'इन ऋषियों की तपस्या से मुझे प्रेरणा मिली है। यह सारी मही राक्षसहीन होगी।' सारांश, ऋषियों की तपस्या ने एक मंत्र दिया और उसकी सिद्धि रामचन्द्र ने की। फिर भी लोग रामचन्द्रजी का स्मरण करते और उन्हें अवतार कहते हैं। वास्तव में वे तो एक कठपुतली थे, उनके पीछे जो मंत्र था, उसीने सारा काम किया।

परमेश्वर एक परम तत्त्व है। उसी तत्त्व से मंत्र स्फुरित होते और महापुरुषों को उनसे स्फूर्ति मिलती है। महापुरुषों के विचार समाज को चेतना देते हैं। इस तरह स्फूर्ति का स्थान और मंत्र का मूल परमेश्वर ही है। मंत्र के स्वरूप में वह परमतत्त्व प्रकट होता है। जहाँ एक अवतार की पूर्ति होती है, वहाँ दूसरा अवतार आता है, जिससे दुनिया में सदा ताजगी रहती है। यही ईश्वर की लीला है। रामचन्द्र के जमाने में एक मंत्र हुआ, कृष्ण के जमाने में दूसरा मंत्र और बुद्ध के जमाने में तीसरा मंत्र हुआ। इस तरह मंत्र मिलते गये और दुनिया आगे बढ़ती गयी।

स्वराज्य के बाद सर्वोदय का मंत्र

एक मंत्र दूसरे मंत्र को जन्म देकर लुप्त हो जाता है। इस तरह बीज से फल होता है और फल से फिर बीज होता है। एक-एक बीज खतम होता और दूसरा बीज उगता है। इस तरह एक मंत्र जब अव्यक्त होता है, तब दूसरा मंत्र आता है। दुनिया में कोई चीज विनाशी नहीं है, यही विज्ञान ने हमें सिखाया है। स्वराज्य के मंत्र के अवतार की पूर्ति हो गयी, तो गांधीजी ने दूसरा मंत्र देश के सामने रखा। उन्होंने उसकी तैयारी तो पहले ही कर रखी थी। उस नये मंत्र का नाम है : 'सर्वोदय'। उस मंत्र का बीज स्वराज्य के आन्दोलन में पहले ही बोया जा चुका था। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद वह अंकुरित हुआ है। जब तक 'स्वराज्य' मंत्र था, तब तक यह बोया हुआ था, अंकुरित नहीं हुआ था। पर जब 'स्वराज्य' फलित हुआ, तो जो 'सर्वोदय' बोया था, वह दीख गया, अंकुरित हुआ। इस तरह सर्वोदय का आन्दोलन जारी हुआ।

मंत्र शब्दों में आता है, उसके बाद समाज में कुछ हलचल चलती है। उससे कुछ प्रेरणा मिलती है और उसके बाद काम होता है। इसी तरह 'सर्वोदय' का काम चला। पहले 'सर्वोदय' शब्द आया। इसका अर्थ महान् है। यह शब्द सब अर्थों को एकदम प्रकट नहीं कर सकता, एक-एक पहलू को प्रकट करता गया। उससे सबको प्रेरणा मिली। गांधीजी के बाद सेवाग्राम में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें गांधीजी के अनुयायी इकट्ठा हुए थे। उन्होंने मिलकर तय किया कि हम गुरु

के नाम पर कोई सम्प्रदाय या पंथ नहीं खड़ा करना चाहते। वे तो निमित्तमात्र थे। उन्होंने हमें जो मन्त्र दिया, उसीकी पूर्ति हमें करनी चाहिए। मैंने कहा: मंत्र का मूल परमतत्त्व में होता है। अनेक संकल्पों के जरिये वे प्रकट होते हैं। अप्रकट रूप में तो वे सारे रहते ही हैं। 'सर्वोदय' कोई नयी चीज नहीं, नया मंत्र नहीं, यह तो पुराना ही मंत्र है। ऋषियों ने कहा था: "सर्वभूतहिते रतः"। हम सबका उदय चाहते हैं। सबके भले के लिए हमें काम करना है। यही तो सर्वोदय है।

'विज्ञान' अपूर्ण और 'सर्वोदय' पूर्ण मंत्र

इन दिनों, जब से वैज्ञानिक युग आया है, लोग नये ढंग से सोचने लगे हैं। नये-नये विचार सामने रखते और पुराने शब्दों को नये अर्थ देते हैं। उससे अनर्थ होता है, क्योंकि विज्ञान अपूर्ण है। वे अपूर्ण विज्ञान से अपूर्ण और अधूरे मंत्र दुनिया के सामने रखते हैं। आज पाश्चात्यों का जो विज्ञान चल रहा है, वह अधूरा है। उसने एक विचार दिया है: 'अधिक-से-अधिक लोगों का अधिक-से-अधिक भला' (ग्रेटेस्ट गुड ऑफ दि ग्रेटेस्ट नंबर)। यह एक खतरनाक शब्द निकला है। विज्ञान के युग में यह जो शब्द मिला, उसकी चमक-दमक में आकर हमने इसे अपने हित का मान लिया। लेकिन उसमें से भेदासुर का निर्माण हुआ। फिर 'कम संख्या, ज्यादा संख्या' इसमें से संख्यासुर भी निकला। जब से यह 'मेजॉरिटी, मायनॉरिटी' की बहस में हम लोग पड़े, तभी से दुनिया के हर देश में झगड़े चलने लगे। इन अधूरे मंत्रों के कारण ये विचार भी एकांगी ही हो गये।

वास्तव में इसकी पूर्ति तो आत्मज्ञान के दर्शन से हो सकती है। पूरा विचार तो यह है कि 'सबका भला होना चाहिए, अधिक-से-अधिक लोगों का नहीं, क्योंकि उसमें जो कम-से-कम लोग हैं, उन पर अन्याय होता है। हम अपने परिवार में ऐसा नहीं सोचते कि नौ मनुष्य का भला हो और एक का भला न हो। पर जहाँ समाज का सवाल आ गया, तो विज्ञान ने कह दिया: 'अधिक-से-अधिक लोगों का अधिक-से-अधिक भला होना चाहिए।' लेकिन हम तो सबका भला चाहते हैं। विज्ञान अपूर्ण मंत्र है और सर्वोदय पूर्ण मंत्र। सर्वोदय में आत्मा का विचार है। उसका अभ्युदय आत्मा के ज्ञान में है। सर्वोदय ने पूरा विचार

दिया है। वह पूर्ण, सही और शुद्ध है। 'बीस विरुद्ध पचीस' ऐसी राय लेना हम गलत मानते हैं। आत्मा के टुकड़ों का गलत विचार आत्मज्ञान में नहीं है। आत्मा तो एक, अविभाज्य, पूर्ण, समान और निर्दोष है। वह हरएक प्राणी में समान रूप से है। 'हम पूर्ण हैं, यह भी पूर्ण है, वह भी पूर्ण है और पूर्ण से पूर्ण ही निष्पन्न होता है।' आत्मज्ञान पूर्ण है, इसीलिए उसमें से पूर्ण विचार निकलते हैं। उसमें 'मेजॉरिटी, मायनारिटी' की गुंजाइश नहीं है। यह विचार हमारे सामने आ गया है। इसका एक-एक पहलू लेकर हम काम कर सकते हैं। यह भूमि की समस्या सर्वोदय का बुनियादी पहलू है।

पूर्ण मंत्र में एकता की ताकत

यह अभी आरंभ हुआ है। यह सर्वोदय के विचार का पहला ही कदम है। स्वराज्य के बाद हमें सर्वोदय का नया मंत्र मिला है। जहाँ नदी का आरंभ होता है, वहाँ उसका परिशुद्ध रूप होता है। वैसे ही सर्वोदय की नदी आगे बढ़ रही है। एक-एक मनुष्य उसके लिए अनुकूल होता जा रहा है। आज हिंदुस्तान में पुराने खयाल की कितनी ही संस्थाएँ चलती हैं। कांग्रेसी, सोशलिस्ट, हिंदू महा-सभाई आदि अनेक विचारवाले हैं। जैसे-जैसे वे सोचते चले जा रहे हैं, सर्वोदय के विचार की पकड़ उनके मन पर पक्की होती जा रही है। कारण, पूर्ण मंत्र में एकता की शक्ति है और अधूरे मंत्र में गलत विचार रहता है। पूर्ण मन्त्र अपनी एकता की शक्ति से अनेक को एक बनाता है। आखिर अधूरे मन्त्रों को मंत्र ही क्यों कहा जाय? वे तो गलत विचार ही हैं। समाज के टुकड़े करनेवाले वे अधूरे विचार हैं। पर लोग उन्हें भी मान लेते हैं। आज दुनिया में समाज के टुकड़े करनेवाले बुरे विचार और समाज को एकरस बनानेवाले सर्वोदय के विचार, ऐसे दो विचार चल रहे हैं। दुनिया में इस पर बहस हो रही है। इन दो विचारों में संघर्ष चल रहा है। यह झगड़ा दिन-दिन बढ़ रहा है। सर्वोदय के हाथ में शस्त्र नहीं, विचार है, और हम विचार से हथियार को तोड़ सकते हैं। हथियार आज एटम बम तक आ गये हैं। दुनिया पर इनका असर हो रहा है। पर सर्वोदय में जो आध्यात्मिक शक्ति है, वह अवश्य काम करेगी और उसका विचार अवश्य काम करेगा।

अद्वैतवादी सर्वोदय

हिंदुस्तान में भिन्न-भिन्न दल हैं। वे आपस में भेद-भाव करते हैं, पर भूदान का काम सभी कर रहे हैं। उन्होंने इसे मान लिया है। इसके विरोध में अभी तक तो हमें कोई नहीं मिले। उनमें एक-दूसरे के विरोध में विचार उठते रहते हैं, लेकिन भूदान के लिए एक ही मंच पर आकर कन्धे-से कन्धा भिड़ाकर सभी काम कर रहे हैं। ये दृश्य ज्यादा-से-ज्यादा दीख रहे हैं। आगे आप देखेंगे कि सारे दल इस काम में लग गये हैं। सारे समाज को एकरस बनाने का हमारा यह प्रयत्न अवश्य सफल होगा और उसीसे एक महान् शक्ति प्रकट होगी।

स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिता दृढम्।
परस्परं विरुद्ध्यन्ते तैरयं न विरुद्ध्यते॥

जो समग्र को नहीं मानते, जो अंश को मानते हैं—चाहे वह अंश कितना ही बड़ा हो—वे अंशवादी होते हैं। उन्हें 'द्वैतवादी' कहते हैं। वे पक्के निश्चय-वाले होते हैं। अपने-अपने विचार पार्टी को देते और उसे श्रेष्ठ मानते हैं। इसलिए वे एक-दूसरे के विरोध में खड़े होते हैं। वे अपने-अपने धर्म, पार्टी और पक्ष को बढ़ावा देना चाहते तथा आपस-आपस में झगड़े पैदा करते हैं। लेकिन उन सब पक्षों का समावेश सर्वोदय के पेट में होता है। सर्वोदय का किसीसे विरोध नहीं है। वह सबको अपने पेट में समा लेता है। वह अद्वैतवादी है।

जो भूदान में आते हैं, वे सब एकसाथ काम करते हैं। पहले उनके मन में भेद रहता है, लेकिन जैसे-जैसे काम करते जायँगे, वैसे-ही-वैसे भेद मिटेंगे और एक-दूसरे के प्रति द्वेष-भावना नहीं रहेगी। यह दृश्य अब दीख रहा है। जो अब तक एक-दूसरे से बात तक नहीं करते थे, वे आज मिलकर काम कर रहे हैं। हाँ, दिल में तो कुछ हिचकिचाहट होती है, लेकिन अब विरोधी विचार नहीं रहेंगे। और सारे एक विचार के बनेंगे, सारा समाज एकरस बनेगा, ऐसी हम अपेक्षा रखते हैं। सर्वोदय-विचार की खूबी है कि वह परस्परविरोधी सब पक्षों को अपने पेट में समा लेता है। इसी विचार से हमें प्रेरणा मिलती है।

मन्त्र से छोटे बड़े बनते हैं

आज ढाई साल से हम घूम रहे हैं। यह मन्त्र हमें नित्य नया विचार और निरंतर प्रेरणा देता है। हम आपसे कहते हैं कि आप छोटे नहीं, महान् हैं। आपके सामने यह मन्त्र प्रकट हुआ है। यहाँ कोई छोटे नहीं रहते। जहाँ राम के सामने मन्त्र प्रकट हुआ, वहाँ बन्दर बन्दर नहीं रहा, भालू भालू नहीं रहा, साधारण मनुष्य साधारण नहीं रहा। एक मन्त्र आया और उसने उनके शरीरों को अभिमंत्रित किया। तब वे शरीर 'शरीर' नहीं रहे, उस मन्त्र के वाहन बन गये। छोटे-छोटे लोग इसमें काम करते हैं। हमें आश्चर्य लगता है कि इन्हें यह प्रेरणा कैसे मिल रही है। बच्चों, स्त्रियों, छोटों-बड़ों, सबको प्रेरणा मिल रही है और वे दान दे रहे हैं। अंधों ने भी दान दिया है। और अब तो एक नया अध्याय शुरू हुआ है। जमींदार भी अब जाग गये हैं। ऐसा विश्वव्यापक मन्त्र जहाँ प्रकट हो जाता है, वहाँ हम छोटे नहीं रहते। वहाँ हम मन्त्र से प्रभावित हो जाते हैं। ऐसी श्रद्धा रखकर काम में लग जाइये। सर्वोदय में विश्वास रखिये। सर्वोदय साधने के लिए अपना एक हिस्सा दूसरे को दीजिये। जो अपना है, वह अपना नहीं, सबका है। इसीलिए एक हिस्सा दीजिये।

यज्ञ में घी नहीं, आसक्ति जलानी है

'अग्नय इदं न मम' जो अपना है, उसका एक हिस्सा अग्नि को अर्पण कर दो। वह हिस्सा अग्नि के लिए है, हमारे लिए नहीं। छोटे-छोटे टुकड़े से उत्पादन घटता है, ऐसी बात नहीं है। जब यज्ञ में घी की आहुति दी जाती थी, तो लोग कहते थे कि 'यह तो घी जल रहा है', पर ऋषि ने कहा : 'यह घी नहीं जल रहा है, आप लोगों की आसक्ति जल रही है।' वह जमाना था, जब जंगल तोड़ते, जलाते और मनुष्यों को बसाते थे। तब अग्नि की स्थूलरूप से उपासना चल रही थी। किन्तु अब तो अन्दर की अग्नि जलानी है। अन्दर की अग्नि की ही उपासना उन्होंने सिखायी है। उसमें अपने स्वार्थ की आहुति देनी है। जिसके साथ हमारी पूरी आसक्ति हो गयी है, हमें उस भूमि का मोह छोड़ना होगा और अपनी धरती की आहुति इस यज्ञ में देनी होगी। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि चाहे इससे देश का उत्पादन घटता हो, तो भी मुझे यह मंजूर है। जहाँ दिल

जुड़ जाते हैं, वहाँ उत्पादन सौगुना हो जायगा। किसान अच्छे-से-अच्छे बीज बोता है। उस समय दीखता तो यह है कि अच्छा बीज नष्ट हुआ, पर थोड़ा सब्र करने पर यही दीख पड़ता है कि हमने कुछ खोया नहीं, बल्कि चौगुना पाया है। एक बीज बोते हैं, तो वह सौगुना हो जाता है।

इसलिए आप अपनी जमीन गरीबों को बाँट दीजिये। बाँटने से दिल जुड़ेंगे, फिर चाहे जैसे टुकड़े जमीन के हो जायँ। आप जैसी चाहें, उसमें से फसल पैदा कर सकते हैं। आप सहयोग से काम करेंगे, तो फिर उसमें से सौगुना पैदा होगा। अग्नि में घी नष्ट नहीं होता, बल्कि वह शतगुणित होता है। मेरी आँखें देख रही हैं कि वह शतगुणित हो रहा है। यह तो मैंने मिसाल दी। मैं कबूल करता हूँ कि इस जमाने में कोई घी जलायेगा और यज्ञ करेगा, तो मुझे जँचेगा नहीं। जिस जमाने में वह चल रहा था, वह उस जमाने के लिए ठीक था।

यह छोटी दृष्टि जरा छोड़ो और बड़ी नजर रखो, लंबी नजर रखो। हमारा उद्देश्य जमीन तोड़ने का नहीं है, हमें तो दिलों को जोड़ना है। दिलों के टुकड़े हो चुके हैं, उन्हें हमें जोड़ना है। हम दिलों के टुकड़े को वस्त्र के समान सी रहे हैं। हम जोड़ने के लिए काट रहे हैं। दर्जी से पूछो कि कपड़ा क्यों काटते हो? तो वह कहेगा कि इसे काटकर मैं सीना चाहता हूँ। यह सारी भूमि जर्जर हो गयी है। उसके टुकड़े हो गये हैं। यह भूमि छिन्न-विच्छिन्न हो गयी है। इसीलिए हम गरीब को उसे बाँट देंगे और एक बार तोड़कर ही क्यों न हो, हम सारे देश को एकरस बनायेंगे।

हुल्लासगंज
९-८-'५२

आज सुबह नालन्दा के खँडहर देखने गया था। यह एक प्राचीन ऐतिहासिक स्थान है। पुरानी स्मृतियाँ मनुष्यों को उत्साह दिलाती और कर्तव्य के लिए प्रेरणा देती हैं। हमारे अपने इतिहास में जो कुछ हुआ, सब अच्छा ही है, ऐसी बात नहीं। कुछ खट्टा भी है और कुछ मीठा भी।

इतिहास में कुछ खट्टा और कुछ मीठा

अक्सर लोग इतिहास में सब अच्छा-ही-अच्छा मानते हैं और बुराइयाँ देखते ही नहीं। किन्तु यह गलत है। हमें अपने दोष और गुण, दोनों का ज्ञान रखना चाहिए। विवेक और समन्वय की बुद्धि रखकर इतिहास का दर्शन करना चाहिए, तभी लाभ होगा। आजकल स्कूलों में बच्चों को कई मृत राजा-महाराजाओं के नाम याद करने पड़ते हैं। किन्तु इतिहास का तात्पर्य राजा-महाराजाओं का इतिहास नहीं है। अपने जीवन के लिए जो चीज जरूरी और अच्छी है, वह अगर पुराने इतिहास के अनुभवों से मिलती है, तो वही हमें लेनी है और उससे लाभ उठाना है। अगर उसमें बुराई है, तो उससे हमें बचना ही होगा। इसलिए हमें इतिहास के केवल अभिमान से प्रयोजन नहीं, उसका दर्शन होना चाहिए।

विद्या की प्राचीन परम्परा

नालन्दा का सारा दृश्य बहुत मधुर और अच्छा लगा। हजारों विद्यार्थी यहाँ आते और अध्ययन करते थे, इसका दर्शन यहाँ होता है। लेकिन यह बात हमारे लिए नयी नहीं है। नालन्दा की युनिवर्सिटी बहुत प्राचीन जरूर है, पर हमारे पुराने ग्रन्थों में भी हमें यह दीखता है कि विद्या का अध्ययन हमारे यहाँ बहुत प्राचीनकाल से—नालन्दा से भी बहुत पहले—चल रहा है। विद्यार्थी उषःकाल से ही अपने गुरु के पास विद्याध्ययन करते, मनन और चिन्तन करते थे। प्रातःकाल के समय सोते रहकर वे अपना अमूल्य समय नहीं खोते थे। वेदों में कहा है :

यो जागार तं ऋचः कामदन्ते।

जो जागते हैं, उन्हें भगवान् स्मरण करते हैं, ऋचाएँ उन्हें स्फुरित होती है।

यह परम्परा अनन्त काल से चली आ रही है। बुद्ध भगवान् के जमाने में भी यह चली। लेकिन जब से अंग्रेजी विद्या आयी, यह धर्म हमने छोड़ दिया। विद्या शहर में आ गयी। यह विद्या 'विद्या' नहीं, यह तो पेट भरने के लिए है। इसे 'अविद्या' ही कहा जायगा। नतीजा यह हुआ कि पढ़नेवाले लोग शहर में चले गये और उन्होंने गाँव में रहना छोड़ दिया। लेकिन बहुत थोड़े लोग अंग्रेजी विद्या सीख पाये और बाकी सारे अज्ञानी रह गये। जाते समय वे अपने संस्कार यहाँ छोड़कर चले गये और हमारी संस्कृति से विपरीत विचार सीखने लगे।

उपनिषद्कालीन राज्य का वर्णन

एक राजा उपनिषद् में अपने राज्य का वर्णन करता है :

नमे स्तेनो जनपदे न कदर्यः, न मद्यपः।
न अनाहिताग्निः न अविद्वान्··· ॥

अर्थात् मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है। कोई कंजूस नहीं है। जहाँ कंजूस होते हैं, वहाँ चोर होते हैं। हमने कई दफा कहा है कि कंजूस चोरों का बाप है। कंजूस ही चोरी को बढ़ावा देते हैं। उसने यह भी कहा था कि मेरे राज्य में कोई भी मद्य नहीं पीता। उस समय हिन्दुस्तान में कोई भी मद्य नहीं पीता था। लेकिन अंग्रेजों ने शराब को फैशन बनाया और शहरों में शराब खुले आम चली। आज उसे रोकने में भी हमें डर लगता है। उस राजा ने यह भी कहा कि मेरे राज्य में कोई अविद्वान् नहीं है—ऐसा कोई नहीं है, जो पढ़ना-लिखना नहीं जानता। और मेरे राज्य में ऐसा भी कोई नहीं है, जो भगवान् की पूजा नहीं करता। याने बहुत ही प्राचीनकाल से यहाँ विद्या चली आ रही है। किन्तु आज हमें आत्मज्ञान और विज्ञान दोनों का अध्ययन करना है। प्राचीन काल से चला आनेवाला ज्ञान हासिल करना है और पश्चिम की ओर से विज्ञान भी लेना है। नालंदा के खंडहर हमें यही सिखाते हैं। इसी तरह हमें अपने गुणों का विकास करना चाहिए।

बल से धर्म का प्रचार नहीं हो सकता

यहाँ यह भी सीखने को मिला कि हमें क्या न करना चाहिए। हमने यहाँ एक चित्र देखा। एक मूर्ति शंकर-पार्वती के सिर पर खड़ी है। मतलब यह कि कोई बौद्ध राजा उन्मत्त हुआ होगा। तब किसी मूर्तिकार ने ऐसा चित्र बनाकर बताया कि धर्म की जीत हुई है। उस राजा के आधार पर भी यहाँ विद्या सिखायी गयी। लेकिन हम नहीं समझते कि इस तरह किसी धर्म की जय, किसी धर्म का उदय हो सकता और एक धर्म दूसरे धर्म को जीत सकता है। बुद्ध-धर्म के नाश के जो कई कारण हैं, उनमें एक यह भी है। इसीलिए यहाँ बुद्ध-धर्म टिका नहीं। जहाँ बल आता है, वहाँ धर्म क्षीण हो जाता है। धर्म के प्रचार में जब ताकत लगायी जाती है, तब धर्म टिकता नहीं। सिर्फ बौद्ध-धर्म में यह बात है, ऐसा नहीं। शैव, वैष्णव आदि सब धर्मों में ऐसा ही हुआ। जब धर्म के प्रचार का उत्साह बढ़ जाता है, तब उसमें विवेक नहीं रहता। जब राजा-महाराजाओं का साथ लेकर धर्म का जबर्दस्ती और बल से प्रचार होने लगता है, तब धर्म 'धर्म' नहीं रहता। बलात्कार से कोई धर्म टिक नहीं सकता। वह तो 'अधर्म' हो जाता है। प्राचीन काल से ऐसा ही होता रहा है।

परशुराम ने निःक्षत्रिय पृथ्वी बनाने का प्रयत्न किया। उसने इक्कीस बार पृथ्वी निःक्षत्रिय बनायी। फिर भी पृथ्वी पर क्षत्रिय बने रहे, क्योंकि परशुराम स्वयं तो थे ब्राह्मण, पर उन्होंने काम किया क्षत्रियों का ही। इसी कारण क्षत्रियत्व का एक बीज बोया गया। ब्राह्मण होकर भी वे शान्त नहीं रहे। और उन्होंने क्षत्रियों का हथियार खुद उठा लिया। इसलिए उनका काम नहीं हुआ। यदि वे शान्ति से काम करते, तो बात बनती। लेकिन उनका खुद का 'धर्मांतरण' हो गया!

बलात्कार से धर्म का प्रचार मुसलमानों ने भी किया। लेकिन कुरान में लिखा है कि धर्म के बारे में जबर्दस्ती नहीं हो सकती। समाज के सामने सत्य और मिथ्या, दोनों रखने चाहिए और समाज पर ही यह निर्णय छोड़ देना चाहिए कि वह क्या चाहता है। सत्य और मिथ्या, दोनों छिप नहीं सकते। इसलिए लोगों को जो सही मालूम होगा, उसे वे लेंगे और जो मिथ्या लगेगा, उसे

छोड़ेंगे। यद्यपि कुरान में ऐसा लिखा गया, फिर भी मुसलमान राजाओं ने जबर्दस्ती से ही धर्म का प्रसार किया। उससे तो द्वेष ही फैला। अगर आज मुहम्मद पैगंबर होते, तो उन्हें संख्या-वृद्धि से खुशी न होती।

अवश्य ही सभी धर्मों ने संख्या का खयाल किया, पर संख्या में धर्म नहीं रहा करता। वह तो एक निर्मल परिशुद्ध तत्त्व है। मनुष्य की मनुष्यता बढ़ाना ही सब धर्मों का कार्य है। यही करने के लिए भिन्न-भिन्न ऋषियों ने समाज के सामने भिन्न-भिन्न ढंग से धर्म को रखा और खुद उसका आचरण किया। उन्होंने तटस्थ-बुद्धि से धर्म-विचार रखे। किन्तु जब आगे चलकर अविचारों को जबर्दस्ती से भी हटाने का प्रयत्न हुआ, तो वह सफल न हो सका, क्योंकि जबर्दस्ती से हम अविचार भी नहीं हटा सकते। आचार-विचार जबर्दस्ती सिखाना अधर्म होता है।

जबर्दस्ती से धर्म मिट जाता है

कोई शंकर-पार्वती की पूजा करना धर्म समझता है, तो कोई उनकी पूजा को अधर्म मानता है। जो गलत मानता हो, वह इसे न करे, उसे अपनी भूमिका के अनुसार अपना काम करना चाहिए। जिसकी भूमिका में मूर्ति-पूजा मान्य है, वह मूर्ति पूजा करेगा और जिसके नहीं है, वह नहीं करेगा। किंतु अपनी भूमिका दूसरे पर लादना और वह भी जबर्दस्ती से, यह अधर्म है। इसीसे धर्म मिट जाता है। इसी कारण सब धर्मों के प्रति नौजवानों और लोगों में अश्रद्धा पैदा हुई है, नास्तिक लोग बढ़ गये। आज इतने नास्तिक दीख पड़ते हैं, वह इसी कारण। धर्म संख्या बल से नहीं बढ़ता, अपने निर्मल और परिशुद्ध प्रचार से ही बढ़ता है। इसमें हम किसीकी निंदा नहीं करना चाहते हैं, बल्कि सब धर्मों में जो दोष हैं, उनका दर्शनभर कराना चाहते हैं। उनसे हमें सबक सीखना चाहिए।

हम चाहते हैं कि भूदान का काम १९५७ तक पूरा हो। परंतु हम यह काम अहिंसा और प्रेम से समझा-बुझाकर करना चाहते हैं। हम जबर्दस्ती से काम नहीं लेते, हमें सब्र से काम लेना है। हम सब्र को खोयेंगे, तो शांति भी खो देंगे। वैसे तो जबर्दस्ती से काम होता ही नहीं और अगर हुआ भी, तो गलत होता है।

हमें जबर्दस्ती से जमीन अधिक मिली, तो उससे न दुनिया का काम बनेगा और न हमारा ही। इसीलिए हमें इसकी हमेशा फिक्र रहती है कि हम अपना विचार लोगों को समझायें और उसे समझकर ही लोग हमें जमीन दें।

भूदान शुद्ध धर्म-कार्य

यह शुद्ध धर्म-चक्र-प्रवर्तन का काम है। इसलिए हम शुद्ध भाव से जमीन माँगते हैं। अगर आज बुद्ध भगवान् होते और वे उस मूर्ति को देखते कि शिव-पार्वती के सिर पर एक बौद्ध खड़ा है, तो क्या वे प्रसन्न होते? उन्हें वह देखकर कितना दुःख होता! लेकिन जो उन्मादी होते हैं, वे उत्साह और आवेश में आकर ऐसा काम कर डालते हैं। वैष्णवों ने भी ऐसे कार्य किये हैं। ये सब तामस भाव की वृद्धि के लक्षण हैं। धर्म-कार्य में जबर्दस्ती अत्याचार नहीं चल सकता, यह सबक हमें इन खँडहरों ने सिखाया। धर्म-कार्य पवित्र कार्य होता है। वह अहिंसा से ही होना चाहिए, भले ही उसे पूरा होने में देर लगे।

हम यह कभी नहीं कहते कि भूदान को १९५७ तक पूरा करने के लिए हिंसा से भी मदद लो, तो चलेगा। हम तो अहिंसा और प्रेम से ही समझा-बुझाकर यह करना चाहते हैं। अगर प्रेम से यह काम नहीं होगा, तो '५७ ही क्या, हजार सालों में भी पूरा नहीं होगा। आखिर एक की जमीन दूसरे को देने का यह गोरख-धंधा हमें क्यों सूझा? हमारा उद्देश्य यही है कि लोगों में प्रेम, त्याग और परस्पर सहयोग की भावना निर्माण हो। और इसीलिए हमने यह भूमि का मसला हाथ में लिया है। ऐसा कोई भी मसला हाथ में लेकर धर्म-प्रचार किया जाय, तो लोग उसे फौरन समझ लेते हैं। लोगों के जीवन पर उसका असर हो जाता है। और अगर केवल विचार-प्रचार किया जाय, तो लोग फौरन नहीं समझते। सिर्फ प्रम का उपदेश करने पर बात हवा में रह जाती है और उसका असर हुआ भी, तो वह बहुत सूक्ष्म होता है। इसलिए उस-उस जमाने के लोगों ने अपने-अपने तरीके से उस-उस जमाने के मसले हाथ में लेकर ही धर्म का प्रचार किया है। वह शुद्ध धर्म-विचार का प्रचार था।

भूदान के वाहन पर आरूढ़ हो धर्म-चक्र-प्रवर्तन

हमें भी जमीन का यह मसला केवल एक निमित्त मिला है। वास्तव में

हम तो शुद्ध धर्म का प्रचार करना और उसके साथ त्याग और प्रेम की भावना फैलाना चाहते हैं। यह भूदान का काम भी हमारे लिए एक वाहन है, जैसे भगवान् विष्णु का वाहन गरुड़ है और भगवान् शंकर का वाहन बैल। वाहन इसलिए चाहिए कि बिना उसके काम नहीं चलता। वह साकार नहीं, अव्यक्त रहता है। भूदान का मसला हमारे लिए वाहन बन गया है। इसीलिए उस पर आरूढ़ हो हम धर्म-चक्र-प्रवर्तन का प्रचार करने के लिए निकले हैं।

सत्य सर्वश्रेष्ठ धर्म

हमने इस विचार को भी दृढ़ किया कि हमें अपने कार्य में जरा भी आसक्ति न रखनी चाहिए। हमें ध्यान रखना चाहिए कि फलासक्ति के कारण कोई बुराई न आ जाय। जैसे स्वच्छ, शुद्ध दूध में हम जरा भी कचरा सहन नहीं कर सकते—दाल-भात खानेवाला शायद थोड़ा कचरा सहन भी कर सकता है—वैसे ही धर्म-कार्य में हम यत्किंचित् भी अधर्म आने पर उसे सहन नहीं कर सकते। हम यह नहीं सोचते कि धर्म अधर्म के आधार पर भी बढ़ सकता है। धर्म तो अपने परिशुद्ध तत्त्व सत्य पर फैलता है। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि सभी धर्मों को यह सीखना चाहिए। उन्होंने धर्म के नाम पर बहुत ही जुल्म किये हैं। नतीजा यह हुआ कि नौजवान लोग कहने लगे, हम आपके धर्म में विश्वास नहीं रखते। हम सिर्फ सत्य, न्याय और दया चाहते हैं। इस तरह उनमें सब धर्मों के प्रति अश्रद्धा पैदा हुई है। लेकिन हम कहते हैं, ठीक है भाई, आप जिस पर विश्वास करते हैं, उसीको हम धर्म मानते हैं। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। 'नास्ति सत्यात् परो धर्मः' सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं हो सकता। किसी भी धर्म को मानते हो, तो मानो, लेकिन सत्य का हर धर्म में मान है।

धर्म का सार, अभिमानरहित दया

उत्तम पके आम में भी गुठली और छिलका होता है, जो उसकी रक्षा के लिए है। किन्तु जैसे हम गुठली और छिलका छोड़कर उसमें का रस ही खाते हैं, वैसे ही धर्म-ग्रन्थ के मुख्य तत्त्व और सार का ही ग्रहण करना चाहिए।

सब धर्मों का सार है : 'दया' और 'प्रेम'। दया रखो और सचाई पर चलो। तुलसीदासजी ने कहा है : "दया धर्म का मूल है।" और फौरन उन्होंने दूसरी बात भी लिख डाली : "पाप मूल अभिमान।" लोग दया करते हैं, फिर भी मालिक बनकर बैठते हैं। वे संपत्ति का संग्रह करते हैं। पर मालकियत की वृत्ति रखने से दया कैसे कर सकेंगे? क्योंकि दया में मैं मालिक हूँ और वह हीन, ऐसी भावना रखने से तो अहंकार होगा, पाप होगा। यह अहंकार-भावना आ गयी, तो पाप ही है। दया कैसी होनी चाहिए? तुकाराम ने कहा है : जिस तरह बाप अपने बेटे पर दया करता है, उसमें अभिमान का अंश भी नहीं रहता, वैसी ही दया हमें प्राणिमात्र पर करनी चाहिए।

भूदान के कार्य में ऐसी ही भावना होनी चाहिए। हम लोगों से भिक्षा नहीं माँगते। हम लोगों को अपना विचार समझाते हैं, इसलिए वे हमें दान देते हैं। लेकिन अगर हम मालिक बने रहेंगे और दान भी देते जायँगे, तो कोई लाभ नहीं होगा। हमें तो मालकियत छोड़नी ही होगी। हम आपसे गरीबों के लिए जमीन माँगते हैं, हमें उनका हिस्सा चाहिए। इसे अगर आप गरीबों का हक समझकर देंगे, तो आपको मालूम होगा कि आपने कोई उपकार नहीं किया, बल्कि आप पर ही उपकार हुआ है। जहाँ यह नहीं मालूम होगा, वहाँ सच्ची दया नहीं होगी। सच्ची दया अभिमानरहित होती है। सब धर्मों का यही सार है, दया करो और अभिमान छोड़ो। इसी पर हम हमेशा जोर देते और प्रचार करते हैं। बुद्ध भगवान् के नाम से गया में हमने संकल्प किया कि "जब तक बिहार की समस्या हल नहीं होती, हम बिहार नहीं छोड़ेंगे।" हमने यह भगवान् बुद्ध की प्रेरणा से ही किया। हम हिन्दू-धर्म, बौद्ध-धर्म, ऐसा फर्क नहीं करते। धर्म अलग-अलग होते हैं, लेकिन सबका मूलतत्त्व एक ही है।

मुक्ति के लिए एक ही मार्ग है। हमें असत्य में से सत्य में जाना है। 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय' हमें अँधेरे में से उजाले में जाना है। और 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' विकार में से निर्विकार की तरफ जाना है। अलग-अलग तरीकों से यही समझाया गया है। हम सब ऋषियों को मानते हैं, चाहे वे किसी भी धर्म के हों। उन्हींकी प्रेरणा और आशीर्वाद से हमारा काम चलता है।

उन्हींके आशीर्वाद से हमारा कार्य चल रहा है। हमें आज यहाँ बहुत सीखने को मिला। हम नालन्दा में आये और सीखा कि "हमें कौन-सी चीज टालनी चाहिए" और "कौन-सी चीज लेनी चाहिए" तथा "क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए" यह भी हमने यहाँ से सीखा।

नालन्दा
१७-८-'५२

अपरिग्रह में शक्ति भी है : २६ :

संपत्ति-दान का विचार, जब से मैंने जमीन की माँग की, तभी से मेरे मन में था। लेकिन एक-एक कार्य में प्रगति साधे बिना दूसरे काम में शक्ति लगाना ठीक नहीं था। बिहार में जब मैंने प्रवेश किया, तब यह जाहिर था कि यहाँ एक बड़े पैमाने पर काम करना होगा। वैसे तो हर जगह बड़े पैमाने पर काम करना ही है, लेकिन बिहार में उसका आरंभ था। इस आरंभ के समय में ही मैंने सोचा कि केवल भूमि लेने-देने से काम पूरा नहीं होगा। भूमिहीनों को और भी मदद देनी होगी। इसी दृष्टि से आज से करीब एक साल पहले पटना में मैंने संपत्ति-दान की बात रखी। यद्यपि उसके पीछे एक-डेढ़ साल का चिंतन तो था ही, लेकिन मैंने उसके बारे में पहला विवरण पटना में किया।

संपत्तिदान 'निधि' नहीं

यह साफ समझ लेना चाहिए कि संपत्तिदान में कोई 'निधि' इकट्ठा करने की कल्पना नहीं है। इस यज्ञ की यही विशेषता है कि इसमें पाने का तरीका अलग है। यदि कहीं एक जगह निधि इकट्ठा करने की कल्पना होती, तो उसे यज्ञ नहीं कहा जाता। इसमें 'यज्ञ' शब्द निरर्थक नहीं, पूरा समझ-बूझकर जोड़ा गया है। यह एक ऐसा विचार है, जिससे कोई बचता नहीं। हरएक को इसमें आहुति देने का मौका मिलता है। जो धर्म-कार्य सबको लागू होता है—जैसे सत्य आदि, जो अक्षरशः सार्वजनिक याने सब लोगों के लिए है—उसीको 'मुख्य-धर्म' या 'प्रथम धर्म' कहा जाता है : 'नः तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्।'

संपत्ति-दान-यज्ञ आजकल की दूसरी निधियों से बिल्कुल भिन्न है। इसमें हम दान-पत्र लेते हैं, पैसे नहीं। दान का विनियोग दाता स्वयं ही गरीबों की सेवा के लिए करता है। लेकिन गरीबों को भी वह पैसे के रूप में मदद नहीं करेगा। कुछ लोगों ने यह शंका उठायी है और वह ठीक भी है कि इसमें पैसे का दुरुपयोग होगा। लेकिन संपत्ति दान में तो किसी व्यक्ति के लिए पैसे का उपयोग होगा ही नहीं। सामुदायिक कामों के लिए हो सकता है, जैसे कुएँ के लिए सीमेंट खरीद ली या दो-तीन किसानों को मिलाकर एक-बैल जोड़ी दे दी। अब यह कल्पना करना कि वह बैल-जोड़ी भी बेच देगा और इस तरह पैसे का दुरुपयोग होगा, यह कुछ अधिक कल्पना है। हमारी सद्भावना से उसके हृदय में भी सद्भावना पैदा होगी, इसी श्रद्धा पर हम योग चलते हैं। यह कोई अंधश्रद्धा नहीं, अनुभवश्रद्धा है।

सामूहिक लक्ष्मी

जब हम लोग हर गाँव में पहुँचकर घर-घर से छठा, आठवाँ या दसवाँ हिस्सा लेंगे, तब उनसे कोई पैसा तो नहीं लेंगे। लोग अनाज देंगे या दूसरी कोई चीज। ये जो चीजें मिलेंगी, वे भी समूह को मिलेंगी, गाँवों को मिलेंगी और इस प्रकार गाँव-गाँव में सामूहिक लक्ष्मी इकट्ठी होगी। मैं पैसा या संपत्ति शब्द इस्तेमाल नहीं करता, क्योंकि उसमें गलतफहमी होने का संभव है। मैं 'लक्ष्मी' कह रहा हूँ। जैसे, बढ़ई पाँच हल बना देगा, दूसरा कोई दूसरे साधन देगा। तो, वह सब मिलाकर सामूहिक लक्ष्मी ही बनेगी। यही चीज हम गाँववालों से कहेंगे और यही शहरवालों से भी। हम उनसे कहेंगे कि आपकी संपत्ति में दूसरों का भी हिस्सा है। आप अपने-आपको उसका मालिक क्यों समझते हैं? आप भी अपनी संपत्ति के एक हिस्सेदार ही हैं। ऐसा क्यों समझते हैं कि आपका और समाज का कोई विरोध है?

विपरीत-बुद्धि

आखिर कारखाने के मालिक और मजदूर, दोनों के हित परस्पर-विरोधी क्यों समझे जायँ? क्या यह कभी देखा है कि बाप और बेटे का अलग-अलग संगठन होकर वे एक-दूसरे से टकराते हैं? एक अखिल भारतीय बेटों की संस्था हो और दूसरी

अखिल भारतीय बापों की संस्था हो तथा दोनों अपने-अपने हित की रक्षा के लिए एक-दूसरे के विरोध में क्या काम करेंगे ? किन्तु आज तो शिक्षकों और विद्यार्थियों के भी संघ बनते हैं, ऐसा मानकर कि हमारे हित परस्पर-विरोधी हैं। और फिर विद्या की लूट चलती है। यह सब विपरीत बुद्धि है, आसुरी संपत्ति के लक्षण हैं।

शारीरिक श्रम करनेवाले भी हमारी सम्पत्ति के सहभागी हैं, यह विचार हम सम्पत्तिवालों को समझाना चाहते हैं। आजकल लोग शेर का हिस्सा (lion's share) माँगते हैं। यह बड़ा भयानक शब्द है। जंगली जानवरों में यह कानून है कि वही राजा बनता है, जो प्रजा को खाता है। इसलिए जो समाज की सम्पत्ति में से शेर का हिस्सा माँगते हैं, उनसे मैं पूछता हूँ कि हम अपने पर जानवरों का कानून लागू क्यों करें ?

जीवनभर एक हिस्सा देने का विचार

हमारा कानून तो वैसा होना चाहिए, जैसा ईसामसीह ने कहा था कि 'आज की रोटी भगवान् हमें आज दे। कल की रोटी की फिक्र हम आज न करें।' खाने को उन्होंने पाप समझा और कहा कि 'आज का पाप आज ही के लिए काफी है।' हर धर्म ने यही बात कही है : 'अद्यः अद्यः श्वः श्वः'। इसलिए आगे की चिन्ता छोड़ दीजिये, आज की चिन्ता कीजिये। क्या आपके बाल-बच्चे समाज के बाल-बच्चे नहीं हैं ? व्यापार में जिस प्रकार साझा होता है, उसी प्रकार मजदूर और मालिक का साझा क्यों न हो ? हाँ, यह साफ है कि मैं समता की बात कर रहा हूँ। मैं शहरवालों को यही समझाऊँगा कि ग्रामों में से आपने भर-भरकर पाया है, तो गाँववालों का भी अपनी संपत्ति में एक हिस्सा समझो। केवल एकमुश्त दान देकर छूट जाना मत चाहो। आदमी जब शादी करता है, तो वह छूट जाता है या बँधता है ? किसी धर्म-कार्य से आदमी छूटना नहीं चाहता। हाँ, पाप-कार्य से छूटना चाहता है। वह कहता है कि एक बार पाप हो गया, अब दुबारा नहीं करूँगा। इसीलिए मैं संपत्ति-दान देनेवालों से कहता हूँ कि क्या यह पाप-कार्य है कि आप छूट जाना चाहते हैं ? इसे धर्म-कार्य समझकर बार-बार करते रहें, जीवनभर करते रहें।

लोग कहते हैं कि यह बहुत कठिन काम है। लेकिन मैं कहता हूँ कि कठिन नहीं है। एक आदमी ने कहा कि हम हर महीने आपको पचीस रुपये देंगे और जिंदगीभर देते रहेंगे। मैंने कहा, यह ठीक नहीं है, अगर कल आप दरिद्र बन गये, तो आपको अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी होगी। लेकिन निश्चित रकम के बदले अगर आप अपना छठा या कोई भी हिस्सा देने का तय करेंगे, तो उसका जीवन-भर पालन करना आपके लिए संभव होगा। फिर आपको अगर आधी रोटी ही खाने को मिले, तो उसमें से भी छठा हिस्सा आप दे सकेंगे और अगर फाका करना पड़े, तो उस फाके का भी छठा हिस्सा दे सकते हैं। इस प्रकार यदि मेरा विचार समझ में आ जाय, तो उसका बोझ नहीं महसूस होगा। जिस प्रकार आदमी को शरीर का बोझ नहीं लगता, उसी प्रकार धर्म का बोझ भी नहीं लगना चाहिए। धर्म-विचार जीवनदायी विचार होता है।

शुद्धि नहीं, शक्ति भी

खासकर हमें एक चीज यह देखनी है कि अपरिग्रह में शक्ति भी है। अपरिग्रह में शुद्धि है, इसका भान तो हमें रहा है; लेकिन उसमें शक्ति है, इसका भी खयाल करना चाहिए। उसमें सांसारिक शक्ति है, जिससे जीवन उत्तम चलता है। मान लो कि 'गांधी-स्मारक-निधि' के दस करोड़ रुपये इकट्ठे हुए हैं, उसके बदले सौ करोड़ इकट्ठे होते, तो उससे क्या होता? हमारी पद्धति में तो घर-घर में बैंक हो जाता है। उसकी शक्ति की कोई सीमा नहीं। आदान-प्रदान भी उसमें स्थानिक ही होता है। इसलिए वह अतिसुलभ योजना बन जाती है। उसमें से सीधी सामूहिक शक्ति पैदा होती है, रचना और संघटना होती है। त्याग और समय का महत्त्व हमने माना है, लेकिन ये सब शक्तियाँ हैं, इस दृष्टि से हमें सोचना और समझना होगा। हमें जो जमीन आज तक मिली है, उसकी औसत कीमत यदि सौ रुपया एकड़ समझ ल, तो भी बीस लाख एकड़ के बीस करोड़ रुपये हुए। यदि मैंने बीस करोड़ रुपये इकट्ठे किये होते, तो उसमें से कितनी झंझटें पैदा होतीं, और कितना पाप होता!

कागज माँगनेवाला भगवान्

एक अखबारवाले ने मुझ पर व्यंग्य किया था कि "विनोबा को तो न जमीन

चाहिए और न संपत्ति, उसे तो केवल दान-पत्र चाहिए। यह तो कागज माँगनेवाला देव है। फूल से संतोष माननेवाले देवों को जिस तरह तुम फूलों की माला चढ़ा देते हो, उसी तरह इसके गले में दानपत्र डाल दो, तो तुम्हारी 'खर्चत नहीं गठरी; भजो रे भैया राम गोविन्द हरि'।" उसने तो खैर व्यंग्य किया था, लेकिन दरअसल बात वही है। हमारे दिल में उस आदमी के पैसे के बनिस्बत उसके वचन की कीमत कहीं अधिक है। संपत्ति-दान में आज तो यह संरक्षण है कि उसका विनियोग कैसे होगा, इसका निर्देश मैं दूँगा। लेकिन जब करोड़ों दान इस प्रकार मिलने लगेंगे और निर्देश देना भी संभव नहीं होगा, तब तो अपने-आप बँटवारा होने लगेगा। इकट्ठा करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठेगा। पुराने फंडों के साथ इस योजना का जरा भी साम्य नहीं है, यह ठीक समझ लेना चाहिए। बाहर से एकत्र करनेवाली किसी योजना का इसमें अवलंबन नहीं है।

खादीग्राम (मुँगेर)
३-९-'५२

जनता की प्रत्यक्ष इच्छा से ही मसले का हल : ३० :

हम चाहते हैं कि जिस प्रकार बारिश बूँद-बूँद बरसी, उसी प्रकार भूदान-यज्ञ, सम्पत्तिदान-यज्ञ और श्रमदान-यज्ञ में बूँद-बूँद दान मिले, लेकिन हर मनुष्य से मिले, तो इतना बड़ा काम शीघ्र हो जायगा।

मानव-शक्ति का आविर्भाव ही अवतार

कुछ लोग शंका करते हैं कि क्या इस प्रकार दान देने की वृत्ति सबको होगी? मैं कहता हूँ, क्यों नहीं होगी? मानव वही है, जो मनन करता है, विचार को समझता है और उसी पर जिसका जीवन चलता है। हम अगर सत्य विचार सबको समझायें, तो किसीको दान की प्रेरणा क्यों न मिलेगी? एक दिन ऐसा भी था, जब कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि भाप की ताकत से ट्रेनें चल सकती हैं। लेकिन एक वैज्ञानिक निकल पड़ा, जिसने भाप की खोज की और

उसके बाद उसका उपयोग दुनियाभर में हुआ। आखिर भाप क्या चीज है? वह तो कोई चीज ही नहीं, नाचीज है; लेकिन उस वैज्ञानिक शोध के बाद मालूम हुआ कि उसमें कितनी शक्ति है। मनुष्य में क्या-क्या शक्ति छिपी रहती है, इसका अन्दाजा हमें पूरा नहीं हुआ, इसीलिए ऐसी शंका उठती है। लेकिन ज्यों-ज्यों आत्मा का संशोधन होगा, त्यों-त्यों हमारे सामने मानव की एक-एक शक्ति का आविर्भाव होगा। इसीको कहते हैं, 'अ व ता र'। अवतार के मानी हैं, मानव-हृदय की शक्ति का आविर्भाव होना। जहाँ सत्य-निष्ठा प्रकट हो गयी, वहाँ उसने रामचन्द्र का रूप लिया। जहाँ निष्काम कर्मयोग प्रकट हुआ, वहाँ उसने श्रीकृष्ण का रूप लिया। जहाँ करुणा मूर्तिमती हुई, वहाँ उसने बुद्ध का रूप लिया। मनुष्य को अवतार मानना इन्द्रियवशता के कारण होता है। इन्द्रियों को देखने के लिए कुछ चाहिए, इसलिए वह रूप बनाता है। वास्तव में राम, कृष्ण या बुद्ध अवतार नहीं, वहाँ सत्यनिष्ठा, निष्काम कर्मयोग और भूतदया का आविर्भाव हुआ था। जहाँ ऐसी मानवता की शक्ति प्रकट हुई, वहाँ अवतार हो गया! फिर मूर्तिपूजक मनुष्य ने उसमें आरोपण किया। उससे उपासना की सुलभता हुई; लेकिन अवतार शरीर का नहीं, मानव-हृदय की भावना का होता है। जैसे-जैसे आध्यात्मिक संशोधन होता गया, वैसे-वैसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ अवतार हुए। यही समाज के विकास की प्रतिक्रिया है। यह मानना कि मानव-आत्मा में आज तक जितनी शक्ति प्रकट हुई है, उतनी ही रहेगी, संकुचितता और अज्ञान का लक्षण है। आत्मा में अनन्त शक्ति होती है। जैसे-जैसे परिस्थिति, आवश्यकता और माँग पैदा होती है, वैसे-वैसे आत्मा की शक्ति प्रकट होती है।

स्वराज्य के बाद आर्थिक क्षेत्र में शक्ति का अवतार

जब हिन्दुस्तान में अंग्रेज आये और उन्होंने अपनी हुकूमत कायम की, तो एक चमत्कार कर दिखाया। उन्होंने सारे देश को निःशस्त्र कर दिया। तब देश के सामने एक समस्या पैदा हुई कि या तो सारे देश को सदैव के लिए गुलामी में रहना होगा या ऐसी शक्ति का आविष्कार करना होगा, जो बिना शस्त्र के संकट का सामना कर देश को मुक्त कर सके। परिस्थिति में जब ऐसी आवश्यकता

निर्माण हुई, तो 'अहिंसक प्रतिकार' और 'सत्याग्रह' का आविष्कार हुआ। महात्मा गांधी उसके निमित्तमात्र बने। मैंने कई बार कहा है कि वे न होते, तो उनकी जगह कोई दूसरा होता। लेकिन इस शक्ति का आविष्कार होना ही था। और वह लाजिमी ही था, क्योंकि वह परिस्थिति और जमाने की माँग थी। लोगों ने देखा कि अहिंसा में एक बड़ी शक्ति है, जिससे इतनी बड़ी सल्तनत का मुकाबला हुआ और वह सत्ता यह देश छोड़कर चली गयी। उससे चमत्कार यह हुआ कि जालिमों और मजलूमों में प्रेम का नाता बँधा। जालिम मिट गया, मजलूम मिट गया और दोनों दोस्त बने। इस तरह शक्ति का आविर्भाव हुआ और हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ, यह आप जानते हैं। स्वराज्य के लिए प्रयत्न बहुत हुए, परन्तु हिन्दुस्तान के लिए यह आविष्कार विशेष था, क्योंकि इसमें मानव-हृदय की नयी शक्ति का आविर्भाव हुआ।

अब स्वराज्य के बाद हिन्दुस्तान में आर्थिक आजादी, गरीबी का निवारण और साम्ययोग की स्थापना का कार्य प्रस्तुत है। इसलिए आर्थिक क्षेत्र में भी उस शक्ति का आविष्कार होना चाहिए और वह हो रहा है, इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिए ऐसा कभी मत कहिये कि जो अभी तक नहीं हुआ, वह आगे कैसे होगा। वास्तव में इसीलिए भगवान् ने हमें जन्म दिया है। अगर मानव-जीवन में करने के सारे काम कर लिये गये होते, उसके लिए कुछ करने को बाकी न रहता, तो परमेश्वर हमें जन्म ही क्यों देता? लेकिन उसने हमारे लिए कुछ नया पुरुषार्थ ढूँढ़ रखा था और उसके लिए आत्मा में गोता लगाकर नयी शक्ति का आविर्भाव करने की जिम्मेवारी हम पर डाली है।

जनता की परोक्ष और प्रत्यक्ष इच्छा

इसलिए यद्यपि हमें हर दाता की तरफ से बूँद-बूँद पानी की तरह अब तक दान नहीं मिला है और हर कोई दे, ऐसी घटना अभी तक नहीं हुई है, पर वह अब होनेवाली है। हम समझते हैं कि कानून लोगों की इच्छा-शक्ति है, जो उनके चुने नुमाइन्दों के जरिये प्रकट होती है। आखिर कानून भी तो लोगों की शक्ति ही है। अगर लोग इस तरह कानून से वश हो सकते हैं, जो उन्हींका बनाया

होता है, तो वे परमेश्वर के कानून के वश क्यों नहीं होंगे, जो प्रेम का कानून है और जिसका जीवन में हमें अनुभव होता है ? मनुष्य की उत्पत्ति प्रेम से हुई है, प्रेम से उसका पालन होता है और आखिर में भी प्रेम का वह प्यासा प्रेम पा, प्रसन्न होकर जाता है। इस तरह अगर जीवन का आदि, मध्य और अन्त प्रेम पर ही निर्भर है और वही मानव को स्वादु प्रतीत होता है, तो हम पूछते हैं—'माताएँ बिना कानून के बच्चे को पिलाती हैं और इतने सारे लोग बिना कानून के प्रेम का जीवन बिताते हैं, तो उसी प्रेम का एक रूप अपने गरीब भाइयों के लिए सम्पत्ति और भूदान-यज्ञ में हक की तौर पर धर्म समझकर बिना कानून के देना उन्हें क्यों नहीं सूझेगा ?' इस प्रश्न का उत्तर हमें कोई नहीं दे रहा है।

हम मानते हैं कि अगर कानून से काम हो सकता है, जो मनुष्य की परोक्ष इच्छा है, तो प्रत्यक्ष इच्छा से जरूर होना चाहिए और फौरन होना चाहिए। वह आसानी से होना चाहिए और सुन्दर होना चाहिए। इस तरह मौलिक श्रद्धा रख-कर काम करनेवालों को कोई शंका नहीं उठती। जैसे प्रकाश को अन्धकार देखने को नहीं मिलता, वैसे ही हमें भी यह समस्या दिखाई नहीं देती। हम मानते हैं कि अगर ऐसा विश्वास हम समाज को समझा दें, तो समाज फौरन समझ जायगा। वह चीज उसकी आत्मा में भरी हुई है। अगर वह आत्मा के स्वभाव के विरुद्ध होगी, तो वह जबर्दस्ती से भी नहीं समझेगा और कत्ल से भी नहीं समझेगा। पर जब कि एक ही वस्तु ऐसी की जा रही है, जो आत्मा के स्वभाव में है, प्रकृति के अत्यन्त अनुकूल है, तो केवल समझाने की जरूरत है। समझाने पर यह काम हो ही जायगा। इसी श्रद्धा से हम आपके पास पहुँचे हैं और खुशी की बात है कि लोग दे रहे हैं। उन्होंने जितना दिया, उतने की आशा इतने अल्प समय में नहीं की जा सकती थी। हम मानते हैं कि गंगा का उद्गम हुआ है और जो गंगा बह रही है, वह अब नहीं रुकेगी।

खादीग्राम
४-६-'५३

आज सितम्बर की १४ तारीख है। इसी दिन गये साल बिहार में हमने प्रवेश किया था। एक साल पूरा हुआ। इतने दिनों में बिहारी भाइयों के साथ हमारा अच्छा सम्पर्क हुआ। परिचय भी काफी हुआ। हमने देख लिया कि बिहार में बहुत शक्ति पड़ी है, केवल उसे जाग्रत करने की जरूरत है। आपको मालूम है कि अब राजाओं के दिन चले गये। बड़े जमींदारों के दिन भी नहीं रहे। आगे की दुनिया जनता की दुनिया होगी। उसमें आम जनता की आवाज प्रमाण मानी जायगी। आज सारी दुनिया में समता की भूख जगी है। आज का जमाना बराबरी का नाता चाहता है। यह सख्य भक्ति का जमाना है।

सख्य भक्ति और दास्य भक्ति

अर्जुन और भगवान् के बीच सख्य भक्ति का नाता था। दोनों बराबरी से काम करते थे। भगवान् के पास ज्ञान का भंडार था, तो अर्जुन का ज्ञान सीमित रहा। वह पराक्रमी अवश्य था, लेकिन उसकी वह शक्ति भी सीमित रही, जब कि भगवान् की शक्ति निःसीम थी। फिर भी दोनों के बीच सख्यता या बराबरी का संबंध था। भगवान् के लिए अर्जुन के मन में आदर था, लेकिन उनका नाता बराबरी का ही था। इससे भी पहले एक बड़ा अच्छा जमाना था, और वह था दास्य भक्ति का। उस जमाने में स्वामी-सेवक का भाव था। स्वामी और सेवक में परस्पर प्रेम था, लेकिन स्वामी सेवक का पालन-पोषण करता और सेवक स्वामी की भक्ति करता। वह हनुमान् का जमाना था। उसने जो राम की भक्ति की, वह दास्य भक्ति रही।

आज दुनिया में सख्य भक्ति की भूख बहुत है। इसके माने यह नहीं कि जो पूज्य पुरुष हैं, उनके प्रति आदर न होगा। बल्कि आदर के साथ-साथ अब बराबरी का नाता भी रहेगा। जब लड़ाई का मौका आया, तब अर्जुन ने कृष्ण

से पूछा : 'क्या आप हमें मदद करेंगे ? सारथी बनिये और हमारे घोड़ों को सँभालिये।' इस तरह उसने अपने परम पूज्य को घोड़े की सेवा का काम दिया, यह उनका मित्र-संबंध था। हनुमान् के जमाने में समाज-रचना ऐसी थी कि कुछ शक्तिशाली पुरुष स्वामी थे और कुछ सेवा-परायण लोग सेवक। सेवक और स्वामी में प्यार था, झगड़ा नहीं था। लेकिन उस जमाने में विकास की एक मर्यादा थी।

रामचन्द्र राजा राम थे; लेकिन कृष्ण 'राजा कृष्ण' नहीं, गोपाल कृष्ण था, सबका दोस्त ही था। आज के जमाने में स्वामी-सेवक का नाता, फिर चाहे वह प्रेम ही क्यों न हो, काफी नहीं माना जाता। बीच में ऐसा जमाना भी आया, जब कि स्वामी जुल्मी निकले और सेवकों के मन में स्वामी के लिए आदर नहीं रहा। आज भी स्वामी-सेवक के संबंध अच्छे हो सकते हैं, लेकिन आज के जमाने की माँग सख्य भक्ति की है। स्वामी-सेवक का नाता इस जमाने के लिए काफी नहीं है।

सखा के नाते दान की माँग

इसीलिए जब हम दान माँगते हैं, तब यह नहीं कहते कि 'आप बड़े हैं, स्वामी हैं, मालिक हैं, हमें दान दीजिये, हम आपकी सेवा करेंगे, हम पर आपका बड़ा उपकार होगा।' हम तो यही कहते हैं कि 'सब भाई-भाई हैं। अपनी बराबरी का हिस्सा दीजिये।' शंकराचार्य के मत से 'दान' का अर्थ ही 'समान विभाजन' होता है। इसलिए जब कोई हमें सौ एकड़ में से दो एकड़ देता है, तो हम नहीं लेते। अगर हम सेवक-भाव से माँगते, तो दो एकड़ भी ले लेते, उन्हें प्रणाम करते और उनका उपकार मानते। लेकिन आज हम सखा के नाते माँग रहे हैं।

सख्यभाव के आधार पर समाज-रचना

आज की समाज-रचना अब सख्यभाव ही स्वीकार करेगी। गुरु-शिष्य भी आज एक-दूसरे के मित्र बनेंगे। दोनों एक-दूसरे पर प्यार करेंगे। गुरु शिष्य को सिखायेगा और शिष्य भी गुरु को सिखायेगा। जिसके पास जो होगा, वह दूसरे को

देगा और दोनों एक-दूसरे का उपकार मानेंगे। इस तरह बराबरी का नाता मानते हुए गुरु-शिष्य रहेंगे, मालिक-मजदूर रहेंगे और स्वामी-सेवक रहेंगे।

एक जमाना था, जब पत्नी पति को पतिदेव समझती और अपने को दासी कहती। वह जमाना भी खराब नहीं था। लेकिन आज हम एक कदम आगे बढ़ गये हैं। आज की पत्नी पतिव्रता होगी और पति पत्नीव्रती। दोनों एक-दूसरे को देवता समझेंगे। जिसकी योग्यता अधिक होगी, उसीका आदर होगा। अगर पति की योग्यता अधिक हो, तो पत्नी उसका आदर करेगी और पत्नी की योग्यता अधिक होगी, तो पति उसका आदर करेगा। फिर भी दोनों का नाता बराबरी का ही रहेगा। इसे मैं कहता हूँ, "सख्य भक्ति का जमाना"।

हमें जमाने की माँग के अनुसार समाज बनाना होगा। उसके बाद क्या करेंगे, इसका विचार हम आज नहीं करते। किन्तु यह समझ लेना चाहिए कि पुराने जमाने के मूल्य जैसे-के-तैसे न टिकेंगे। तुलसी-रामायण के जमाने में जो मूल्य थे, वे आज नहीं रहे। उस जमाने में ब्राह्मण श्रेष्ठ था, लेकिन आज के जमाने के रामायण में केवल ब्राह्मण ही श्रेष्ठ नहीं समझा जायगा। जहाँ अच्छाई होगी, वहाँ उसका आदर होगा, लेकिन नाता बराबरी का रहेगा।

इस जमाने में भी कारखानेदार और मजदूर रहेंगे। किन्तु एक में अक्ल ज्यादा रहेगी, तो मजदूर यह कभी नहीं कहेगा कि आप मालिक हैं और हम आपके नौकर। अब यह नाता नहीं चलेगा, अब तो दोनों साझेदार बनेंगे। कारखानेदार को अपनी अक्ल का मेहनताना मिलेगा और मजदूर को भी अपनी ताकत का उतना ही मेहनताना मिलेगा, मेहनताना सबका समान होगा। जिसकी योग्यता अधिक होगी, उसका आदर किया जायगा; लेकिन सब एक-दूसरे के मित्र और साथी रहेंगे।

आज के जमाने में भाई-भाई, गुरु-शिष्य और पति-पत्नी के नाते नये सिरे से बनेंगे। उसमें एक नया मजा आयेगा। पुराने जमाने में भी मजा था, लेकिन अब वह बिगड़ गया। आज पत्नी साध्वी होने पर भी उसकी कद्र नहीं रही। जहाँ नाते में बुराई आयी, वहाँ नये जमाने की माँग सामने आ गयी। आज अगर खुद रामचन्द्र भी पृथ्वी पर आकर 'राजा राम' बनना चाहें, तो हमें वह

कबूल नहीं होगा। महात्मा गांधी भी आयें, तो हम उन्हें 'राजा गांधी' नहीं बनायेंगे, महात्मा ही रखेंगे। पुराने जमाने में अच्छे भी राजा हुए, लेकिन उनसे ज्यादा बुरे राजा हुए। उस जमाने में प्रजा का विकास एक हद तक होता था। लेकिन आज जमाना आगे बढ़ गया है।

जमाने के खिलाफ कोई टिक नहीं सकता

जो लोग बदले जमाने के अनुसार बर्ताव करना नहीं चाहते, वे हार खाते और मार भी खाते हैं। आदमी प्रवाह में न भी तैरे, तो वह आगे बढ़ सकता है। लेकिन अगर वह प्रवाह के विरुद्ध जायगा, तो कुछ व्यायाम हो जाने पर भी वह आगे नहीं बढ़ सकता। आदमी कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसकी पुरानी शान, ठाठ और रोब अब नहीं चलेगा। हमारे पास इसकी एक मिसाल भी है। परशुराम कितने महान् पुरुष थे। उनकी धाक भी थी। इक्कीस बार उन्होंने पृथ्वी को निःक्षत्रिय किया। वे अवतार ही थे। किन्तु जब रामचन्द्र का नया अवतार हुआ, तो उन्हें पहचान लेना चाहिए था कि अब नया अवतार हो गया। लेकिन उन्होंने नहीं पहचाना और राम का मुकाबला किया। उसमें वे हार गये। परशुराम जैसा बलशाली भी जहाँ जमाने के खिलाफ नहीं टिक पाया, वहाँ दूसरा कौन टिक सकेगा? पुराने ढंग अच्छे भी हों, तो भी नये जमाने में वे अच्छे साबित नहीं होते।

प्रेम बराबरी का चाहिए

आज कार्यकर्ताओं से बातें करते हुए हमने कहा कि 'हमें छठा हिस्सा चाहिए', इसका अर्थ कोई टैक्स वसूल करना नहीं है। मैं तो विचार समझा रहा हूँ कि जमीन, संपत्ति और उत्पादन के साधन पर अब सबका समान हक है। जो जमाने की माँग बताता है, उसे लोग उद्धत कहते हैं। किन्तु यदि आप उसे उद्धत समझेंगे, तो वह उद्धत बनेगा। लेकिन यदि जमाने की भूख को पहचानो, तो सारे माँगनेवाले नम्र रहेंगे, छोटे-बड़ों का आदर करेंगे।

लोग कहते हैं कि आजकल बच्चे माता-पिता का आदर नहीं करते। लेकिन बचा तो बचपन से ही माँ पर पूर्ण श्रद्धा रखकर काम करता है। माँ यदि कहती

है कि वह चाँद है, तो बच्चा उसे मान लेता है। वह यह नहीं कहता कि 'ठहरो, हमें तहकीकात कर लेने दो—यह सचमुच चाँद है या नहीं।' आश्चर्य है कि इतनी श्रद्धा होते हुए भी लोग कहते हैं, बच्चे माँ-बाप का नहीं मानते। मैं तो यही कहूँगा कि माता-पिता जमाने को नहीं समझते। माता-पिता बच्चों के साथ बराबरी के नाते से रहें और बराबरी के नाते से उन्हें प्यार करें। उन्हें हुक्म न दें, सलाह दें। आज्ञा न दें, पीटें नहीं। पहले माता-पिता बच्चों को पीटते थे, लेकिन प्रेम से पीटते थे। इस जमाने में यह नहीं चलेगा। अब तो माता कहेगी कि 'तुम्हें सजा नहीं दूँगी, अपने-आपको दंड देकर भूखी रहूँगी'। लोग पूछते हैं कि बच्चे को भी नहीं पीटना चाहिए। मैं कहता हूँ कि जो बच्चा बचपन से आप पर श्रद्धा रखता है, उसे पीटने का सवाल ही नहीं उठता। आज केवल प्रेम नहीं चाहिए, बराबरी का प्रेम होना चाहिए।

जमाने की माँग है

सबकी अपनी-अपनी विशेषता और कमजोरी भी होती है। मजदूर में यदि बुद्धि कम है, तो हृदय ज्यादा हो सकता है। वह किसीके लिए मर मिटने को तैयार हो सकता है। इसलिए बराबरी का प्रेम होना चाहिए, कोरा प्रेम अपर्याप्त है। अगर भूदान-यज्ञ जमाने की माँग के अनुकूल नहीं होता, तो छोटे लोग हमें जमीन नहीं देते और बड़ों में से भी कुछ लोग हमें धता बताते। तब जो लोग देते, उनका हमें उपकार मानना पड़ता। किन्तु आज तो हम हरएक से जमीन माँगते हैं, क्योंकि हम सबको कहना चाहते हैं कि तुम जमीन के मालिक नहीं हो। गरीब के घर यदि छठा लड़का होगा, तो क्या वह उसे हिस्सा नहीं देगा? जरूर देगा। इसी तरह हम सबसे माँगते हैं और हमें मिलता है। हम तो अब कहते हैं कि जितने काश्तकार हों, उतने दान-पत्र मिलने चाहिए। जब कोई आदमी जमाने की माँग को पहचानता और धर्म-भावना जाग्रत करता है, तो हरएक के लिए वह बात मानना लाजिमी हो जाता है। यह एक नव-विचार है, जो मैंने अपनी थैली में से नहीं निकाला, जमाने से ही लिया है। इस विचार को फैलाने की दृष्टि से काम कीजिये, सिर्फ भूमि प्राप्त करने की दृष्टि से नहीं। जब आप लोगों को

समझायेंगे कि सख्य भक्ति का जमाना आ गया, तब आपको काम में सफलता मिलेगी।

कियाजोरी
१४-९-'५२

भेदासुर का अन्तःकालीन आक्रोश : ३२ :

[गत १९ सितम्बर को देवघर में प्रार्थना-प्रवचन के बाद पूज्य विनोबाजी अपने साथियों के साथ हरिजनों को लेकर वैद्यनाथ महादेवजी के मन्दिर में दर्शन के लिए गये। वे उन मन्दिरों में नहीं जाते, जहाँ हरिजनों को प्रवेश नहीं मिलता। पर देवघर के सरदार पंडा ने, जो उस मन्दिर के प्रबन्धक हैं, सूचना दी थी कि इस मन्दिर में न तो हरिजनों का प्रवेश निषिद्ध है और न उन लोगों को जाने पर उन्हें कोई आपत्ति ही होगी। सूचना मिलने पर ही विनोबाजी ने मन्दिर में जाने का निर्णय किया। मन्दिर में जाने के बाद जो घटना हुई, उसे सब लोग जानते हैं। पंडों ने जिस तरह विनोबाजी के साथियों को मारा-पीटा और उन पर भी प्रहार किया, वह नैतिक और धार्मिक दृष्टि से तो निन्दनीय है ही, साथ ही हरिजनों को मन्दिर में न जाने देना भारतीय संविधान के अनुसार भी अपराध है। इस घटना पर विनोबाजी ने निम्न वक्तव्य दिया।]

कल वैद्यनाथधाम में हरिजनों को लेकर अपने साथियों के साथ हम महादेवजी के दर्शन के लिए गये। महादेवजी के दर्शन तो हमें नहीं मिल सके, लेकिन प्रसादस्वरूप उनके भक्तों के हाथ की मार अवश्य मिली। इस सिलसिले में लोग हमसे पूछते हैं, इसलिए मैं यह निवेदन उपस्थित कर रहा हूँ। आरम्भ में यह कह देना चाहता हूँ कि जिन्होंने मारपीट की, उन्होंने अज्ञानवश वैसा किया। इसलिए मैं नहीं चाहता कि उन्हें कोई सजा मिले। मुझे इस बात से बहुत ही संतोष हुआ कि जो सैकड़ों भाई मेरे साथ गये थे, सभी शान्त रहे। इतना ही नहीं, मेरे साथियों ने, जिन पर बहुत ज्यादा मार पड़ी, कहा कि 'उस समय हमारे मन में कोई गुस्सा भी नहीं था।' मैं समझता हूँ कि जिस देश में

ऐसे निर्वैर सेवक मौजूद हों, सचमुच उस पर प्रभु की कृपा है। मारपीट करने-वाले तो केवल क्रोध के वश हो गये थे, क्योंकि उस समय उन्होंने स्त्री-पुरुष का भी भेद न पहचाना। मुझे विश्वास है कि यह भेदासुर का अन्तःकालीन आक्रोश ही सिद्ध होगा।

जबर्दस्ती से या केवल कानून के बल से मन्दिर-प्रवेश करने की मेरी इच्छा नहीं थी। उल्टे मैंने यह रिवाज रखा है कि जहाँ हरिजनों को प्रवेश नहीं मिलता, उस मन्दिर में मैं जाता ही नहीं। पर यहाँ हमने जब पूछा, तो कहा गया कि मन्दिर में हरिजन जा सकते हैं। इसीलिए हम लोग शाम की प्रार्थना के बाद श्रद्धापूर्वक दर्शन के लिए निकले। रास्ते में हम लोगों ने मौन रखा था। मैं तो मन-ही-मन महादेव की स्तुति के वैदिक-सूक्त का चिन्तन करता जा रहा था। उस हालत में जब हमारे ऊपर अनपेक्षित मार पड़ी, तो उससे मुझ पर एक विशेष उत्साह चढ़ा। साथियों ने मुझे घेर लिया था, इसलिए मारनेवाले मुझ पर जो भी सीधा प्रहार करते, उसे साथी लोग झेल लेते, फिर भी यज्ञशेष के तौर पर कुछ मुझे भी चखने को मिला। जिनके चरणों का मैं दास कहलाता हूँ, उन पर भी इसी धाम में ऐसा ही प्रहार किया गया था, वह घटना मुझे याद आ गयी। वही भाग्य मुझे प्राप्त हुआ, इसलिए कुछ धन्यता अनुभूत हुई।

मैंने पहले ही कहा है कि मैं नहीं चाहता कि किसीको सजा मिले। लेकिन स्वराज्य के संविधान का स्पष्ट उल्लंघन हुआ है। उसका परिमार्जन छोटी-छोटी सजा से हो भी नहीं सकता। अतः ऐसी घटना दुबारा न होने पाये, इसका बन्दोबस्त होना चाहिए। मैं तो समझता हूँ कि ऐसे देवस्थान पर सरकार कब्जा कर ले, तो भी अनुचित नहीं होगा और शायद उससे ठीक बन्दोबस्त हो सकेगा। मैं यह कोई सुझाव नहीं पेश करता, बल्कि एक प्रकट चिन्तन कर रहा हूँ।

यह विज्ञान का जमाना है। हरएक धर्म बुद्धि की कसौटी पर कसा जा रहा है। यह ध्यान में रखकर हमारा समाज बरतेगा, तो अच्छा होगा।

देवघर
२०-९-'५३

साम्ययोग का समग्र दर्शन

भूमिदान-यज्ञ के पीछे जो मूल विचार है, उसका नाम हमने "साम्ययोग" रखा है। हम इसी साम्ययोग के आधार पर सर्वोदय-समाज का निर्माण करना चाहते हैं। सर्वोदय-समाज के बारे में आप जानते ही हैं कि वह बहुसंख्यकों का नहीं, सारे समाज का हित चाहता है। जिस साम्ययोग की बुनियाद पर यह विचार खड़ा है, आज उसीके बारे में हम विस्तार से समझाना चाहते हैं। आप जानते हैं कि आज दुनिया में तीन विचार चल रहे हैं, जिनमें एक तो पूँजीवाद है, जो पुराना विचार है। इसका दावा है कि हम क्षमता पैदा करना चाहते हैं। दूसरा लोकशाही समाजवाद का है और तीसरा है साम्यवाद। साम्यवाद का दावा है कि हम सबको समान भाव से जीवन की सब चीजें देना चाहते हैं।

क्षमतावादी पूँजीवाद

दुनिया में प्रचलित इन तीनों विचारों में से हम पहले पूँजीवाद को ले लें। पूँजीवाद, जैसा कि मैंने अभी कहा, क्षमता का हामी है। वह कहता है कि कुछ लोगों की योग्यता कम है, इसलिए उन्हें कम मिलना चाहिए। कुछ लोगों की योग्यता ज्यादा है, इसलिए उन्हें ज्यादा मिलना चाहिए। वह योग्यता के अनुसार पारिश्रमिक देकर समाज में क्षमता लाना चाहता है। इससे कुछ लोगों का जीवन ऊँचे स्तर तक चला गया है, लेकिन बहुत सारे लोगों का जीवन तो बिलकुल खाई में गिर गया है। पूँजीवाद के पास इसका कोई इलाज नहीं है। उसका तो साफ कहना है कि जो नालायक हैं, उनके लिए इसके सिवा कोई मार्ग नहीं कि वे नालायक बने रहें और जो लायक हैं, वे दुनिया के सुख-साधनों से लाभ उठायें, यह अनिवार्य है। इसीलिए आज दुनिया दुःखी है और पूँजीवाद के समर्थक भी कम हैं। फिर भी वह चल रहा है। लेकिन आज नहीं, तो कल वह टूटने-वाला ही है।

लोकशाही समाजवाद

लोकशाही में हरएक को एक वोट रहता है। वोट के बल पर सारा काम चलता है। उसमें अल्पसंख्यकों की रक्षा नहीं होती, बहुसंख्यकों की होती है। लोकशाही समाजवाद का कहना है कि उसमें सबकी रक्षा ही है, किन्तु इसके कारण निर्माण होनेवाली बुराइयों को दुरुस्त करने का इलाज समाजवाद के पास नहीं है। जब तक बहुसंख्यकों की राय से ही अल्पसंख्यकों के हित की रक्षा करने की कोशिश की जायगी, तब तक पूरा समाजवाद नहीं आ सकता।

वर्ग-संघर्षवादी साम्यवाद

कम्युनिज्म (साम्यवाद) कहता है कि आज के ऊँचे वर्ग को खतम किये बगैर समता नहीं आ सकती। वर्ग-संघर्ष और जिनके हाथ में सत्ता है, उन्हें खतम किये बिना चारा नहीं। उतनी हिंसा अब लाजिमी और धर्मरूप है। किन्तु स्पष्ट है कि इस विचार से भी दुनिया में शांति नहीं हो सकती, क्योंकि हिंसा में से प्रतिहिंसा ही निर्माण होती है, चाहे थोड़ी देर वह सिर दबाकर बैठ जाय। इतना ही नहीं, उसके कारण मनुष्यता का मूल्य और प्रतिष्ठा भी घट जाती है।

आत्मवाद पर आधृत साम्ययोग

किन्तु साम्ययोग का मानना है कि हरएक मानव में एक ही आत्मा समान रूप से बसती है। साम्ययोग मानव-मानव में भेद नहीं करता, बल्कि मानव-आत्मा और प्राणिमात्र की आत्मा में भी बुनियादी भेद नहीं मानता। हाँ, इतना ही मानता है कि मानव की आत्मा में जो विकास संभव है, वह दूसरे प्राणियों की आत्मा में नहीं हो सकता। मानवों में भी सबका विकास समान नहीं होता, यद्यपि शिक्षण से विकास संभव है। किन्तु प्राणियों की आत्मा का शिक्षण के बावजूद विकास संभव नहीं। चूँकि सृष्टिमात्र में एक ही आत्मा का अधिष्ठान है, इसलिए जहाँ तक हो सके, हमें प्राणिमात्र की रक्षा का प्रयत्न करना चाहिए।

'साम्यवाद' और 'साम्ययोग' में यही अन्तर है कि साम्यवाद आत्मा की एकता को नहीं मानता और साम्ययोग मानता है। इतना ही नहीं, साम्ययोग उसके आधार पर गहराई में भी जाना चाहता है। इसीलिए नैतिक, आर्थिक, सामाजिक

और राजनैतिक क्षेत्रों में इसके क्रांतिकारी परिणाम होते हैं। जब हम एक बुनियादी आध्यात्मिक विचार ग्रहण करते हैं, तो जीवन की अनेक शाखाओं में प्रवेश करते हैं। अपनी बुद्धि-शक्ति के मालिक हम नहीं, भगवान् हैं। और चूँकि हमारे सभी गुण समाज के लिए हैं, इसलिए हमें चाहिए कि अपने पास की सारी शक्तियों को ईश्वर की देन मानें और समाज को अर्पण कर दें। हम तो अपने शरीर के भी मालिक नहीं, उसके ट्रस्टी मात्र हैं। साम्ययोग कहता है कि सम्पत्ति किसी रूप में भी क्यों न हो, उसके मालिक हम नहीं हैं। साम्ययोग और साम्यवाद में यही बड़ा भारी फर्क है।

'ट्रस्टीशिप' का क्रांतिकारी विचार

आज तक लोग अपने को सम्पत्ति का मालिक मानते आये। उसमें हितों का विरोध निर्माण होता है। किन्तु जहाँ 'ट्रस्टीशिप' का विचार आता है, वहाँ पूरी वैचारिक क्रांति होती है। याने अपनी-अपनी चीजों पर हम जो अपनी मालकियत मानते हैं, वह गलत है। हमारे पास जितनी भी शक्तियाँ हैं, समाज की सेवा के लिए हैं, व्यक्तिगत स्वार्थ साधने के लिए नहीं। व्यक्तिगत स्वार्थ तो अपने स्वार्थ को समाज के चरणों में समर्पित कर देने में ही है। सारे समाज को अपना स्वार्थ अर्पण कर देना और समाज के हित के लिए सतत प्रयत्न करना ही हमारा स्वार्थ है। यही नैतिक विशेषता साम्ययोग में से निर्माण होती है।

साम्ययोग की अर्थनीति

अब हम साम्ययोग के कारण आर्थिक क्षेत्र में भी किस प्रकार क्रांति होती है, यह देखें। हमारे पास जो भी शक्तियाँ हैं, उन्हें हम अपनी नहीं मानते। कोई भी व्यक्ति अपनी शक्तिभर समाज का पूरा काम करता है, तो वह रोटी का हकदार हो जाता है। एक बिना आँख का आदमी, अपनी इस कमी के बावजूद जो कुछ बनता है, पूरी शक्ति से करता है, तो वह खाने का हकदार है, भले ही आँखवाले की अपेक्षा उसकी सेवा की मात्रा कम हो। कम-ज्यादा शक्ति के अनुसार सेवा कम-ज्यादा हो सकती है। किन्तु पोषण भौतिक वस्तु है और सेवा नैतिक वस्तु। नैतिक वस्तु की कीमत भौतिक वस्तु से नहीं हो सकती। क्या किसी डूबते हुए को

बचाने की दस मिनट की सेवा का मूल्य रोजी के हिसाब से आँका जा सकता है ? माँ अपने बच्चे की सेवा करती है, लड़का अपने पिता की सेवा करता है, मंत्री अपने समाज की सेवा करता है; लेकिन इन सब कामों की कीमत पैसों में नहीं आँकी जा सकती। भला जिस सेवा में हृदय डाला गया हो, उसकी कीमत पैसे में कैसे हो सकती है ? पुत्र ने माता को जो कुछ दिया, विद्यार्थी ने गुरु को जो कुछ दिया, किसान ने समाज को जो कुछ दिया, उसकी कीमत नहीं हो सकती।

नैतिक मूल्यों के समान आर्थिक क्षेत्रों में भी श्रम का मूल्य समान होना चाहिए। किन्तु आज इससे बिलकुल उल्टा होता है। आज शारीरिक काम की अपेक्षा बौद्धिक काम की मजदूरी ज्यादा दी जाती है। उसकी प्रतिष्ठा भी ज्यादा होती है। लेकिन इस तरह का फर्क बिलकुल वेबुनियाद है। चूँकि साम्ययोग का विचार आत्मा की समता पर निर्भर है, इसलिए आर्थिक क्षेत्रों में भी वह कोई भेद स्वीकार नहीं कर सकता। हाँ, सेवक की भूमिका के अनुसार सेवा के प्रकारों में भेद हो सकता है। जो सेवा माँ कर सकती है, वह पुत्र नहीं कर सकता। जो सेवा पुत्र कर सकता है, वह माँ नहीं कर सकती। जो सेवा स्वामी कर सकता है, वह सेवक से बन नहीं पाती। सेवक से जो सेवा बन आती है, वह स्वामी से नहीं बन पाती। भाई जो सेवा कर सकता है, वह बहन नहीं कर सकती और न बहन का काम भाई ही कर सकता है। इस तरह व्यक्ति-भेद और शक्ति-भेद के अनुसार सेवा-भेद भले ही हो, लेकिन चिंता सबकी समान होनी चाहिए। हरएक उँगली कम-बेश काम देती है, पर वे हैं सब समान, भले ही एक से जो काम होता है, वह दूसरी से नहीं हो पाता। इसी तरह समाज में हरएक की सेवा का प्रकार भिन्न हो सकता है, पर उसका आर्थिक मूल्य समान ही होना चाहिए।

साम्ययोग के सिद्धान्त के अनुसार जब नैतिक मूल्यों में अन्तर नहीं आता, तो आर्थिक क्षेत्र में भी अन्तर न आना चाहिए। हरएक को विकास का पूर्ण मौका मिले, तालीम का अवकाश मिले। विद्यार्थी अपनी ग्रहण-शक्ति के अनुसार तालीम ग्रहण करेंगे। यह नहीं हो सकता कि फलाना लड़का गरीब का है, इसलिए उसकी तालीम का प्रबन्ध नहीं और फलाना लड़का श्रीमान् का है, इसलिए उसकी तालीम का प्रबन्ध है। अगर हम इस तरह समाज के मूल्य रखेंगे, तो सबका

विकास न हो सकेगा। समान मौका मिलने पर जिसमें जो योग्यता होगी, वह उस धन्धे में प्रवेश कर सकेगा। मजदूरी का परिणाम कम-बेश होने पर विकास गलत तरीके से होगा और व्यर्थ ही दूसरे क्षेत्रों का आकर्षण होगा, जैसा कि आज हो रहा है। समान वेतन से यह वृत्ति रुकेगी।

विकेन्द्रीकरण

इस विचार का आर्थिक क्षेत्र में यह परिणाम होगा कि गाँव-गाँव पूर्ण स्वावलंबी बनेंगे। अनाज, कपड़ा, घी, दूध आदि प्राथमिक आवश्यकताओं की सभी चीजें हर गाँव में पैदा होंगी और हर गाँव स्वयं-पूर्ण बनेगा। यह भी पूर्ण और वह भी पूर्ण होगा, दोनों की पूर्णता से समता का निर्माण होगा। अगर यह भी अपूर्ण रहा और वह भी अपूर्ण रहा, तो दोनों की अपूर्णता से समता निर्मित नहीं हो सकती। बुनियादी चीजों की पूर्ति देहातों में ही होनी चाहिए। भगवान् ने सबको परिपूर्ण बनाया है। अक्ल और ताकत कम-बेश होती है, पर भगवान् की योजना इतनी विकेंद्रित है कि सबका विकास हो सकता है। वैसी ही विकेंद्रित योजना हम चाहते हैं। अगर आर्थिक क्षेत्र में समता न होगी, तो ऊँच-नीच का भेद बढ़ेगा, परावलंबन पैदा होगा और एक आत्मा दूसरी आत्मा की गुलाम बनेगी। इसलिए हम विकेंद्रित अर्थ-व्यवस्था चाहते हैं।

साम्ययोग की राजनीति और समाजनीति

इसी तरह राजनैतिक क्षेत्र में भी हमारे आज के मूल्य बदल जायँगे। हम न सिर्फ शोषण-रहित, बल्कि शासन-मुक्त समाज की रचना चाहते हैं। साम्ययोग की कल्पना के अनुसार शासन गाँव-गाँव में बँट जायगा। याने गाँव-गाँव में अपना राज होगा, मुख्य केंद्र में नाममात्र के लिए सत्ता रहेगी। इस तरह होते-होते शासन-मुक्त समाज बन जायगा।

सामाजिक क्षेत्र में भी जाति-भेद या ऊँच-नीच का भाव न रहेगा। अगर किसीमें ब्राह्मण का गुण है, तो उसे उसके कारण दूसरों से अपने को उच्च मानने का कोई कारण नहीं। इसी तरह मेहतर, चमार आदि भी नीच नहीं समझे जा सकते। उनके बिना भी समाज का काम नहीं चलता।

क्रांति : नैतिक मूल्यों में परिवर्तन

इस तरह साम्ययोग नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में परिवर्तन लाना चाहता है। इसीको 'क्रांति' कहते हैं। आजकल लोग हिंसा को ही 'क्रांति' समझते हैं। किन्तु जहाँ बुनियादी चीजों में क्रांति नहीं, वहाँ ऊपर-ऊपर के परिवर्तन को क्रांति कहना गलत होगा। क्रांति तभी होती है, जब हम अपने नैतिक जीवन में परिवर्तन करते हैं। हमारा दावा है कि साम्ययोग नैतिक मूल्यों में परिवर्तन करता है, क्योंकि उसकी बुनियाद आध्यात्मिक है और वह जीवन की सारी शाखा-उपशाखाओं में आमूलाग्र क्रांति करता है।

साम्ययोग की व्यापक दृष्टि

यह भूदान तो एक फच्चर है। आरंभ में विचार समझने के लिए मोह-ममता से मुक्त होने का यह विचार है। लेकिन मुक्त हों कैसे? तो शुरू करना है जमीन की मालकियत से, मुक्ति पाने के काम से। दान देना किसी पर मेहरबानी नहीं। हमारी आखिरी कल्पना तो यह है कि गाँव की जितनी भूमि है, वह सब गाँववालों की है। आगे चलकर हम यह कहेंगे कि अगर प्रांत में भूमि कम और लोग ज्यादा हैं, तो इस प्रान्त के लोग उस प्रांत में जाकर बस सकते हैं। इसी तरह इस देश के दूसरे देश में भी जा सकें। आखिर समग्र पृथिवीमाता पूर्ण मुक्त है। जो जहाँ रहना चाहे, रह सके, जो जहाँ सेवा करना चाहे, कर सके। इस तरह हम दुनिया के नागरिक बनना चाहते हैं। और आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक भेद रखना नहीं चाहते। जमीन कम हो या बहुत, परमेश्वर की देन है। हम उसके मालिक नहीं बन सकते। हिन्दुस्तान के लोग हिन्दुस्तान के मालिक, जर्मनी के लोग जर्मनी के मालिक, यह विचार ही गलत है। जितनी सारी हवा है, जितना सारा पानी है, जितनी सारी रोशनी है और जितनी सारी धरती है, वह सारी-की सारी सबकी है। यही हमारे साम्ययोग की व्यापक दृष्टि है।

बाराहार
२६-९-'५२

हमारा देश बड़ा है। लेकिन वह यों ही बड़ा नहीं बना, इसके पीछे महान् सभ्यता और संस्कृति पड़ी है। बहुत दीर्घ प्रयत्न हुआ है और उसीके परिणाम-स्वरूप यह देश बड़ा बना है। उस प्राचीन सभ्यता का सन्देश देश के इस सिरे से उस सिरे तक पहुँचाया जा चुका है। उन दिनों, जब कि आज की तरह संदेश पहुँचाने के बड़े-बड़े साधन मौजूद नहीं थे, पैदल-ही-पैदल घूम और गाँव-गाँव, घर-घर जाकर जबान से सन्देश पहुँचाना पड़ता था, सर्वत्र विचार से स्फूर्ति निर्माण हुई, देश के कोने-कोने में विचार जा पहुँचा।

उत्तर और दक्षिण का मिलन

एक जमाना था, जब कि उत्तर और दक्षिण भारत में उतना सम्बन्ध नहीं था, जितना आज है। उत्तर में बुद्ध, महावीर पैदा हुए और उनका संदेश दक्षिण भारत तक पहुँचा। बुद्ध और महावीर प्रचार करते गये, परिणामस्वरूप दक्षिण और उत्तर भारत एक बन गया। उनके जमाने के पहले यह सन्देश वैदिकों ने अपने ढंग से फैलाया, पर उसे व्यापक स्वरूप देने का काम बुद्ध और महावीर ने किया। वैदिक विचार-धारा उत्तर भारत से निकली और दक्षिण में रामेश्वर में जाकर मिल गयी। उसके बाद विचार की दूसरी लहर दक्षिण से निकली और उत्तर में आने लगी। शंकराचार्य, रामानुज, माधव आदि प्रचारक निकले और उन्होंने जो सन्देश उत्तर से दक्षिण पहुँचा था, उसमें अपनी विशेषता डाल और वृद्धि कर वापस उत्तर भारत में पहुँचा दिया। दक्षिण में आत्मज्ञान का जो विचार गया, दक्षिणवालों ने उसमें भक्ति की वृद्धि की और भक्ति के साथ-साथ उसे उत्तर-भारत में वापस पहुँचा दिया। परिणामस्वरूप उत्तर और दक्षिण भारत वैचारिक दृष्टि से एक राष्ट्र बना। वैसे तो यहाँ अनेक प्रान्तों में अनेक राज्य थे, लेकिन कश्मीर से कन्याकुमारी तक विचार का राज्य एक ही चला।

और लोगों को उससे प्रेरणा मिली। काशी के लोग गंगा का पानी लेकर दक्षिण जाते और रामेश्वर में भगवान् के मस्तक पर अभिषेक करते। उधर दक्षिण के लोग समुद्र का पानी लेकर उत्तर आते और काशी के विश्वनाथ पर अभिषेक करते। बुद्ध और महावीर ने गंगा का पानी दक्षिण भारत तक पहुँचाया। इस तरह दक्षिण भारत में अत्यन्त ज्ञानवान्, भक्तिमान्, आचार्य, सन्त पुरुष निकले और उन्होंने सारे भारत में भक्ति-मार्ग फैलाया।

हमारी प्राचीन एकता

कुछ लोगों का खयाल है कि अंग्रेजों ने इस देश को एकता प्रदान की, पर वह गलत है। अंग्रेजों की कोशिश तो यही रही कि इस देश के जितने टुकड़े हो सकें, उतने किये जायँ। परिणामस्वरूप आप देख रहे हैं कि पाकिस्तान अलग हुआ, ब्रह्मदेश (बर्मा) भी अलग हुआ और लंका भी अलग हो गया। वास्तव में भारत की एकता यहाँ के बुनियादी विचार पर स्थिर हुई है। अंग्रेजों और दूसरे देशों के इतिहासकारों ने भी यह जान लिया कि सारा हिन्दुस्तान एक है। यही कारण है कि यहाँ जो मराठों और राजपूतों के बीच जो लड़ाइयाँ हुई, वे इतिहास में गृह-युद्ध (सिविल वार) कही गयीं। ऐसी ही लड़ाइयाँ यूरोप में होती हैं, पर वे 'सिविल वार' नहीं मानी जातीं। हिन्दुस्तान के खयाल से देखा जाय तो वे सिविल वार ही थीं, फिर भी वे राष्ट्रीय मानी गयीं। सारांश, अंग्रेजों के यहाँ आने के पहले ही समूचा हिन्दुस्तान एक हो चुका था। उत्तर हिन्दुस्तान से दक्षिण हिन्दुस्तान तक परस्पर विचारों की लेन-देन हुई। इस तरह बहुत ही विशाल प्रयत्न और विचार-प्रचार के बाद हिन्दुस्तान एक हुआ है।

विज्ञान से विश्वव्यापी विचार-प्रचार

अब मौका आया है कि विचार के ये आन्दोलन एक देश तक ही सीमित नहीं रह सकते, बल्कि पूरब से पश्चिम और पश्चिम से पूरब बहने लगेंगे। जैसे यहाँ उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर विचार गये, वैसे ही विज्ञान ने यह हालत ला दी है कि अब सारी दुनिया के विचार हिन्दुस्तान में आयेंगे और हिन्दुस्तान से

सारे देशों में जायँगे। विज्ञान जब से आया, तब से देशव्यापी आन्दोलन के बजाय विश्वव्यापी आन्दोलन होने लगे हैं। पूरब के देश विज्ञानहीन थे और पश्चिम में विज्ञान शुरू हो गया था। वहाँ से वह यहाँ पहुँच गया। तब लाजिमी था कि विज्ञान-विहीन विज्ञानवालों के वश हो जायँ। जैसे उत्तर भारत से आत्म-ज्ञान दक्षिण पहुँचा, तो दक्षिण भारत उत्तर भारत के वश हो गया और दक्षिण भारत से भक्ति-मार्ग उत्तर भारत पहुँचा, तो उत्तर दक्षिण भारत के वश हो गया। उसी तरह अब विज्ञान का प्रचार पश्चिम में होकर वह वहाँ से बहता हुआ पूरब में आया, तो दूसरे राष्ट्र उसके वश हो गये। यह कोई दुःखद घटना नहीं। इस तरह एक देश का दूसरे देश पर जो आक्रमण हुआ, उसे हम दूर दृष्टि से देखते हैं और इसीलिए उसे दुःखद नहीं मानते, यद्यपि उसमें बहुत-सी दुःखद बातें हुई हैं।

सामूहिक अहिंसा का निर्माण

हिन्दुस्तान की आध्यात्मिक संस्कृति पर ज्यों ही पश्चिम के विज्ञान का रंग चढ़ा, त्यों ही उसमें एक नया विचार निर्माण हुआ, जिसे हम 'सामूहिक अहिंसा' कहते हैं। यह हिन्दुस्तान के आध्यात्मिक विचार और पश्चिम के विज्ञान के संयोग से हुआ है। जहाँ आत्मा के दर्शन होते हैं, वहाँ हमारे जीवन में न्यूनाधिक प्रमाण में अहिंसा आ ही जाती है। फिर भी वह सामूहिक नहीं हो पाती थी, क्योंकि विज्ञान के कारण आज मानव-समाज एक-दूसरे से जितना सम्बद्ध हो गया है, उतना उस जमाने में नहीं हुआ। इसलिए अहिंसा के जो भी प्रयोग होते, व्यक्ति व्यक्ति के पीछे ही होते। किन्तु आज जो सम्पर्क होते हैं, वे केवल व्यक्तियों के बीच के नहीं रहते, बल्कि सामाजिक हो जाते हैं। एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के साथ तथा एक समाज का दूसरे समाज के साथ सम्पर्क और संघर्ष हुआ करता है।

सारांश, पश्चिम के विज्ञान और हिन्दुस्तान के आध्यात्म्य के संयोग से सामूहिक अहिंसा का आविर्भाव हुआ और हमने अहिंसा से स्वराज्य प्राप्त किया। अब पूरब की बारी आयी कि वह पश्चिम को सामूहिक अहिंसा का विचार पहुँचाये। मनु ने कहा है :

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥'

'हिन्दुस्तान के श्रेष्ठ जनों से पृथिवी के समस्त मानवों को चरित्र की शिक्षा मिलेगी', यह जो मनु की भविष्यवाणी थी, वह महात्मा गांधी के आ जाने से सफल हो गयी है। हम महात्मा गांधी को व्यक्ति नहीं, विचार के प्रतिनिधि मानते हैं। जो विचार किसी जमाने में समाज के लिए अत्यन्त जरूरी होता है, उसका प्रचार करने के लिए जो निमित्तमात्र पुरुष होते हैं, वे पुरुष नहीं, नीतिमान् विचारक होते हैं। पश्चिम में ऐसे कई महान् वैज्ञानिक पैदा हुए। न्यूटन से पार्शल तक वैज्ञानिकों की एक बड़ी भारी परम्परा ही चली थी। जैसे प्राचीन काल में सन्तों की परम्परा चली, वैसे ही आधुनिक काल में वैज्ञानिक महापुरुषों की परम्परा चली।

विज्ञान से संस्कृति और विकृति का निर्माण

प्रकृति से संस्कृति और विकृति निर्मित होती है। विकृति निर्मित होती है, तो बुरे काम होते हैं और संस्कृति बनती है, तो अच्छे काम होते हैं। प्रकृति वैज्ञानिकों के हाथ में थी और इसी कारण कई अच्छे काम हुए। क्या कोढ़ियों की सेवा करना वैज्ञानिक युग के पहले हम सोच सकते थे? पर ईसाइयों ने उस काम को उठाया। वह विज्ञान का ही परिणाम है। ईसाई लोग हिन्दुस्तान, चीन, जापान, अफ्रीका गये और जगह-जगह उन्होंने विज्ञान के आधार पर कितने ही सेवा-कार्य किये, जिसका गुणगान हमें करना ही पड़ेगा। यह विज्ञान के जरिये संस्कृति का जो प्रदर्शन हुआ, उसीका परिणाम है। राजा-महाराजा और वीर पुरुषों द्वारा जहाँ विज्ञान का प्रचार हुआ, वहीं उनके द्वारा दूसरे देशों पर अधिकार करना, उन्हें गुलाम बनाना आदि बुरे काम भी हुए। ये सब विज्ञान की विकृति मानी जायगी। मूल प्रकृति में से कुछ संस्कृति, तो कुछ विकृति पैदा होती ही है और वही उस संस्कृति का सुख और दुःख या पाप-पुण्य हो जाता है। आप देखेंगे कि हिन्दुस्तान में दक्षिण से जो सत् विचार पहुँचे, उनके साथ कई जुल्म भी हुए। विज्ञान का भी यही हाल हुआ।

परमेश्वर की इच्छा से भूदान-यज्ञ

जो दृश्य हिन्दुस्तान में देशव्यापी तौर पर उपस्थित हुआ, वही आज विश्वव्यापी तौर पर होने जा रहा है। पश्चिम को पूरब से सामूहिक अहिंसा का विचार

जाने का आरम्भ तो हमारे अहिंसा से स्वराज्य प्राप्त करने से ही हो गया है। भूदान-यज्ञ में कंजूस भी दान दे रहे हैं। यह विनोबा का पुण्य नहीं, एक महान् विचार है, जो विज्ञान के कारण पैदा हुआ है। इसे हम ईश्वरीय इच्छा ही मानते हैं। भोग-परायण और लोभी लोग हजारों की तायदाद में त्याग का सन्देश सुनने आते हैं। इसके माने यह हैं कि परमात्मा ही चेतन को जड़ और जड़ को चेतन कर रहा है और इसका स्पष्ट दर्शन विनोबा को हो रहा है।

दो साल पहले २ अक्तूबर को, जब हमारा निवास सागर में था, केवल २० हजार एकड़ जमीन मिली थी। उसी दिन मैंने पहले-पहल जाहिर किया था कि हमें पाँच करोड़ एकड़ जमीन हासिल करनी है। आज दो साल के बाद आप देखते हैं कि बीस हजार से बीस लाख बन गये, याने सौगुना वृद्धि हो गयी है। उन दिनों लोग गणित करते और कहते कि 'इस तरह तो इसे पूरा होने में पाँच सौ साल लगेंगे।' किन्तु अब वे ही हिसाब लगायें, तो कहेंगे कि पाँच सौ साल में नहीं, पाँच साल में यह हो जायगा। जो गणित पहले पाँच सौ साल की बात करता था और आज पाँच साल की बात करता है, वह सारा-का-सारा गलत है। वह मानवीय गणित है और यह जो काम हो रहा है, वह ईश्वरीय गणित का है। इसमें आप देखेंगे कि कंजूस के जरिये बड़े-बड़े त्याग होंगे, और डरपोक के जरिये हिम्मत के काम होंगे; क्योंकि परमेश्वर जड़ को भी चेतन बना देता है।

आत्मज्ञान और विज्ञान मिलकर जो परिणाम हुआ, हिन्दुस्तान के जरिये उसका प्रकाश सारी दुनिया में फैले, यह परमेश्वर बोल चुका है। नहीं तो कौन थे पंडित नेहरू, जिनकी आवाज कोरिया की शांति के लिए पहुँच जाती और वहाँ शान्ति हो जाती। परमेश्वर ने ही हमें अहिंसा से आजादी दिलायी, कमजोरों को बलवान् और अहिंसक बनाया। चाहे यह नाटक के लिए ही क्यों न हो, पर बने तो सही। जिनके मन में द्वेष था, वे भी लाठी के प्रहार सहते और जहाँ स्त्रियाँ परदे के बाहर नहीं आती थीं, वहीं वे शराब की पिकेटिंग के लिए दूकानों पर भी जा पहुँचीं। इस तरह के दृश्य दीख पड़े। वह हिन्दुस्तान की अपनी ताकत नहीं, परमेश्वर की ही इच्छा रही। यह भूदान-यज्ञ भी उसीका कार्य है।

परमेश्वर की लीला

कम्युनिस्ट हमसे पूछते हैं कि 'क्या आप विश्वास रखते हैं कि इतिहास में जो घटना नहीं हुई, वह होगी ?' हम कहते हैं कि जरूर होगी, इसलिए कि वह इसके पहले कभी नहीं हुई है। हम आपको निश्चित रूप से कहते हैं कि विनोबा मरनेवाला है, क्योंकि वह आज तक नहीं मरा। जो घटना इतिहास में नहीं होती, उसे करना ही पड़ता है। इसीलिए परमेश्वर नये-नये मनुष्यों को भेजता और उनसे वह कार्य करवाता है! जब तक ईश्वर है, तभी तक यह दुनिया है। और तब तक नित्य नये कार्य तथा उन्हें सम्पन्न करनेवाली पीढ़ियाँ निर्मित होती ही रहेंगी। आपने रामायण तो सुनी ही होगी। आखिर राम के पास कौन-से बम थे ? वन्दरों और भालुओं ने ही तो रावण का काम तमाम कर दिया ? इसीके आधार पर हम कहते हैं कि हमारा यह काम आप सबके द्वारा होकर रहेगा। आप सब मानव नहीं, यह काम करने के लिए मानव रूप में देवता ही प्रकट हुए हैं। यही कारण है कि जब लोग हमसे पूछते हैं कि 'क्या आप समझते हैं कि इस तरह का काम आपसे होगा ?' तो हम कहते हैं : 'भाइयो, यह काम हम नहीं कर रहे हैं, हमारी कोई ताकत नहीं, हमारी कोई हस्ती नहीं। यह काम तो परमेश्वर कर रहा है।'

करूँगा या मरूँगा

हमने प्रतिज्ञा कर ली है कि 'हम बिहार का मसला हल करके छोड़ेंगे, नहीं तो यहीं हमारी देह मुक्त हो जायगी।' यह संकल्प करने में हमें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। हम समझते हैं कि यह संकल्प आप सबके जरिये पूर्ण होगा।

लोग पूछते हैं : 'बाबा, आपने इसके लिए कौन-सा संगठन किया है ?' अरे, बाबा की शक्ति संगठन की नहीं है, संगठन न करवाना ही बाबा की शक्ति है। अगर इसका अपना कोई संगठन होता, तो कांग्रेस बाबा के पीछे पागल-सी होकर न घूमती। पर वह समझती है कि इसमें कोई संगठन नहीं है। बाबा तो अकेला निकल पड़ा है, इसका किसी राजनैतिक पार्टी के साथ सम्बन्ध नहीं है।

आपको समझना चाहिए कि मेरा केवल राजनैतिक पार्टी से सम्बन्ध नहीं,

ऐसी बात नहीं, बल्कि किसी धार्मिक संस्था से भी सम्बन्ध नहीं है। यहाँ तक कि सर्वोदय-समाज की लिस्ट (सूची) में भी, जो हमारा कहलाता है, मेरा नाम नहीं है। मैं तो मनुष्य के नाते, परमेश्वर का बन्दा इस काम में लगा हूँ। अगर आपका सहयोग न मिला, तो कुछ भी न होगा।

एकता की कीमिया

कहते हैं कि वशिष्ठ के आश्रम में शेर-बकरी एक झरने पर एक साथ पानी पीते थे। इसी तरह इस भूदान-यज्ञ का ही परिणाम है कि भिन्न-भिन्न पक्षवाले एक साथ काम करने लगे हैं। तमिलनाड में जयप्रकाश और वहाँ की कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री कामराज नादर १५ दिन एक साथ घूमे और एक ही प्लेटफार्म पर बोले। उनको इस भूदान-यज्ञ ने एक साथ पानी पिलाया। हमारे काम की खूबी ही यह है कि हम शेर को अहिंसा और गाय को शौर्य सिखाना चाहते हैं। एक साथ रखने की यह कीमिया, यह शक्ति इस काम में है। इसीलिए हमने कहा कि यह 'युग-धर्म' काम कर रहा है। मैं इस बारे में भविष्य का इतना स्पष्ट दर्शन पा रहा हूँ, जितना कि आपके चेहरे स्पष्ट देख रहा हूँ। पश्चिम से विज्ञान आया और अब पूरब से सामूहिक अहिंसा बनकर वहाँ जायगी, इसमें मुझे कोई शक नहीं, चाहे इसमें सैकड़ों वर्ष ही क्यों न लग जायँ।

हम भगवान् के औजार बनें

हमें तो भगवान् के इस महान् काम का औजार बनना है। आखिर हमारा राष्ट्रीय गीत बनानेवाला कौन था? वह एक सामान्य ही व्यक्ति है। वे अपने में कोई प्रतिभा महसूस नहीं करते। लेकिन एक सामान्य व्यक्ति को भगवान् ने निमित्त बनाया और उसके जरिये उस ध्वज-गीत में, "विश्व विजय करके दिखलायें, तब होवे प्रण पूर्ण हमारा" इतने महान् शब्द कहलवाये। आखिर 'विश्व-विजय' का अर्थ क्या है? दूसरों को गुलाम बनाना हमारा उद्देश्य नहीं है। अतीत में हमारे बड़े-बड़े साम्राज्य और बलशाली सेनाएँ रहीं, तब भी हमने दूसरे देशों पर आक्रमण नहीं किया, यह इतिहास बतला रहा है। तब विश्व-विजय का अर्थ यही

होगा कि 'हमारे विचार दुनिया में फैलें, हमारे सद्भाव, हमारी शुभ कामनाएँ सर्वत्र फैलें; तभी हमारा प्रण पूर्ण होगा—हमें सच्चा स्वराज्य हासिल होगा।'

भागलपुर
५-१०-'५२

युग के प्रधान गुण : निर्भयता, समता और समाज-निष्ठा : ३५ :

विचार का प्रचार तब होता है, जब मनुष्य उस पर आचरण करता है। जब आदमी आचरण की कसौटी पर विचार कस लेता है, तब वाणी की सहायता निमित्तमात्र होती है और आचरण द्वारा ही वह फैलता है। इसलिए बचपन में, जब से मैंने सार्वजनिक सेवा-कार्य अपनाया, तभी से करीब बत्तीस साल चिन्तन करता और विचारों को आचरण की कसौटी पर कसता रहा। अब भी मेरा वही काम जारी रहता, अगर आज बापू होते। किन्तु उनके अभाव में मुझे निकलना पड़ा और अनुभव से जिन विचारों पर निष्ठा बैठी, जिन विचारों को परख लिया, उनका प्रचार करता रहता हूँ। भूदान-यज्ञ का तो एकमात्र बहाना है। यह तो इस जमाने की समस्या है, युग-धर्म है। उसे हाथ में लेकर अगर विचार का संशोधन करते हैं, तभी वह हृदय की गहराई तक पहुँचता है। किन्तु अगर युगधर्म के विरुद्ध विचार-संशोधन करते हैं, तो वह योगी की प्रयोगशाला हो सकती है। अवश्य ही उसमें से कुछ गूढ़ विचार निकल सकते हैं; पर योगी की प्रयोगशाला के विचार-संशोधन से एक शास्त्र बनेगा, उस विचार का तत्काल समाज में फैलाव न हो सकेगा। समाज में प्रचार तो उसी विचार का होगा, जो प्रयोगशाला में परखा हुआ और जमाने की माँग के अनुसार भी होगा। सारांश, विचार कार्य-साधक होना चाहिए। ऐसे कार्य-साधक विचार जब दुनिया के सामने रखे जाते हैं, तो रखने के लिए जो निमित्तमात्र बन जाता है, उसकी कोई कीमत नहीं है।

ऐसा ही विचार लोगों को सहज में ग्रहण हो जाता है। जैसे गर्मी में तपी हुई जमीन बारिश की राह देखती है और बारिश होते ही उसे चूस लेती है, वैसे ही

युग-धर्मानुसार युगप्रवर्तक कार्यसाधक विचार रखने पर जो लोग चिन्ताशील नहीं होते, वे भी उसे सुनने के लिए उत्सुक होते हैं। आज हिन्दुस्तान में जहाँ भी जायँ, यही सुनाई देता है कि 'हमारा नैतिक स्तर गिर रहा है। लोग वासना में गिर रहे हैं।' इस तरह की निन्दा परनिन्दा नहीं, आत्मनिन्दा हो जाती है। किन्तु इस तरह अपने को भोगासक्त माननेवाला समाज भी त्याग का संदेश सुनने के लिए उत्सुक रहता है। लोग हजारों की तायदाद में त्याग का सन्देश सुनने के लिए आते और उसे शान्ति से सुनते हैं। जैसे कोई प्यासा एकाग्र होकर पानी पीता है, वैसे ही भोगी लोग एकाग्र होकर त्याग का सन्देश सुनते हैं, क्योंकि उसके बिना उनकी प्रगति ही रुक गयी है। अब भोगी भी समझ गये कि भोग तभी होगा, जब उसके साथ-साथ त्याग चलेगा। इसीलिए मुझ जैसा योगी त्याग का सन्देश सुनाने आता है, तो लोग उसका उपकार मानते हैं।

हम आत्मा हैं

सारा मानव-समाज अनादिकाल से सतत विकास कर रहा है। वह युग के अनुसार अपने एक-एक गुण का चिंतन और विकास करता आया है। आत्मा में असंख्य गुण हैं। यदि तारिकाओं की गिनती कर सकें या मिट्टी के कणों क हिसाब लगा सकें, तो आत्मा के गुणों की गिनती कर सकेंगे। ऐसे अनन्त गुणों से मंडित आत्मा हमसे अलग नहीं है। वह हमारे अत्यन्त निकट है। अनुभवी लोगों ने कहा है कि हम आत्मा ही हैं, फिर उसके निकट होने का सवाल ही नहीं उठता। शरीर, मन या इन्द्रियाँ हमसे दूर पड़ती हैं। शरीर कमजोर होता है, तो मनुष्य समझ जाता है कि यह कमजोर हो गया है। स्पष्ट है कि शरीर की कमजोरी पहचाननेवाला स्वयं कमजोर नहीं है, वह उससे अलग है। जैसे घर कमजोर हुआ, यह घर नहीं पहचानता, उसे पहचाननेवाला घर से अलग है, वैसे ही हम शरीर, मन और बुद्धि से सर्वथा अलग हैं।

कई बार हम रात को सोना चाहते हैं और सोने का सारा सरंजाम इकट्ठा रहता है, लेकिन घंटों नींद नहीं आती। सोचने की बात है, नींद की इच्छा रखनेवाला कौन है और नींद न आने देनेवाला कौन है? अन्दर की वासनाओं ने

नहीं माना और नींद न आने दी। इसीलिए कहना पड़ता है कि आत्मा कुछ है, जो बुद्धि और मन से अलग है। अगर वह मन या बुद्धि होता और नींद चाहता, तो फौरन नींद आ जाती, किन्तु मैं नींद चाहनेवाला हूँ और नींद न चाहनेवाली बुद्धि मुझसे अलग है। अतः स्पष्ट है कि मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ हमसे अलग हैं, पर आत्मा अलग नहीं।

हर युग में भिन्न-भिन्न गुणों की प्रधानता

आप देखते हैं कि पूर्णिमा के दिन चन्द्र पूर्ण होता है, अष्टमी को आधा और द्वितीया को कोर मात्र होता है। हर रात का अपना अलग-अलग चन्द्र होता है। हरएक चन्द्र की अपनी-अपनी विशेषता होती है और वह अपनी-अपनी ओर ध्यान खींच लेता है। इसी तरह आत्मा के अनन्त गुणों में एक-एक गुण एक-एक जमाने को अपनी-अपनी ओर खींचता है और समाज उस पर अमल करके चलता है।

एक जमाना था, जब लोगों ने स्वच्छता का धर्म समझा। स्वच्छता को परमगुण माना और उसका प्रयोग करना चाहा। एक समय ऐसा था, जब लोगों ने काम-नियमन की कोशिश की और विवाह-संस्था बनायी। उस जमाने में सारे मानव-समाज में यही बात चली कि विवाह-संस्था कैसी हो। हिन्दू-धर्म में विवाह की आठ विधियाँ सुनते हैं, आखिर उनमें से एक विधि तय हुई। याने समाज को काम-नियमन की आवश्यकता महसूस हुई और उस ओर समाज ने ध्यान दिया। प्राचीन इतिहास में सुनते हैं कि एक राजा दूसरे राजा की रानी को भगा ले जाता था। किन्तु आज ऐसा नहीं सुनते। याने हमने कुछ काम-नियमन सीख लिया। इसके मानी यह नहीं कि हम पूर्ण काम-विरक्त हो गये, पर कुछ कम जरूर हो गया है, उसकी युक्ति सध गयी है। पुराने महाकाव्यों में भी द्रौपदी का हरण जैसा विषय मध्यबिन्दु रहता था, पर आज वैसी इच्छा हमें नहीं होती।

इस युग के तीन गुण

इस तरह समाज ने स्वच्छता और काम-नियमन की कोशिश की और कुछ अच्छी-बुरी रूढ़ियाँ चल पड़ीं। हम पीछे कह ही आये हैं कि आत्मा के एक-एक

गुण की महिमा एक-एक जमाने में होती है। एक-एक गुण का नाम लेंगे, तो वह आदरणीय तो होगा ही, क्योंकि गुण आदरणीय ही होते हैं; पर समाज जिस गुण पर अमल करने को उत्सुक रहता है, वही उस युग का राजा कहलाता है। जहाँ तक मेरा अध्ययन है, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आज तीन गुणों की आवश्यकता है : (१) निर्भयता, (२) समता और (३) समाज-निष्ठा। मानव को आज इन्हीं तीन गुणों की बहुत आवश्यकता प्रतीत होती है। उसकी जितनी भी कोशिश होती है, सब इन्हींके लिए होती है।

निर्भयता शस्त्रास्त्रों पर निर्भर नहीं

आज अणु-बम के निर्माण से संसार के सभी लोग डरने लगे हैं। सारे राष्ट्र-के-राष्ट्र डरते हैं। अमेरिका इतना सम्पन्न देश है, उसकी बराबरी का शायद ही कोई दूसरा देश हो, पर समूचे अमेरिका को रूस का डर है। सारे समाज पर एक डर छाया हुआ है। इसी तरह रूस को अमेरिका का डर है, तो पाकिस्तान को हिन्दुस्तान का डर है। इस प्रकार न केवल एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का डर है, बल्कि समाज के समाज एक-दूसरे से डरते और संहार-साधनों की खोज करते हैं। वे निर्भय बनने का प्रयत्न कर रहे हैं। एक जगह स्त्रियों ने मुझसे पूछा कि 'अगर हम अपने हाथ में लाठी रखें, तो आपका क्या मत है?' मैंने कहा : 'अगर शस्त्र हाथ में रखकर डर कम होता है, तो बावजूद इसके कि मैं शस्त्र में विश्वास नहीं रखता, कहूँगा कि अवश्य शस्त्र रख सकती हो।'

कहा जाता है कि 'हिन्दुस्तान जैसे पूरे राष्ट्र को अंग्रेजों ने निःशस्त्र बनाया। नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तानियों के मन में डर छा गया।' किन्तु अगर शस्त्र न रखने से डर आता है, तो अमेरिका में डर क्यों है? सारा अमेरिका आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से पूरी तरह सुसज्जित है, फिर भी वह डर रहा है। याने डर तो मन में रहता है, फिर हाथ में शस्त्र रखें, तो भी वह अपने नहीं, दूसरे के ही काम आयेगा। एक मनुष्य बन्दूक लेकर सोया था। रात में चोर आये। वह इतना डर गया कि कुछ बोल ही न पाया। वह 'चोर आया' कहने के बजाय 'बन्दूक-बन्दूक' चिल्लाने लगा। चोर ने उसकी बन्दूक ले ली, शस्त्र का फायदा उसे नहीं हुआ।

लाठी या बन्दूक रखने से थोड़ी देर के लिए शान्ति महसूस होगी। लेकिन अगर दूसरे ने उससे सवायी लाठी रखी, तो फिर डर लगेगा। लोग शेर को बहादुर मानते हैं और बिल्ली को डरपोक। पर चूहे के सामने बिल्ली बहादुर बन जाती और बन्दूक के सामने शेर भी डरपोक बनता है। शेर की निर्भयता तो उसके नाखून और दाँत पर निर्भर है। इसी तरह जिसकी निर्भयता शस्त्रास्त्रों पर निर्भर रहेगी, वह पूर्ण निर्भय कभी नहीं बन सकता। हाँ, कोशिश करता है निर्भय बनाने की।

एक अमेरिकन भाई हमारे पास आये और पूछने लगे, 'आप अमेरिका के लिए क्या सलाह देते हैं?' मैंने कहा : 'मैं अमेरिका को क्या सलाह दूँ? मैं तो इतनी लियाकत नहीं रखता। हाँ, अपने देश के लिए कुछ सुझाव दे सकता हूँ। पर आप पूछते ही हैं तो कहता हूँ, आप इतने शस्त्रास्त्र बनाते और कहते हैं कि लोगों को खूब काम मिलता है, बेकारी मिटती है। इसलिए यह तो नहीं कहूँगा कि शस्त्र मत बनाइये। यह अवश्य कहूँगा कि शस्त्र जोरों से बनाइये, ताकि सबको काम मिले। पर ध्यान रहे कि उधर बेकारी कम करने के लिए रूस भी शस्त्र बढ़ा रहा है। फिर दोनों की टक्कर होगी। नतीजा यह होगा कि उनके हवाई जहाज को आपके हवाई जहाज तोड़ेंगे और आपकी नौकाओं को उनकी नौकाएँ डुबायेंगी। इस तरह एक-दूसरे के जहाज डुबोने के बजाय अपने-अपने देश में क्रिसमस के दिन खुद ही अपने जहाजों को डुबो दीजिये। इससे सबको काम भी मिलेगा और शान्ति भी रहेगी। हमारे जहाज वे डुबायें और उनके हम, यह परस्परावलम्बी जीवन क्यों?'

ये जो शस्त्रास्त्र बढ़ रहे हैं, उनसे मुझे कोई डर नहीं है। मैं तो कहता हूँ, जितना लड़ना हो लड़ लो, क्योंकि अगर आज की लड़ाइयाँ छोटी-छोटी होतीं, तो अहिंसा को मौका ही न मिलता। अब तो विश्वयुद्ध चलेंगे। याने मानव निर्भयता के लिए जो काम करेगा, वह बेकार साबित होकर यह उसके ध्यान में आ जायगा कि मानव शस्त्रास्त्र से निर्भय नहीं बन सकता। तभी वह सब शस्त्रास्त्र त्याग कर निर्भय बनेगा।

प्राचीन राज्य-शासन में एक महत्त्वपूर्ण शब्द मिलता है। राज्य में क्या-

क्या होना चाहिए, यह बताते हुए वहाँ कहा गया है कि "राज्य में सभी को 'अभय' होना चाहिए।" याने हर कोई निर्भयता महसूस करे। हर कोई समझे कि मुझ पर कोई अन्याय नहीं हो सकता और हुआ भी, तो मेरे पक्ष में धर्म है, न्याय है। मुझे भय का कोई कारण नहीं। जिस देश में निर्भयता रहेगी, वहाँ स्वराज्य है, ऐसा कहा जायगा।

चेतन के लिए समस्याएँ आवश्यक

एक जमाना था, जब कि यहाँ 'अंग्रेजों का राज्य' कहा जाता था। अब 'दिल्ली का' कहा जाने लगा। पर 'स्वराज्य' तो तब होगा, जब हर कोई कहेगा कि 'मेरा राज्य है।' दुनिया इसे चाहती भी है। आज दुनिया बनाने की जो सारी कोशिशें की जा रही हैं, वे उसे निर्भय बनाने के लिए ही हो रही हैं। जिस दिन दुनिया निर्भय बनेगी, उसी दिन उसे समाधान मिलेगा और कशमकश मिटेगी! किन्तु एक कशमकश मिटेगी, तो दूसरी शुरू होगी। यह कभी नहीं होता कि एक जमाने में शान्ति होने से सदा के लिए शान्ति हो जायगी। परमेश्वर की यही इच्छा है कि मानव-समाज सदा चिन्तनशील रहे। इसीलिए नयी-नयी समस्याएँ मानव के सामने खड़ी होतीं और उसे नये-नये आन्दोलन करने पड़ते हैं। नयी-नयी समस्याएँ खड़ी होना, यही मानव की चेतनता का लक्षण है। अगर कहीं सारी समस्याएँ खतम हो जायँ, तो समझ लें कि मानव जड़ बन जायगा। जड़ पत्थर के सामने कोई समस्या नहीं होती। पर मानव चेतन है, इसलिए उसके सामने सदा समस्याएँ रहेंगी। फिर भी इस जमाने में निर्भयता आवश्यक है।

आज सबको समता की भूख है

दूसरा आवश्यक गुण है, समता। एक जमाने में अच्छी नीयत से दर्जे बनाये गये थे। हरएक को अपनी-अपनी लियाकत के अनुसार तालीम मिलने की व्यवस्था थी। यह देख आज हमें दुःख होता है, लगता है कि उस जमाने में लोग ठीक सोचते नहीं थे। लेकिन बात ऐसी नहीं है। उस जमाने में मानव-

गुणों की योग्यता देखी गयी। वे सोचते थे, मूर्ख को तालीम की आवश्यकता ही नहीं है। उसे काम में लगायेंगे, तो काम बन जायगा। अगर उसे बुद्धि के काम में लगायेंगे, तो वह काम नहीं होगा और मेहनत का काम भी नहीं होगा। इसीलिए कुछ के हाथ में राज्य का भार रखा गया, तो कुछ के हाथ में देश की रक्षा। कुछ व्यापार करें, तो कुछ मेहनत-मजदूरी। तीन वर्णों की सेवा करना शूद्र का भाग्य माना गया। आज हमें लगता है कि उनकी नीयत अच्छी नहीं थी, पर वास्तव में ऐसी बात नहीं थी। किन्तु आगे चलकर विषमता बढ़ी। लोग समझने लगे कि योग्यताएँ तो हरएक की बढ़ेंगी ही। जिस युग में विज्ञान नहीं था, उस युग में दर्जे बनाने पड़े। पर जब से विज्ञान शुरू हुआ, तब से ध्यान में आया कि मनुष्य का विकास बराबर हो सकता है, उसके लिए दर्जे बनाने की आवश्यकता नहीं।

इस जमाने का साधारण-से-साधारण मनुष्य भी स्वच्छता का भान रखता है। हर कोई उतनी स्वच्छता रखता ही है, ऐसी बात नहीं है, फिर भी आज के जमाने का एक साधारण मनुष्य प्राचीन काल से अधिक स्वच्छता रखता है। उस जमाने में स्वच्छता के साधन आज जितने नहीं थे। वे लोग घी जलाकर हवा शुद्ध करते थे, पर आज ऐसी बात नहीं। आज स्वच्छता के साधन आसानी से प्राप्त होते हैं। पहले जमाने में भंगी का अलग मुहल्ला होता था और ब्राह्मण का अलग, क्योंकि स्वच्छता के साधन उनके पास नहीं थे। पर आज विज्ञान बढ़ा है और ऐसे भेदों की आवश्यकता नहीं रही। आज विज्ञान बढ़ जाने से जिन औषधियों का हमें ज्ञान है, उनका उन्हें नहीं था। इस तरह उनके सामने दूसरी समस्याएँ थीं और हमारे सामने दूसरी।

मैं आपको दूसरी मिसाल दूँ। पुराने लोगों ने यह नियम बनाया था कि वेद ब्राह्मण ही पढ़ें, उसे दूसरे कोई नहीं पढ़ सकते। आखिर यह क्यों? इसलिए कि उस जमाने में 'प्रिंटिंग प्रेस' नहीं था। वेद कण्ठस्थ करना पड़ता था। सब तो उनका ठीक से उच्चारण नहीं कर सकते, जिससे वेद बिगड़ सकते थे। इसीलिए उन्होंने ऐसा किया कि खास वर्ग के लोग ही वेद पढ़ें। इसमें उनकी नीयत खराब नहीं थी। पर आज हम प्रिंटिंग प्रेस ले आये। उसमें वह शुद्ध छप सकता और हर कोई उसका पाठ कर सकता है। इतना ही नहीं, कोई सुन्दर पाठ करे,

तो उसका रेकार्ड भी ले सकते और घर-घर वेदपठन हो सकता है। प्राचीन काल की वे मुश्किलें आज नहीं रहीं। इसलिए शिक्षण के लिए किसी तरह का प्रतिबन्ध न रहना चाहिए। पुराने जमाने की यह विषमता उस जमाने के लिए आवश्यक थी, पर आज विज्ञान के युग में दर्जे रखने की जरूरत नहीं है। आज सबको समता की भूख है। जो समता के खिलाफ बोलता है, वह समाज को अच्छा नहीं लगता। समता लाने का जो भी आन्दोलन होगा, उससे लोगों में उत्साह आयेगा, क्योंकि आज उसकी आवश्यकता है।

समाज-निष्ठा जमाने की माँग है

तीसरा गुण समाज-निष्ठा है। इसमें शक नहीं कि व्यक्तिगत विकास के लिए सहूलियत होनी चाहिए और विज्ञान के कारण आज वह हो भी सकती है। प्राचीन काल में गुरु मुश्किल से मिलते थे, इसलिए सबको तालीम नहीं दे पाते थे। किन्तु आज तालीम देने के व्यापक साधन हमारे हाथ में आ गये, तो अब व्यक्तिगत विकास की चिन्ता नहीं रही। आज का व्यक्ति अपना विकास कर अपना विकसित व्यक्तित्व समाज को अर्पण करे, इसकी आवश्यकता है। एकांत में मनुष्य प्रार्थना करता है, तो उसे प्रेरणा मिलती है, यह सही है। किन्तु आज के जमाने में सामूहिक प्रार्थना से जितनी प्रेरणा मिलती है, उतनी व्यक्तिगत प्रार्थना से नहीं, यद्यपि हृदय-परीक्षण के लिए वह भी आवश्यक है।

एक जमाना ध्यान-योग का रहा। बीच में संत आये और उन्होंने कह दिया : 'जहाँ अनेक लोग इकट्ठा होकर प्रार्थना करते हैं, वहाँ परमेश्वर बसता है।'

"नाहं वसामि वैकुंठे, योगिनां हृदये न हि।
मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद ॥"

—वैष्णवों ने यह वचन प्रचारित कर सामूहिक भक्ति को चलाया। वैष्णवों ने सामूहिक माँग से समाज-निष्ठा की माँग का आरंभ किया। उसके पहले एकांत-प्रार्थना का महत्त्व रहा। आज के जमाने में भी योगी अरविंद पांडिच्चेरी में एक जगह बैठते और मन से ऊपर उठने का प्रयत्न करते हैं। पर बीच में वैष्णवों

ने सामूहिक भक्तिभाव शुरू कर दिया था। वे आधुनिक जमाने के पूर्वाचार्य थे। आज हमें ध्यान-योग में उतना आकर्षण नहीं होता, जितना सामूहिक भक्ति में होता है।

महात्मा गांधी ने सामूहिक अहिंसा का प्रयोग किया। जिस अहिंसा का प्रयोग बुद्ध और महावीर ने किया, उसे ही महात्मा गांधी ने सामूहिक रूप दिया। लाखों लोग ऊपर चढ़े। जहाँ जोरों से हवा आती है, वहाँ केवल परिंदे ही नहीं, पत्ते भी उड़ते हैं। पर जहाँ आँधी रुक गयी, वहाँ पत्ते गिर जाते और सदैव उड़नेवाले वे परिंदे उड़ते रहते हैं। महात्मा गांधी के बाद हम सब सुस्त हो गये। पर अब यह भूदान आया और वह चल रहा है। हमें एक लाख दान-पत्र मिले, यह कोई छोटी बात नहीं। इसका कारण यही है कि यह जमाने की माँग है। आज हम कहते हैं कि 'त्याग करो, लँगोटी पहनकर रहो', तो कोई तैयार नहीं होता। पर जब यह कहते हैं कि 'समाज के लिए त्याग करो', तो पूरी-की-पूरी जमीन देनेवाले काश्तकार भी मिले हैं। छोटे-छोटे काश्तकार भी दे रहे हैं और राजा-महाराजा भी काम में लगे हैं।

आप गाँव में जाकर समझायें कि 'गाँव की सारी जमीन गाँव की है', तो वे यह सुनने के लिए राजी हैं। यह आन्दोलन हिम्मत के साथ चलायें, तो कई गाँव पूरे-के-पूरे मिल सकते हैं। आपके यहाँ 'सेन्हा' गाँव मिला है और यू० पी० में 'मँगरौठ'। अगर आप यह बात उन्हें समझा दें, तो कई गाँव आगे आयेंगे, क्योंकि आज समाज-निष्ठा की माँग है और लोगों को 'समाज को जितना दे सकें, उतना देना चाहिए' इसकी भूख है। समाज की तरफ से माँग आती है, तो उसे पूरी करने की इच्छा अवश्य होती है, यद्यपि मोह न छूटता हो। बिहार में जमीन माँगने की बात निकली, तो किसीने 'ना' नहीं कहा। सब कोई दे रहे हैं। इसके माने यह नहीं कि उनकी आत्मा इतनी ऊँची सतह पर पहुँच चुकी है। पर जहाँ जमीन की माँग आती है, समाज-निष्ठा की बात आती है, वहाँ मनुष्य उसे कबूल करता है। उससे उसे प्रेरणा मिलती है।

तीनों गुणों का विकास करें

मैंने जो ये तीन गुण बताये, उनका अगर विकास करें, तो आप भर-भर-

कर पायेंगे। हमें निर्भय बनना है। अगर कोई डरा-धमकाकर कुछ कराना चाहे, तो कोई न सुने। स्कूल में कोई लाठी लेकर पढ़ाना चाहे, तो लड़का उसे न माने। यह तो पुराने जमाने की बात हो गयी। हम आपसे कहना चाहते हैं कि अगर कोई डराकर आपसे जमीन लेना चाहे, तो हर्गिज मत दो। हम आपको निर्भय बनाना चाहते हैं।

इसी तरह विषमता मिटनी चाहिए। भागलपुर में हमसे मिलने के लिए एक प्रोफेसर आये। वे कहने लगे कि 'हमारे यहाँ समता नहीं है, किसीको तनखाह कम, तो किसीको ज्यादा है।' हमने उनसे कहा कि 'सरकार समता नहीं रख सकती, क्योंकि वह औसत होती है।' हम जो कहते हैं कि सभी कुटुंब इकट्ठा होकर रहें, इसका यह अर्थ नहीं कि सबका खाना-पीना एक साथ बने। खाना-पीना तो घर-घर चलेगा, पर जितनी जमीन और संपत्ति है, उसे एक करना है। हम तो चाहते हैं कि पूरा गाँव एक होकर रहे। पर आज एकदम पूरा गाँव एक नहीं हो सकता, पर चार-चार, पाँच-पाँच कुटुंब मिलकर रह सकते हैं। वे खेती, व्यापार एक साथ करने का प्रयत्न अवश्य कर सकते हैं।

व्यक्ति का मोक्ष इसीमें है कि वह समाज की सेवा में लीन हो। मोक्ष का अर्थ है, व्यक्ति के अहंकार का मिटना। जहाँ अहंकार मिट जाता है, वहीं व्यक्ति समाज-रूप, ब्रह्माण्ड-रूप हो जाता है। बस, उसे मोक्ष मिल गया!

मुँगेर
२०-१०-'५२

वाणिज्य धर्म है, संग्रह नहीं

: ३६ :

भूदान-यज्ञ की पूर्ति में हमने संपत्ति-दान-यज्ञ और श्रम-दान-यज्ञ यथावसर शुरू किये। सम्पत्ति-दान के बिना भूदान-यज्ञ सफल नहीं हो सकता, यह तो स्पष्ट ही है। किन्तु इसके सिवा सम्पत्तिदान-यज्ञ का अपना एक स्वतन्त्र कार्य है। न केवल भूदान-यज्ञ को सफल करने के लिए सम्पत्ति-दान की जरूरत है, बल्कि सम्पत्ति का समान विभाजन भी उसका एक महत्त्वपूर्ण विशिष्ट कार्य है। उस दृष्टि से उसकी जितनी छानबीन हो, अच्छा है।

क्या संग्रह पाप है ?

सम्पत्तिदान-यज्ञ पर लिखते हुए दादा धर्माधिकारी ने सम्पत्ति के संग्रह को ही पाप बताया था। उस पर कलकत्त के एक भाई ने शंका उठायी है। उनके कथन का सार यह है कि "वाणिज्य वैश्य का धर्म माना गया है। उसमें संग्रह तो जरूर होगा। उस संग्रह का उपयोग विश्वस्त वृत्ति के तौर पर करने की अपेक्षा रखना तो ठीक है, पर उसे ही अधर्म या पाप कहना कहाँ तक उचित होगा?" अवश्य ही यह विचारने योग्य शंका है। पाप-पुण्य की व्याख्या उत्तरोत्तर सूक्ष्म होती जाती है। आज जो धर्म मालूम पड़ता है, वही आगे की अवस्था में अधर्म हो जाता है। देश-काल-भेद से भी व्याख्या बदलती है। उन सब व्याख्याओं को हम छोड़ दें, तो भी धर्माधर्म या पाप-पुण्य आदि की द्विविध व्याख्या अटल है। एक अन्तिम या परिशुद्ध व्याख्या के पेट में देश-काल-भेद से अनेकविध व्याख्याएँ शामिल होंगी। गणित एक परिनिष्ठित शास्त्र है। फिर भी उसमें शुद्ध गणित और व्यावहारिक गणित, ऐसे दो प्रकार होते ही हैं। धर्म-निर्णय की भी वही हालत है।

वाणिज्य-धर्म और संग्रह

गीता ने 'वाणिज्य' को वैश्य का धर्म बताया है, लेकिन संग्रह को धर्म नहीं बताया। वाणिज्य में संग्रह होता है, यह तो प्रचलित समाज-रचना का परिणाम

है। किन्तु हर हालत में वाणिज्य में संग्रह होना ही चाहिए, ऐसा नहीं मान सकते। इसका अर्थ यह हुआ कि वैश्य को भी अपरिग्रह की दृष्टि रखकर ही अपना वर्ण-धर्म निभाना है। वाणिज्य में अनैतिक उपायों को तो मंजूर कर ही नहीं सकते। यह नहीं कह सकते कि जिस किसी उपाय से धन हासिल कर उसका विश्वस्त वृत्ति से विनियोग करो। जहाँ अनैतिक उपाय निषिद्ध हुए, वहीं संग्रह की एक मर्यादा आ गयी।

सूद का निषेध

जितने मान्य नैतिक उपाय हैं, उनकी भी मान्यता उत्तरोत्तर बदलेगी और बदलनी ही चाहिए। मिसाल के तौर पर सूद को व्यापार में आज मान्य किया गया है। आज की मान्यता के अनुसार इतना कह सकते हैं कि सूद अतिरिक्त नहीं लेना चाहिए। इसलाम ने सूद का आत्यंतिक निषेध किया है। समाज को कभी-न-कभी इसे मंजूर करना ही पड़ेगा। वह दिन जल्दी ही आना चाहिए और उसे जल्दी लाना चाहिए। अगर सूद का निषेध हो जाय, तो संग्रह की मात्रा काफी घट जायगी।

सूद न लेना चाहिए, इतना ही नहीं, किशोरलाल भाई ने तो लिखा था कि 'कटौती भी कबूल करनी चाहिए।' याने हमारे पास इकट्ठे हुए पैसे का जहाँ हम तत्काल उपयोग नहीं कर पाते और दूसरा कोई कर रहा है, इसलिए हम अपना पैसा उसके हाथ में सौंप देते हैं, वहाँ कुछ मुद्दत के बाद जब वह पैसा हमें वापस देगा, तो सोलह आने वापस देने की जिम्मेदारी उस पर न हो। अगर वह पन्द्रह आने वापस दे, तो ऋण-मुक्ति मान लेनी चाहिए। खासकर ग्रामोद्योग के कामों में याने आम जनता के हित-कार्यों में लगे पैसे में कम-बेशी कटौती मान्य करना धर्म होगा। अगर यह विचार मंजूर हुआ, तो संग्रह की मात्रा और भी कम होगी।

न मुनाफा और न घाटा

फिर यह भी सोचना होगा कि क्या वाणिज्य एक वर्ण-धर्म है या मान्य उपायों से ही मुनाफे का एक साधन है? अगर वह वर्ण-धर्म है, तो उसमें विशेष मुनाफा

न होना चाहिए और न घाटा ही होना चाहिए। अर्थात् सेवा-धर्मी वणिक् को अपना मेहनताना मात्र मिले। इससे तो अधिक मुनाफा अधर्म ही होगा। और अगर घाटा हुआ, तो वह भी अधर्म होगा, क्योंकि उसमें असावधानी आदि दोष होंगे और वर्ण के अस्तित्व पर भी प्रहार होगा। पर अधिक मुनाफे की तो आशा कर ही नहीं सकते। अगर यह विचार ध्यान में आ जाय, तो न केवल संग्रह की मात्रा कम होगी, बल्कि वह शून्यवत् हो जायगी। व्यावहारिक गणित में शून्य की भी कुछ कीमत होती है। वैसी ही उस मुनाफे की स्थिति होगी।

उत्पादक और वितरक का महत्त्व-मापन

वैश्य-वर्ण का धर्म सोचते हुए यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि वैश्यों में से अधिकतर लोग कृषि और गो-रक्षा में लगे होंगे, क्योंकि वही देश और समाज की सबसे प्राथमिक और व्यापक आवश्यकता है। वाणिज्य तो गौण वैश्य-धर्म होगा, क्योंकि उत्पादन के बाद ही विनिमय हो सकता है। मुख्य कार्य उत्पादन का ही माना जायगा। फिर उत्पादन के उस सर्वप्रधान कार्य में लगे किसानों के मेहनताने से ज्यादे की अपेक्षा विनिमय रूप गौण वैश्य-धर्म में लगे सेवक कैसे कर सकते हैं? बहुत हुआ, तो गौण मुख्य भेद भुला वे किसान की बराबरी में मेहनताना माँग सकते हैं। अगर स्वामी सेवक की परिभाषा मंजूर करें, तो किसान स्वामी होने से वणिक् का मेहनताना ज्यादा कैसे हो सकेगा? अगर कोई यह कहे कि किसान से वणिक् को बुद्धि का अधिक उपयोग करना पड़ता है, इसलिए उसका अधिक मेहनताना होना चाहिए, तो पहले यह बात सिद्ध ही नहीं होगी। याने विनिमय में उत्पादन से ज्यादा बुद्धि लगती है, ऐसा निश्चय-पूर्वक कह नहीं सकेंगे। और कह भी सकें, तो अधिक बुद्धि के कारण पाचन-शक्ति बढ़ती है, यह जब तक सिद्ध न हो, तब तक वणिक् का अधिक मेहनताना मान्य नहीं होता। हाँ, 'बुद्धि के अधिक उपयोग से पाचन-शक्ति मन्द होती है, इस-लिए सूक्ष्म आहार लेना पड़ता है, जो महँगा होता है', अगर यह दलील हो, तो जहाँ वैसी हालत हो, वहाँ वह मान्य हो सकती है। वहाँ उतना अधिक मेहनताना दिया जा सकता है। लेकिन उसे 'मेहनताना' कहना भी गलत होगा। वह एक

'दया-धर्म' होगा और मन्द पाचन-शक्तिवाले हर व्यक्ति पर लागू होगा। वैसे व्यक्ति किसानों में भी हो सकते हैं।

यह सब सोचते हुए संग्रह को पाप कहने के सिवा चारा नहीं रहता। व्याख्या तो वही मान्य करनी होगी। और इसलिए हिन्दू-धर्म ने चार वर्ण और (हरएक वर्ण के चार आश्रम मिलाकर) सोलह अवस्थाओं में से सिर्फ एक अवस्था या 'वैश्य-गृहस्थ' को मर्यादित संग्रह की अनुज्ञा दी है। उस संग्रह का अधिकार 'किसान-वैश्य-गृहस्थ' को जितना होगा, उससे अधिक 'वणिक्-वैश्य-गृहस्थ' को होगा, यह मानने का कोई कारण नहीं।

विश्वस्त वृत्ति : सार्वकालीन धर्म

लेकिन आज की हालत में, जब कि कई व्यवसाय केन्द्रित हैं, अपरिग्रह-धर्म की प्रतिष्ठापना के लिए एक कदम के तौर पर विश्वस्त वृत्ति (ट्रस्टीशिप) का विचार सामने आता है। केन्द्रित व्यवस्था में वैश्य-गृहस्थ के लिए विश्वस्त वृत्ति एक विशेष धर्म हो जाता है। यहाँ पर कोई यह पूछेगा कि क्या विकेंद्रित या स्वयंपूर्ण व्यवस्था में विश्वस्त वृत्ति की आवश्यकता समाप्त हो जायगी? नहीं, वह समाप्त नहीं हो सकती, लेकिन उसका स्वरूप बदल जायगा। श्रेष्ठ बुद्धि, श्रेष्ठ शारीरिक-शक्ति, श्रेष्ठ अधिकार, श्रेष्ठ अनुभव आदि कारणों से विश्वस्त वृत्ति की आवश्यकता सर्वदा और सर्वत्र रहेगी, बल्कि भिन्न-भिन्न समाजों और राष्ट्रों के बीच भी रहेगी और वह परस्परावलंबी होगी। याने बाप बेटे के लिए विश्वस्त होगा और बेटा बाप के लिए विश्वस्त। गृहस्थ ब्रह्मचारी के लिए विश्वस्त होगा और ब्रह्मचारी गृहस्थ के लिए विश्वस्त। वैश्य क्षत्रिय के लिए विश्वस्त होगा और क्षत्रिय वैश्य के लिए विश्वस्त। सरकार जनता के लिए विश्वस्त होगी और जनता सरकार के लिए विश्वस्त। स्वदेश परदेश के लिए विश्वस्त होगा और परदेश स्वदेश के लिए विश्वस्त। याने विश्वस्त वृत्ति अंतिम स्थिति में वृत्ति के आकार में उड़ जायगी और विश्वास-रूप गुण के आकार में रह जायगी।

२०-१०-'५२

बिहार में प्रवेश करते ही हमने घोषित कर दिया कि हम भगवान् बुद्ध के चरण-चिह्नों पर चलने की ही कोशिश कर रहे हैं। जो धर्म-चक्र-प्रवर्तन उन्होंने शुरू किया, उसीको इस जमाने के अनुसार आगे बढ़ाने का हमारा यह प्रयत्न है। भगवान् बुद्ध ने जो विचार दिया, उसकी सत्ता इस जमाने में भी है और उससे इस जमाने का भी कल्याण होगा, क्योंकि वह एक धर्म-विचार है।

निर्वैरता की और अन्याय-प्रतिकार की परंपरा

उन्होंने कहा था कि 'आप लाख प्रयत्न कीजिये, कभी वैर से वैर की शांति हो ही नहीं सकती।' यही उनके धर्म-विचार की मूल प्रेरणा है। यद्यपि यह प्रेरणा उनके भी पहले से यहाँ चली आ रही है, पर भगवान् बुद्ध की वाणी से वह विशेष रूप से हमारे यहाँ चली और उस प्रेरणा के स्थान भगवान् बुद्ध बने। ढाई हजार साल से वे इस विजय-मंत्र की प्रेरणा-शक्ति बनकर जगत् को शांति-संदेश देते आ रहे हैं।

किन्तु हिन्दुस्तान में केवल यही एक विचार-धारा चलती रही, ऐसी बात नहीं है। इससे भिन्न भी अन्याय के प्रतिकार का एक विचार-प्रवाह चला, जिसे समाज-शास्त्रज्ञों ने चलाया। उन समाज-शास्त्रज्ञों या स्मृतिकारों ने इस विचार को सामने रखा और कहा कि 'जहाँ कहीं भी अन्याय होता हो, उसका प्रतिकार करना ही चाहिए।' हिन्दुस्तान के इतिहास में इस विचार का एक प्रवाह और चलता आ रहा है।

इस तरह यहाँ दो विचारधाराएँ चलती आयी हैं : (१) वैर से वैर बढ़ता ही है, इसलिए निर्वैर रहना चाहिए, और (२) समाज में जहाँ कहीं भी अन्याय होता हो, वहाँ उसका प्रतिकार करना ही चाहिए, अन्याय हर्गिज न सहना चाहिए।

ये दोनों विचार समानान्तर चलते आये हैं। महापुरुष और देश के सेवकों पर दोनों का प्रभाव रहा है। अन्याय का प्रतिकार करना मान लेने पर यह भी विचार-प्रणाली निर्माण हुई कि स्वभावतः जो शस्त्र लेकर सामने आये, उससे लड़ने के लिए अपने हाथ में शस्त्र लेने में हिचकिचाहट न होनी चाहिए। वे कहते थे : 'हमें शस्त्र से किसी पर भी आक्रमण न करना चाहिए। किन्तु लोगों को पीड़ा देनेवाले जुल्मी व्यक्ति के खिलाफ उसका प्रतिकार करने के लिए, बचाव और सत्य-रक्षा के लिए हम शस्त्र जरूर ले सकते हैं और लेना ही चाहिए।' अन्याय-प्रतिकार की इस विचार-प्रणाली में विक्रमादित्य, राणा प्रताप, शिवाजी जैसे अनेक महापुरुष निर्माण हुए। उन्होंने माना कि अन्याय का प्रतिकार शस्त्र से भी करना चाहिए, फिर भी उनकी ओर से स्वतंत्र आक्रमण नहीं हुआ। हिन्दुस्तान के इतिहास में यह एक बहुत बड़ी बात है कि इस देश ने अपने उत्कर्ष-काल में भी दूसरे किसी देश पर आक्रमण नहीं किया। यहाँ बड़े-बड़े राजा हुए। बड़ी-बड़ी सत्ताएँ रहीं, पर उत्कर्ष-काल में—जिस समय हाथ में पूरी ताकत थी—भी यहाँ के किसी राजा ने दूसरे किसी बाहरी मुल्क पर आक्रमण नहीं किया। क्षात्र-धर्म की यही मर्यादा मानी गयी है। अन्याय-प्रतिकार का यह लक्षण है कि हम उसका प्रतिकार जरूर करेंगे, पर अपनी ओर से किसी पर आक्रमण करना अन्याय है। यह एक धर्म-विचार था।

दूसरा विचार था 'वैर से वैर नहीं मिटता।' आज कोई हमसे शस्त्रबल में बलवान् सिद्ध होता है, तो हम उससे ज्यादा बलशाली शस्त्र लेकर उसका प्रतिकार करते हैं। इस तरह चलते-चलते आज हम 'टोटल वार' तक आये, जहाँ समूचे राष्ट्र युद्ध के लिए खड़े हो जाते हैं। किन्तु वैर से वैर मिटता नहीं, इस विचार को माननेवालों की जो परंपरा हिन्दुस्तान में चली, वह सन्तों की परंपरा है। कबीरदास, तुलसीदास आदि की वृत्ति निर्वैर थी। याने सन्तों की परंपरा है निर्वैर वृत्ति और वीरों की परंपरा है अन्याय-प्रतिकार। निर्वैरता और अन्याय-प्रतिकार, दोनों धर्म हैं। शिवाजी और तुकाराम एक ही जमाने में हुए। तुकाराम बुद्ध भगवान् की निर्वैरता की परंपरा के संत थे, तो शिवाजी वीरों की परंपरा के। दोनों को एक-दूसरे के लिए आदर था। तुकाराम का संकीर्तन सुनने के लिए

शिवाजी बड़े भक्तिभाव से जाते थे, पर शिवाजी के अन्याय-प्रतिकार के काम में तुकाराम हाथ नहीं बँटाते थे। वे कहते कि यह मेरा काम नहीं है। और शिवाजी भी राजसत्ता छोड़कर तुकाराम के भजन-संप्रदाय में नहीं गये। अगर तुकाराम से पूछा जाता कि 'शिवाजी का अन्याय-प्रतिकार ठीक है या नहीं ?' तो वे कहते, 'ठीक है।' फिर उनसे पूछा जाता कि 'वह ठीक है, तो तुम क्यों नहीं वह काम करते ?' तो वे कहते कि 'वह मेरा धर्म नहीं है। समाज की हालत ऐसी है कि शिवाजी जो काम करते हैं, उसे हम रोक नहीं सकते।' इस तरह से समाज में दो परंपराएँ चलीं।

गांधीजी का प्रतिकार-विचार

फिर हिन्दुस्तान में अंग्रेज आये और उन्होंने सारे शस्त्र छीन लिये। इसलिए हिन्दुस्तान के सामने अब ऐसी समस्या उठ खड़ी हुई कि या तो अन्याय को हमेशा के लिए सहना होगा या प्रतिकार का कोई ढंग निकालना होगा। इतने में परमेश्वर की कृपा से गांधीजी आये। उन्होंने संतों की परंपरा को प्रतिकार से जोड़ दिया। उन्होंने कहा कि 'हम निर्वैर रहेंगे और प्रतिकार भी करेंगे।' यह एक बड़ा भारी विचार सारी दुनिया को मिला, जहाँ निर्वैरता और प्रतिकार-वृत्ति, दोनों का मिश्रण हुआ। अब हमारे समाज के लिए रास्ता खुल गया, अन्यथा समाज में बुद्धि-भेद हो जाता था। कुछ लोग इधर झुके थे, तो कुछ लोग उधर। समाज के टुकड़े हुए थे। लेकिन अब ऐसी युक्ति हासिल हुई कि दूध और शक्कर, दोनों मिल गये। हम उस मिश्रण को एक साथ पी सकते हैं। निर्वैरता से प्रतिकार की शक्ति बढ़ गयी और प्रतिकार से निर्वैरता की शक्ति बढ़ी। यह बड़ा भारी उपकार हुआ। इसमें गांधीजी का बड़ा उपकार है, किन्तु उनसे भी अधिक उपकार है, अंग्रेजों का, क्योंकि उन्होंने देश को निःशस्त्र न बनाया होता, तो लाखों लोग गांधीजी की बात नहीं मानते। उन्हें सिर्फ हमारे जैसे दो-चार चेले मिल जाते। परन्तु सारे देश में एक विचार फैला और उसका कुछ टूटा-फूटा आचरण भी हुआ। निर्वैरता का पूरा उपयोग करना कठिन हुआ, इसलिए हमने कुछ टूटा-फूटा, लूला-लँगड़ा आचरण किया। किन्तु उससे यह मार्ग चल पड़ा।

आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग आवश्यक

अब विज्ञान का युग आया है। विज्ञान के कारण लड़ाई भयानक हुई है। प्राचीन काल में लड़ाई उतनी भयानक नहीं थी। लड़ाई में उस समय हानि से लाभ अधिक होता था। किन्तु विज्ञान के इस युग में लड़ाई की भयानकता इतनी बढ़ गयी है कि लड़ाई का लाभ बहुत थोड़ा होता और हानि ही बहुत होती है। इसलिए अब निर्वैर प्रतिकार होता है, तो समाज के मसले हल होते और लड़ाई की हानियों से समाज बचता है। इस तरह आज अंग्रेजों की करामात, गांधीजी का निमित्त और विज्ञान-युग का अवतार, तीनों मिलकर बुद्ध भगवान् की शिक्षा का प्रयोग करने का मौका मिला है। अगर हम उस पर अमल करें, तो वह विचार दुनिया में फैलेगा।

गांधीजी ने उस शस्त्र का उपयोग राजनैतिक आजादी प्राप्त करने में किया था, परन्तु उसीसे वह शस्त्र कारगर नहीं साबित हो सकता, क्योंकि हमें जो आजादी मिली, उसमें दुनिया की ताकतें भी काम कर रही थीं। दुनिया की ताकतें उसके अनुकूल थीं। इसलिए दुनिया को यह कहने का मौका मिला कि महायुद्ध के कारण ऐसी कई शक्तियाँ निर्माण हुईं, जिनसे हमें आजादी मिली। हम भी कबूल करते हैं कि उस समय दुनिया में जो शक्तियाँ काम कर रही थीं, उनका और अहिंसा का भी परिणाम हुआ है। पूरी तरह वह अहिंसा का ही परिणाम था, ऐसा हम भी नहीं कह सकते। आज के जमाने में एक देश दूसरे देश को बहुत दिनों तक अपने कब्जे में नहीं रख सकता। प्राचीन काल में रोमन-साम्राज्य बारह सौ साल तक चला, पर उसके बाद के साम्राज्य उतने नहीं चले, क्योंकि लोग जाग्रत हो रहे थे। अब विज्ञान का युग है, शिक्षा फैल रही है, इसलिए साम्राज्य ज्यादा दिन तक नहीं टिक सकते। अंग्रेजों का साम्राज्य भी नहीं टिका। उनके पास विज्ञान था, फिर भी मुश्किल से १५० साल उनका साम्राज्य टिक सका, यद्यपि रोमन-साम्राज्य से उनके पास कई गुना ज्यादा ताकत थी। इस वैज्ञानिक युग में एक साल की कीमत प्राचीन दस साल के बराबर है।

यह रेडियो-वायरलेस का जमाना है। विज्ञान देशों को नजदीक ले आया है, काल की गति बढ़ गयी है। इसलिए हमारे लिए राजनैतिक आजादी प्राप्त करना आसान बात थी। किन्तु अगर हम आर्थिक समता स्थापित करने का काम अहिंसा से करते हैं, तो वह बहुत बड़ी बात हो जाती है। उससे निर्वैरता या अहिंसक-प्रतिकार की शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

वैज्ञानिक युग में राजनैतिक आजादी प्राप्त करना आसान बात है, क्योंकि दुनिया की शक्तियाँ उसके अनुकूल हैं। इसलिए उतने अरसे से अहिंसक शक्ति का पूरा भान नहीं हुआ। अगर पूरा भान होता, तो गांधीजी के रहते हिन्दुस्तान के दो टुकड़े न होते। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हिन्दू मुसलमानों के जो झगड़े चले, जिसमें लाखों लोग बरबाद हुए, वे नहीं होते। इसलिए हम कहते हैं कि अहिंसा की शक्ति का हमें पूरा भान नहीं हुआ। हमारी अहिंसा लाचारी की थी। किन्तु अब हमारे हाथ में सत्ता आ गयी है। हम चाहें तो हिंसा का उपयोग कर सकते हैं और चाहें तो अहिंसा का। ऐसी स्थिति में अगर हम देश का आर्थिक प्रश्न अहिंसा से हल करें, तो संसार में शस्त्ररूप से आविर्भूत निःशस्त्र प्रतिकार कार्यकारी सिद्ध होगा और संसार को मार्ग मिलेगा। इसलिए आपको ठीक ढंग से सोचना चाहिए।

दया धर्म का मूल, पर समता पूर्णता

हम जमीन माँगते हैं, भीख नहीं। हम छठा हिस्सा माँगते हैं, दया का आवाहन नहीं करते। गरीबों पर दया करो, ऐसा नहीं कहते। दया और करुणा के लिए भी स्थान है, वे भी धर्म हैं। हमने अपने मार्ग को 'करुणा-मार्ग' भी कहा है। किन्तु हम लोगों से कहते हैं कि समता को मानो और हवा, पानी तथा सूरज की रोशनी के समान जमीन भी परमेश्वर की देन है, इसलिए उन पर किसीकी मालकियत नहीं, सबका समान अधिकार है—इस तत्त्व को याने समता के तत्त्व को मानकर जमीन दो। दया का आधार समता है, यही मानकर जमीन दो। अगर हम सिर्फ दया की बात कहते, तो साथ में हक नहीं मान सकते। और कोई कुछ भी देता, तो उसका हम उपकार मानते। किन्तु हम तो एक प्रकार से सत्याग्रह कर रहे हैं। हम तो जिससे जमीन माँगते हैं, उसके घर के सामने खड़े होकर कहते

हैं कि आप समता मानते हो न ? हम आपके बच्चे हैं। हमें हमारा हिस्सा दो। दया एक चीज है और समता दूसरी चीज।

तुलसीदासजी ने कहा है कि 'दया धर्म का मूल है', पर वह धर्म की पूर्णता नहीं, आरम्भ है। एक मालिक अपने नौकर को प्यार करता है। बीमारी में उसे मदद देता है, उसके बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करता है। अगर वह यह सब करता है, तो वह 'दयालु मालिक' जरूर कहलायेगा, उसने धर्माचरण किया, ऐसा कहा जायगा। परन्तु अगर कोई उससे कहे कि अपने आसन के आधे हिस्से पर उस नौकर को बिठाओ, तो वह नहीं मानेगा। हम अपने बैल को भी अच्छा खिलाते हैं, पर उसे अपने पास नहीं बैठाते। अच्छे और दयालु मनुष्य बैलों की अधिक चिन्ता करते हैं, पर बैलों में और हममें समता है, इस बात को वे नहीं मानते। बैल पर दया करने को हम राजी हैं, पर उसके साथ समता मानने को राजी नहीं। इसी तरह कुछ लोग आज कहते हैं कि हम अपने नौकर को पाँच एकड़ देंगे, तो हम उनसे कहते हैं, 'ठीक है, पर यह पूरा नहीं है। इस बात को कबूल कीजिये कि जमीन पर सबका हक है, सिर्फ आपका नहीं।' जो इस बात को कबूल नहीं करते और दयालु नहीं होते, वे हमारी माँग नहीं मानते। किन्तु जो दयालु होते हैं, वे कहते हैं कि "आपकी माँग हम कबूल करते हैं, पर समता नहीं मानते। दुनिया में बुद्धि तो कम-बेशी होती ही है। फिर समता कैसे स्थापित हो ?"

हम उनसे कहते हैं कि भगवान् ने यदि कम-बेशी बुद्धि दी है, तो सबको एक वोट देने का अधिकार क्यों दिया जाय ? नेहरूजी को भी एक ही वोट का अधिकार है, और उनके चपरासी को भी एक ही। यह मूर्खता है या इसके पीछे कोई अक्ल है ? हर कोई जानता है कि पण्डित नेहरू और उनके चपरासी की अक्ल समान नहीं है, फिर भी दोनों को समान वोट का हक दिया गया है। इसका मतलब यही है, आपने आत्मा की समता मान ली है, चाहे आप वेदान्त को न समझे हों। मनुष्य-मनुष्य में कोई फर्क तो है ही, पर हरएक को एक वोट का हक देने का मतलब है कि आप आत्मा की समता कबूल करते हैं। यह बुनियादी उसूल आपने मान लिया, तो अब उसी पर आपको मकान बनाना होगा। बुनियाद एक प्रकार की और मकान दूसरे प्रकार का, यह हो नहीं सकता। आपने

तो सबको समान वोट देकर समता को माना, इसका मतलब ही है कि जमाना समता की माँग कर रहा है। और आपने वह माँग मान ली, तो आहिस्ता-आहिस्ता आप उसे जीवन में लाने की कोशिश कीजिये और तब तक दया कीजिये।

वामन के तीन डग

दया प्राथमिक धर्म है, धर्म की पूर्णता नहीं। दया धर्म का फल नहीं, धर्म का मूल या आरम्भ है। जब धर्म परिपूर्ण या फलित होगा, तभी उसे समता का फल लगेगा। गीता ने स्थितप्रज्ञ संन्यासी, योगी, भक्त सभी महापुरुषों के लक्षणों में समता की बात कही है; क्योंकि धर्म का लक्षण समता है। आत्मा समान है। इसलिए हमें अपना जीवन धीरे-धीरे समता की ओर ले जाना चाहिए। इसलिए जो जमीन देते हैं, उनसे हम कहते हैं कि गरीबों की सेवा का व्रत लीजिये। जमीन देना तो आरम्भ है। गरीबों की सेवा करते-करते आप खूब गरीब बन जायँगे। ऐच्छिक गरीब बनेंगे, तो आप सच्ची समता पर पहुँच जायँगे। (१) जमीन देना, (२) गरीबों की सेवा का व्रत लेना और (३) खुद गरीब बनना—ये वामन के तीन चरण हैं। सब गरीब बनेंगे, तब गरीबी मिटेगी। जब गरीबी बँटेगी, तब गरीबी मिटेगी। तब सबका स्तर समान हो जायगा।

सौम्य और उग्र सत्याग्रह

समाज में दया चल रही है, फिर भी लोग समझते हैं कि विषमता कायम करते हुए हम दया कर सकते हैं। किन्तु वह दया अब अपर्याप्त है। अब समता की जरूरत है। समता लाने के लिए ही भूदान-यज्ञ चल रहा है। निर्वैर-प्रतिकार और सत्याग्रह का यह एक अंग है। हम लगातार घूमते हैं, बारिश में भी घूमते हैं। लोगों से छठे हिस्से की माँग करते हैं। कोई कम देता है, तो लेने से इनकार कर देते हैं। यह सारा सत्याग्रह ही चल रहा है। कुछ लोग हमसे पूछते हैं, "इसका कुछ परिणाम न हुआ, तो आप क्या करेंगे?" हमने जवाब दिया कि हम इस तरह से सोचते ही नहीं। किन्तु कुछ परिणाम न हुआ, तो सत्याग्रह एक

ऐसा महान् शस्त्र है कि उसके सामने कोई टिक नहीं सकता, क्योंकि उसमें निर्वैरता और प्रतिकार, दोनों हैं और उससे उसकी शक्ति बढ़ जाती है।

आज हमारा सौम्य सत्याग्रह चल रहा है। आगे चलकर वह उग्र भी हो सकता है। जब हम ऐसी बातें करते हैं, तो कुछ लोग कहते हैं कि 'अब आप धमकाने लगे हैं।' किन्तु अगर कोई लड़का अपने शराबी पिता से कहता है कि आप शराब छोड़िये, नहीं तो मैं खाना नहीं खाऊँगा, तो क्या उस लड़के ने पिता को धमकाया? अगर कोई माँ अपना बच्चा बुराई छोड़े, इसलिए खाना बन्द कर देती है, तो क्या माँ ने बच्चे को धमकाया? यह ध्यान रखना होगा कि जहाँ निर्वैरता और प्रतिकार, दोनों आते हैं, वहाँ धमकाया नहीं, जगाया जाता है। बच्चों को किस तरह जगाया जाता है? माँ दो-चार बार उससे कहती है, 'बेटा, उठ।' अगर वह न उठा, तो वह उसके शरीर को स्पर्श कर उसे हिलाती है। इस तरह एक के बाद एक कृतियाँ होती हैं। शब्द के बाद जो स्पर्श होता है, वह धमकाना या हिंसा नहीं, प्रेम का स्पर्श है। जब प्रेम अपने छोटे रूप में हार जाता है, तब वह अपना बड़ा रूप प्रकट करता है। जो काम पाँच रुपयों से नहीं होता, उसके लिए जब दस रुपये दिये जाते हैं, तो वह एक ही बात हो जाती है। लेकिन अगर पाँच रुपयों से काम नहीं होता, इसलिए छह तमाचे लगाये जायँ, तो वह जरूर धमकाना होगा। पर पाँच रुपयों के बदले छह या दस रुपये देना धमकाना नहीं, उसी रास्ते पर थोड़ा आगे ले जाना है। आपकी जड़ता हटाने के लिए अधिक चैतन्य प्रकट करना होगा। सामनेवाला जितना जड़ है, उतना चैतन्य प्रकट करना पड़ता है। सामने जितना अन्धकार है, उतना प्रकाश जरूरी होता है। हमारे मन में छीनने या धमकाने की कोई बात ही नहीं है। हमें तो अंतरात्मा को जगाना है। जगाने के लिए घूमना पड़ता है, माँगना पड़ता है, व्याख्यान देना पड़ता है। इसके लिए हमें सत्याग्रह भी करना पड़े, तो वह भी करेंगे, क्योंकि वह जगाने की प्रक्रिया है।

सत्याग्रह प्रेम की प्रक्रिया है! इसलिए जिनके सामने सत्याग्रह किया जायगा, वे हमारा उपकार मानेंगे। जो माँ अपना बच्चा सुधरे, इसलिए उपवास करती है, उसका बच्चा यह मानेगा कि माँ उपवास करती है याने मुझ पर उपकार

करती है। इसी तरह सामनेवाला सत्याग्रह को धमकी न मानेगा। अगर सामनेवाला उसे धमकी समझे, तो इसका मतलब हुआ कि वह सच्चा सत्याग्रह ही नहीं है। जब सामनेवाला सत्याग्रह को धमकी नहीं समझता और यह मानता है कि प्रेम अब बड़े रूप में प्रकट हो रहा है, तभी वह सच्चा सत्याग्रह कहलाया जायगा।

बेगूसराय
१-११-'५२

विज्ञान के आधार पर नया समाज-शास्त्र : ३८ :

आपके इस पुण्य-पावन प्रदेश में सोलह मास से हमारी यह पैदल यात्रा सूर्य-नारायण की नियमितता से और उसकी साक्षी में चल रही है। इस बीच हमें गाँव-गाँव का जो दर्शन हुआ, वह अद्भुत ही अनुभव है। हमने देखा कि जो पढ़े-लिखे नहीं हैं, जिन्हें शास्त्र का कोई ज्ञान नहीं और जो इतिहास भी नहीं जानते, वे भी भूदान का विचार सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुकता से आते हैं। गाँव-देहात के ये लोग यह विचार अच्छी तरह समझ लेते और उन्हें यह जँच जाता है। कभी-कभी तो यहाँ तक होता है कि वे हमसे आकर शिकायत तक करते हैं कि हमारे पास माँगनेवाला कोई नहीं पहुँचा। साधारण तौर पर बिहार की आम जनता में भूदान के लिए इतनी उत्सुकता है। लेकिन शहर के लोगों को अभी यह चीज समझना बाकी है।

क्रान्ति के अगुआ ग्रामीण

अगर बुद्धि और हृदय का विभाजन कर समझें, तो मानना पड़ेगा कि देश की बुद्धिमत्ता शहर में है और हृदय देहात में। नागरिकों को कोई विषय तब ग्रहण होता है, जब उनकी बुद्धि में वह प्रवेश करता और उसके द्वारा हृदय तक पहुँचता है। इसके विपरीत देहाती लोगों को विषय तब समझ में आता है, जब वह उनके हृदय को ग्रहण करता और फिर उनमें उसका प्रवेश होता है। ये दो भिन्न-भिन्न मानस के प्रकार हैं। इसीलिए हमें आश्चर्य नहीं है कि शहर

के लोगों को इस विषय की जानकारी अभी उतनी नहीं हुई है, जितनी कि देहातियों को हुई है। रास्ता बनाने का काम मोटर चलानेवाले नहीं, कुदाल चलानेवाले ही करते हैं। जब वे रास्ता बना लेते हैं, तो फिर मोटरवाले उन पर सरपट दौड़ते हैं, उन रास्तों के उपयोग में मोटरवाले अग्रसर होते हैं। यही बात देहात और शहर को लागू है। क्रान्ति की राह तैयार करनेवाले देहाती होते हैं, यह दुनिया का अनुभव है। उसके बाद उसकी पूर्णता नागरिकों द्वारा होती है। क्रान्ति का मूलभूत विचार पहले किसी चिन्तनशील ज्ञानी को सूझता है, तब वह आम जनता में प्रवेश करता है। उसके बाद नागरिक उस विचार की छानबीन करते और उसे ग्रहण करते हैं। बाद में सरकार भी उसे स्वीकार करती और उसके अनुसार कानून भी बनता है। इसलिए हमें इसका न आश्चर्य है और न दुःख ही।

भू-समस्या हल होकर रहेगी

मैं पैदल चल रहा हूँ। जाहिर है, काफी सब्र रखता हूँ। अगर सब्र न रखता, तो अब तक पाँव टूट जाते। फिर भी प्रतिदिन मेरा उत्साह बढ़ रहा है, क्योंकि विचार का सम्यक् दर्शन न केवल मेरी बुद्धि को हो रहा है, बल्कि अभी दिनकरजी ने भी वही गाया है। उन्हें भी दूर का दीखता है। कवि का लक्षण ही यह है, "कविः क्रान्तदर्शी"। भेद इतना ही है कि जहाँ उन्हें कवि की दृष्टि से यह दर्शन हुआ, वहीं मुझे चिन्तनशील के नाते हुआ। इसमें जरा भी शक नहीं कि भूमि कितनी मिलती है, इसकी चिन्ता मैं नहीं करता। पर यह जरूर देखता हूँ कि लोग कितना विचार ग्रहण करते हैं।

मानस-शास्त्र और विज्ञान पर आधृत समाज-रचना

मनुष्य का जीवन अनेकविध शाखाओं से पूर्ण है। जीवन की अनेक शाखाएँ हैं और एक शाखा के अध्ययन करनेवाले कई होते हैं। एक-एक शाखा पर शास्त्र रचे गये हैं और इन शास्त्रों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। पर शायद सबसे जटिल, महत्त्व का और नित्य विकसनशील कोई शास्त्र है, तो वह समाज-शास्त्र है। समाज-शास्त्र के अन्दर अनेक शास्त्रों का समावेश हो जाता है,

लेकिन वह प्राचीन काल से आज तक विविध देशों की परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग ढंग से बना है। इस जमाने की बड़ी शक्ति विज्ञान है। पुराने जमाने में भिन्न-भिन्न देशों में जो समाज-शास्त्र बना, वह मानस-शास्त्र पर आधृत होता था। अभी तक की समाज-रचना मानस-शास्त्र के आधार पर यही सोचकर हुई कि 'जब मेरी ही तरह दूसरों को भी काम, क्रोध, लोभ, मोह का अनुभव होता है, तो उनका समाधान कैसे किया जाय? इन पर नियन्त्रण कैसे किया जाय, जिससे अनर्थ न होकर सभी को सुख प्राप्त हो?'

किन्तु विज्ञान का यह जमाना कुछ दूसरी ही बात दिखा रहा है। विज्ञान मन से परे, मन से ऊपर है। सामने की चीज के गुण-धर्म मेरी इच्छा पर निर्भर नहीं। शक्कर का मीठा होना, नमक का नमकीन होना या वर्तुल का वर्तुलाकार होना मेरी इच्छा, मेरी वासना या मेरी रुचि पर निर्भर नहीं है। वह स्वतन्त्र है। उसका मुझ पर जो असर होता है, उसकी जिम्मेवारी मेरी है, लेकिन उसकी अपनी स्वतन्त्र हस्ती है। विज्ञान ने बता दिया कि हमें सृष्टि के कानून के अनुसार ही बरतना होगा। सृष्टि के कानून वैसे तो अनेक हैं, पर मूलभूत एक कानून यह है कि 'जैसा बोओ, वैसा पाओ।' अगर आम की गुठली बोयी जाती है, तो आम का पेड़ मिलेगा और बबूल बोया जाता है, तो बबूल! यह बात टल नहीं सकती। यों तो यह विज्ञान तो हमें प्राचीन काल से मालूम है, पर आज के फैले विज्ञान ने इसे बड़े पैमाने पर प्रकट कर दिया है। इसलिए सृष्टि के इस अनुभव को हम सृष्टि तक ही सीमित नहीं रख सकते। समाज-शास्त्र भी इसी अनुभव पर खड़ा करना होगा। आज तक बुराई से बुराई के प्रतिकार के अनेक प्रयत्न किये गये, पर विज्ञान बताता है कि उनसे बुराई बढ़ती ही जाती है, घट नहीं सकती। विज्ञान के कारण लोगों को इस विचार का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है।

इसी तरह इस जमाने में विज्ञान ने सामूहिक प्रयत्न को जगाया है। जो सामूहिक भावना सीमित थी, वह अब विश्वव्यापी हो गयी है। अपने देश के इतिहास में कितने ही सम्राट् और उनके साम्राज्य हो गये, पर उन्हें भी दुनिया के दूसरे हिस्से में क्या हो रहा है, इसकी जानकारी नहीं थी। लेकिन आज स्कूल का

एक छोटा-सा बच्चा भी सारी दुनिया में क्या-क्या हलचलें हो रही हैं, इसकी जानकारी और विदेश के राजकरण में दिलचस्पी रखता है। यह बात पहले नहीं थी, क्योंकि विज्ञान उतना फैला नहीं था। अक्सर व्यक्ति के अनुभव व्यक्ति तक सीमित रहते थे। पर अब जो चीजें बनेंगी, सामूहिक तौर पर बनेंगी, ऐसी स्थिति विज्ञान ले आया। हिंसा के औजार बनेंगे, तो बड़े पैमाने पर बनेंगे और अगर अहिंसा का संगठन होगा, तो वह भी बड़े पैमाने पर होगा। क्रूरता के काम होंगे, तो बड़े पैमाने पर होंगे और दया के काम होंगे, तो वे भी बड़े पैमाने पर होंगे।

विज्ञान-युग में सामूहिक प्रयोग

भगवान् बुद्ध जैसे की आवाज दुनिया में पहुँचने में सैकड़ों साल लग गये, पर आज हमारे जैसे साधारण लोगों की आवाज भी सारी दुनिया में तत्काल पहुँच सकती है। इसलिए अब जो भी काम, चिन्तन या प्रयोग होंगे, सामूहिक तौर पर ही होंगे। इसीलिए मैंने कह दिया है कि 'हिन्दुस्तान में प्रकट हुए आत्मज्ञान ने व्यक्तिगत क्षेत्र में कुछ संशोधन किये। अब उस पर पश्चिम से आये विज्ञान का प्रभाव पड़ रहा है, और दोनों के मिश्रण से सामूहिक अहिंसा का निर्माण हो रहा है।' आप देखते ही हैं कि इस जमाने में शास्त्रों के प्रयोग बड़े पैमाने पर हो रहे हैं। पाकिस्तान के लोग अमेरिका से मदद माँग रहे हैं और वह दे रहे हैं। उसका असर सारे एशिया पर एक-सा पड़ रहा है। कुछ लोग सोच रहे हैं, तो कुछ चिन्ता में पड़े हैं। सारे एशियाई देशों को महसूस हो रहा है कि इससे एशिया के जीवन पर प्रभाव पड़ सकता है। एशिया के टुकड़े हो सकते हैं और उन टुकड़ों के बीच संघर्ष हो सकते हैं। किन्तु मुझे इसकी कोई चिन्ता मालूम नहीं होती। मैं मानता हूँ कि इन दिनों जो भी योजनाएँ, जो भी संगठन होंगे, वे बहुत बड़े पैमाने पर होंगे, यह अपेक्षित ही है। इसी कारण जैसे पहले जमात के बीच झगड़े होते थे, वैसे अब नहीं होंगे। एक देश के दूसरे देश के साथ झगड़े न होंगे, बल्कि एक राष्ट्र-समूह के साथ दूसरे राष्ट्र-समूह के झगड़े होंगे। विज्ञान बोल चुका है। वह कहता है, बुराई का फल बुरा होगा और अच्छाई का फल अच्छा। इसका प्रयोग व्यापक पैमाने पर करके देखिये और अनुभव लीजिये।

इसलिए लोग जैसे-जैसे जागतिक युद्ध की बात करते हैं, मेरा दिल उत्साहित होता है। लगता है, लोग बहुत जोरों से अहिंसा की ओर दौड़ रहे हैं। विज्ञान और हिंसा में शादी हुई, तो निःसन्देह मानव-जाति का संहार होगा। इसलिए विज्ञान के साथ अहिंसा का ही सम्बन्ध जोड़ने की वृत्ति ठीक रहेगी। अगर हिंसा के छोटे-छोटे प्रयोग चले, तो उनका अन्त ही न होगा। पर बड़े प्रयोग हुए, तो परिणाम शीघ्र होगा। या तो मनुष्य की बुद्धि परिवर्तित होगी या उसका खातमा ही हो जायगा। मेरा विश्वास है कि मानव अक्ल रखता है, वह अपनी जाति को निर्वीर्य नहीं होने देगा। और ये प्रयोग थोड़े ही समय में खतम हो जायँगे। फिर जो अहिंसा आयेगी, वह बड़े पैमाने पर आयेगी। इसलिए ये घटनाएँ मुझे मामूली महसूस होती हैं।

महायुद्ध : सृष्टि-शक्ति का परिणाम

आपके प्रधानमंत्री ने ५-६ मास पहले कहा था कि 'हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के सम्बन्ध सुधर रहे हैं' और अब वे ही कहते हैं कि 'दृश्य बदल रहा है और कोई दूसरी दिशा आ रही है।' इसके माने क्या हैं? यही कि मनुष्य की बुद्धि से चीजें नहीं हो रही हैं, बल्कि सृष्टि-देवता कुछ कार्य कर रहे हैं। जैसे भूकम्प होनेवाला हो, तो उसका अन्दाजा पहले नहीं लगता, वैसे ही महायुद्ध का भी अन्दाजा किसीको नहीं लगता—न तो हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री को लगता है और न अमेरिका के प्रेसिडेण्ट को। जैसे भूकम्प सृष्टि-शक्ति का परिणाम है, वैसे ही ये महायुद्ध भी विश्व-सृष्टि-शक्ति के परिणाम हैं। ये मानव-बुद्धि से नहीं होते। जहाँ मानव-बुद्धि कुंठित होती है, वहीं ये होते हैं। इसलिए मनुष्य औजार बनाते हैं और औजार बनाकर लड़ मरते हैं। कोई ऐसी लड़ाई नहीं चाहता, जिसमें मानव का संहार हो। दुनिया में कोई ऐसा शैतान नहीं हुआ, जो ऐसी इच्छा रखता हो। पर सृष्टि-चक्र चलता है और गति मिलती है।

विज्ञान गतिप्रद और आत्मज्ञान दिशासूचक

गति देना विज्ञान का कार्य है। किन्तु किसी दिशा में ले जाना विज्ञान से नहीं हो सकता। यह तो आत्मज्ञान से ही हो सकता है। विज्ञान गति देता है और

त्मज्ञान दिशा बताता है। मोटर में गति देने का इन्तजाम अलग होता है और शा बताने का इन्तजाम अलग। नौका चलाते हैं, उसमें भी गति एक ढंग से दी ती है, तो दिशा दूसरे ढंग से। इस तरह दिशासूचक और गतिप्रद यन्त्रों अलग-अलग शक्तियाँ हैं। विज्ञान गति है, दिशा सूचन करने की शक्ति उसमें हीं। वह तो आत्मज्ञान में है। मुझे विश्वास है कि आत्मज्ञान के साथ जहाँ विज्ञान सम्बन्ध आ रहा है, वहाँ प्रयोग करने से शायद कुछ हानि उठाने के बाद नुष्य ठीक राह पर आयेगा और समाज-शास्त्र का उत्तम निर्माण होगा, तब तक ; शंकाकुल और अस्थिर रहेगा।

दुनिया में कोई देश आजाद नहीं

हम चाहते हैं कि जनता को शक्ति और सच्ची आजादी महसूस हो, सबको सच्ची स्वतंत्रता मिले। आज दुनिया में कुछ देश गुलाम, तो कुछ देश आजाद माने जाते हैं, पर दोनों ही गुलाम हैं, हम किसीको आजाद नहीं देखते। द्वितीय महायुद्ध के आदि और अन्त में हमने देखा कि हिटलर के अधीन जर्मनी आजाद माना गया। सेनापति का हुक्म हुआ, तो दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह लाख लोग खड़े हुए और उन्होंने दूसरों पर हमला किया। इसी तरह जब सेनापति ने आज्ञा दी कि 'शस्त्र नीचे रखो और शत्रु की शरण जाओ', तो लाखों की तादाद में लोग शस्त्र नीचे रखकर शत्रु की शरण आ गये। हम इसे आजादी नहीं समझते। जहाँ समूचे राज्य के लोग किसी एक या दस-बीस मनुष्यों की आज्ञा के अनुसार शस्त्र उठा सकते या नीचे रख सकते हैं, उसे हम आजादी नहीं समझते।

सरकार औसत बुद्धि की

आज विभिन्न देशों में चुने हुए लोग राज्य कर रहे हैं, लोगों ने लोगों को चुन दिया है। पहले राजा चुने नहीं जाते थे, वे स्वयं होते थे; पर आज शासक चुने जाते हैं। किन्तु सूरदास ने जो आक्षेप किया था, वह आज भी सही है, आज भी उसमें कोई अन्तर नहीं आया। उन्होंने कहा था :

'ऊधो करमन की गति न्यारी !
मूरख-मूरख राजे कीन्हें, पण्डित फिरत भिखारी !'

आखिर आज भी चुने हुए लोग ही राज्य करते हैं। वे सर्वोत्तम बुद्धि के नहीं होते, औसत बुद्धि के होते हैं। डेयरी का दूध अच्छी-से-अच्छी गाय के दूध के समान अच्छा नहीं होता और बुरी-से-बुरी गाय के समान बुरा भी नहीं होता। वैसे ही जहाँ सर्वसाधारण की राय लेकर बहुमत से चुनाव होता है, वहाँ चुने जानेवाले सर्वोत्तम बुद्धि के नहीं, औसत बुद्धि के होते हैं। सर्वोत्तम बुद्धि की पहचान जनता को नहीं होती। इसीलिए सत्ताधारी लोग क्रान्ति नहीं ला सकते। लोग जिस तरफ जाना चाहें, उस तरफ वे उन्हें ले जा सकते हैं। वे आज्ञाधारी होते हैं। अमेरिका के लोग शराब चाहते हैं, तो वहाँ की सरकार शराब बन्द नहीं कर सकती; क्योंकि वह सेवा करनेवाली है, गुरु नहीं। वह लोगों को आगे नहीं ले जा सकती, लोगों के साथ रह सकती है। इसलिए मार्गदर्शक के तौर पर वह काम नहीं कर सकती। वहाँ स्थितप्रज्ञ के हाथ में कोई सत्ता नहीं, बल्कि जिनकी प्रज्ञा सामान्य जनों की प्रज्ञा के साथ मिलती है, उन्हींकी प्रज्ञा से कारोबार चलता है। इसीलिए दुनिया में सत्ताधारियों की सत्ता चलती है। लोग उन्हें अपने प्रतिनिधि मानते और उनकी सत्ता कबूल करते हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि हम जनशक्ति निर्माण कर सकते हैं, इतना ही सोचते हैं, आज की जनता का बचाव आज की पद्धति से कैसे कर सकें। नतीजा यह होता है कि सर्वत्र शासन चलाया जाता और अनुशासन (डिसिप्लिन) सिखाया जाता है। अनुशासन सब गुणों का राजा माना जाता है। हम भी उसे गुण मानते हैं, पर जिस तरह आज सब जगह लोगों की तालीम पर भी सत्ता चल रही है, उसे हम सबसे ज्यादा खतरनाक समझते हैं।

विचार की स्वतन्त्रता

कई बार हम कह चुके हैं कि 'न्यायाधीश पर सरकार की सत्ता न हो, यह जैसे कबूल कर लिया गया है, वैसे ही तालीम पर भी सरकार की सत्ता न होकर प्राज्ञ-सत्ता ही चलनी चाहिए।' आज ही विद्यार्थियों के बीच बोलते हुए मैंने कहा था कि आज दुनिया में जो खतरा पैदा हुआ है, उससे विद्यार्थी बचें। सत्ताधारी जैसा विचार चाहते हैं, वैसा ही सब लोगों में ठूँसना चाहते हैं। वे समाज को जैसा

आकार देना चाहते हैं, तालीम को उसका औजार बनाते हैं। अगर आप सचमुच देश को उत्तम आकार देना चाहते हों, तो तालीम पर सरकार की सत्ता न चले। गाँव के हाथ में तालीम रहे, तभी विचारों की स्वतन्त्रता रहेगी। पर जहाँ विचारों की स्वतन्त्रता आती है, साम्राज्यवादी घबड़ा उठते हैं। यहाँ तक कि कम्युनिस्ट भी, जो यह मानते हैं कि राज्यसत्ता टूटनी चाहिए, आज की सत्ता को मजबूत बनाना चाहते और विचार की आजादी नहीं देना चाहते। फिर दूसरों की, जो मानते हैं कि राजसत्ता कायम रहे, उनकी बात ही क्या? यह बहुत बड़ा खतरा है कि सत्ता-धारी देश को खास विचार में बाँधना चाहते हैं। नतीजा यह है कि किसी भी देश में विचार की आजादी नहीं है। अगर इसी तरह विचारस्वातन्त्र्य न रहा और शासन चन्द लोगों के हाथों में रहा, तो खतरा कायम है।

केन्द्रित और विकेन्द्रित आयोजन

आज चन्द लोग दिल्ली में बैठकर सारे देश के लिए आयोजन (प्लानिंग) करते हैं। माना कि वे बुद्धिमान् हैं और निःस्वार्थ होकर सोचते हैं, फिर भी पाँच लाख गाँवों का आयोजन चन्द लोगों के हाथ में रहे, यह अत्यन्त खतरनाक चीज है। अगर प्रत्येक गाँव अपना-अपना आयोजन करे, तो उसमें दोष भले ही रह जाय, पर उसकी हानि दूसरे गाँव को नहीं होगी और सबकी बुद्धि का विकास होगा। किन्तु यदि योजना-आयोग (प्लानिंग-कमीशन) में कुछ दोष रहा, तो सारे गाँवों की हानि होगी। इसके अलावा उसमें सब लोगों की बुद्धि का उपयोग नहीं होता। अब जो समाजशास्त्र बनाना है, उसमें और सामूहिक अहिंसा में सत्ता का विभाजन अत्यन्त जरूरी है। उसके बिना शोषण समाप्त नहीं हो सकता। अगर हम चाहते हों कि हरएक को पूरी आजादी हो, तो सत्ता का पूरा विभाजन होना चाहिए। आप पूछ सकते हैं कि आखिर इसकी भी मर्यादा होगी या नहीं? हाँ, मर्यादा अवश्य होगी। कुछ बातें ऐसी होंगी, जिन्हें सोचने की शक्ति देहातियों में न हो। उन पर उन बातों का निर्णय डालना भी नहीं चाहिए। फिर भी गाँव की सत्ता गाँव पर ही होनी चाहिए। गाँव की पढ़ाई गाँववालों के हाथ में ही हो। गाँव में कौन-सा माल आये, कौन-सा माल गाँव

से बाहर जाय, गाँव की दूकान किस तरह चलायी जाय ? इन सब बातों में केन्द्र से सिफारिश की जा सकती है, पर इन पर सोचने और अमल करने की जिम्मेवारी गाँव-गाँव पर डालनी चाहिए। तभी स्वराज्य आयेगा, तभी व्यापक अहिंसा का प्रयोग हो सकेगा और तभी देश में शान्ति रहेगी।

खतरा बाहरी नहीं, भीतरी

कुछ लोग सोचते हैं कि हिन्दुस्तान को मजबूत बनाना चाहिए, क्योंकि खतरा दीख रहा है। पाकिस्तान अमेरिका से सैनिक मदद ले रहा है। हम कहते हैं कि आप महसूस करते हैं कि बहुत गर्मी पड़ी तो खतरा है, बहुत ठंडक पड़ी तो खतरा है; पर यह कभी नहीं समझते कि पेट बिगड़ा, तो खतरा है। अगर पेट सुधर जाय, तो ठंडक या गर्मी अधिक होने पर भी नुकसान नहीं होता। आप पाँच मास पहले तो हिन्दुस्तान के लिए खतरा महसूस नहीं करते थे, फिर आज ही क्यों महसूस करते हैं ? क्या खतरा हुआ है ? अगर वह पहले था, तो अब भी है और पहले नहीं था, तो अब भी नहीं है। एक बड़े देश को किसी छोटी-सी घटना से खतरा होना, न होना, यह कैसी बात है ! हमारे देश में छूत-अछूत का भेद आज भी है। हमारे जैसे लोग भी देव-दर्शन को जाते हैं, तो पिट जाते हैं, क्या यह कम खतरा है ? आज भूमिहीनों की कुछ पूछताछ नहीं। क्या यह कम खतरा है ? और जिस जातिभेद पर राममोहन राय से लेकर गांधी तक प्रहार करते आये, वही इलेक्शन के कारण बढ़ रहा है, क्या यह भी कम खतरा है ? वास्तव में ये ही सब खतरों के कारण हैं। किन्तु बाहर से कुछ हो जाता है, तो हम समझ लेते हैं कि खतरा है ! पर बारीकी से देखना चाहिए। जब यह देश आजाद नहीं था, तब एक प्रकार का खतरा था। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद भी खतरा मौजूद है ! हमें अन्दर से जितना खतरा है, उतना बाहर से नहीं। इस अन्दरूनी खतरे को अगर हम दुरुस्त करते हैं, तो देश मजबूत बनता है। हमें खुशी होती है कि किसी भी तरह क्यों न हो, लोगों को यह महसूस होने लगा है कि देश को मजबूत बनाना चाहिए।

नीति पराश्रयी नहीं, स्वतन्त्र रहे

कुछ लोग कहते हैं कि पाकिस्तान अमेरिका से मदद ले रहा है, तो हम रूस से मदद लें। याने हम अपना देश कैसे बनायें, यह पाकिस्तान पर छोड़ते हैं। वे लश्कर बढ़ाते हैं, तो हम भी बढ़ायें। वे जागतिक लड़ाई करना चाहते हैं, तो हम भी उसे करें। वे दूसरे के हाथ में अपने देश को देना चाहते हैं, तो क्या हम भी अपना देश दूसरों के हाथ में देना चाहते हैं ? वे जैसे नचायें, वैसे ही हम नाचें। आखिर इसके मानी क्या हैं ? कुछ लोग कहते हैं, नहीं जी, रूस की मदद क्या लेना ? अमेरिका से ही मदद लें, वह हमें जरूर मदद देगा। दो बिल्लियों के बीच न्याय करने बन्दर जरूर आयेगा और दोनों को समुचित न्याय देने की कोशिश करेगा। यह कहानी प्राचीन लोगों ने अच्छी तरह समझायी है। फिर भी क्या आप यही चाहते हैं ? कुछ लोग कहते हैं, दूसरे से मदद लेनी ही नहीं चाहिए, हिन्दुस्तान को अपनी ताकत बनानी चाहिए। आखिर इसके भी मानी यही है कि गरीबों के हित की योजनाएँ खतम कर सारी दौलत सेना पर खर्च कर दें। इसका स्पष्ट अर्थ है कि गरीबों का बलिदान करें। मैंने एक सभा में कहा था कि गरीबों का बलिदान देना चाहते हो, तो पहले उन्हें बलवान् बनाओ। बलवान् बलि का ही बलिदान दोगे या कमजोर का ? बलि देनेवाले जानते हैं कि बकरे को मोटा-ताजा और बलवान् बनाना पड़ता है। नहीं तो वह अबलिदान होगा। फिर गरीबों को बलवान् कैसे बनायेंगे ? क्या सेना पर पैसा खर्च करके ? इसलिए अक्ल साबित रखनी चाहिए। और जैसे महाप्रलय के समय मार्कण्डेय ऋषि ने अकेले पानी पर तैरकर (अपनी अक्ल साबित रख-कर) दुनिया को बचाया, वैसे ही वही आदमी दुनिया को बचा सकेगा, जो अपनी अक्ल कायम रखेगा। जो अपनी अक्ल खोकर कुछ-का-कुछ कर बैठेगा, वह कुछ न कर सकेगा।

गाँववाले ग्रामोद्योग का संकल्प करें

इसलिए इस समय इसी चीज की जरूरत है कि गाँव-गाँव किले के समान मजबूत बनें। स्वदेशी-आन्दोलन के समय जिन वस्तुओं का बहिष्कार किया था, वे वस्तुएँ आज खुलेआम आ रही हैं। कपड़े भी अमेरिका से आते हैं और वे

सस्ते मिलते हैं, इसलिए लोग उन्हें लेते भी हैं। आखिर देश की शान भी कुछ होती है। पर हम ऐसे भिखारी बन जायँ और यह सोचने लगें कि किसी तरह आज का दिन बीता तो ठीक, तो इस तरह हम कभी उन्नति नहीं कर सकते। जब हम भूदान-यज्ञ का विचार पहुँचाने जाते हैं, तो कहते हैं, 'स्वराज्य का पार्सल आया तो सही, पर उसका कुछ हिस्सा दिल्ली में रुका है और कुछ हिस्सा पटना में। वह अभी देहात में नहीं पहुँचा।' हम देहातियों को समझाते हैं कि उठ जाओ, खड़े हो जाओ और कसम खाओ कि हमारे यहाँ जो कच्चा माल होता है, उसका पक्का माल हम ही बनायेंगे और वे चीजें शहर से नहीं लेंगे। जैसे मुसलमान सूअर का या हिन्दू गाय का गोश्त नहीं खाते, भले ही वह सस्ता मिले, वैसे ही गाँववालों को चाहिए कि जो माल गाँव में बन सकता है, वही खरीदें, शहर का बना माल कभी न खरीदें।

शहरवाले विदेशी माल रोकें

शहरवाले पूछेंगे, क्या आप हमारी चिन्ता नहीं करते? इस पर हमारा जवाब है, हम आपकी भी चिन्ता करते हैं। इसीलिए तो हम देहातियों से कहते हैं कि शहर का माल मत लो। तभी गाँव और शहर, दोनों मजबूत होंगे। शहरवाले सूत कातने की मिल, आटे की मिल और चीनी मिल बनाते हैं, याने जो सारा कच्चा माल गाँव में बनता है, उसका पक्का माल आप बनाते हैं। साथ ही विदेश से जो माल आता है, उसका भी वे प्रतिकार नहीं करते। यह लाउडस्पीकर और यह चश्मा विदेश से आता है। थर्मामीटर, जिसका उपयोग बुखार नापने में रोजमर्रा हो रहा है, विदेश से आता है। याने इस तरह विदेश का हमला शहर पर हो ही रहा है। फिर यदि इधर देहाती लोग बेकार बनते जायँ और उनका हमला भी शहर पर होने लगे, तो दोनों के बीच बेचारे शहरवाले पिस जायँगे। अतः उन्हें ऐसे धन्धे करने चाहिए, जिनसे विदेशी माल आना रुके और देहाती भी अपनी आवश्यकता की चीजें देहात में ही पैदा करें।

उद्योगों का बँटवारा

हम भूदान के साथ ही लोगों से यह भी कहते हैं कि पुरुषों द्वारा होनेवाला स्त्रियों का शोषण बन्द हो। अंग्रेजी में 'पति'वाचक 'हसबैंड' शब्द का अर्थ है,

खेत जोतनेवाला और 'पत्नी'वाचक 'वाइफ' का अर्थ है, बुननेवाली। हमारे यहाँ पुराने जमाने में ऐसा ही होता था। तानी भरने का काम स्त्रियों को दिया गया था। किन्तु आज स्त्रियों का बुनने का यह धन्धा पुरुषों ने ले लिया। पहले स्त्रियाँ सूई से सीती थीं। फिर सूई गयी और 'सिंगर मशीन' आयी। सूई गयी तो हर्ज नहीं, पर वह सिंगर पुरुषों के हाथ में आ गयी, यही बुरी बात हुई। अब आप उन्हें कौन-सा धन्धा दोगे? विदेशों में आम तौर पर होटल चलते हैं। याने रसोई का काम भी उनके हाथ से गया। सारांश, स्त्री के भी कुछ धन्धे होते हैं और वे उनके लिए ही सुरक्षित रखने चाहिए। नहीं तो हम स्त्री-शक्ति का लाभ न ले सकेंगे।

आज मध्यम-वर्ग के लोगों की तो और भी बुरी हालत है। वे हर चीज खरीदना चाहते हैं, जिससे स्त्री को कुछ काम भी नहीं रहता। सिवा सब कोई कमाती भी नहीं। इसीलिए तो पुरुष कहते हैं कि 'हम कमानेवाले एक हैं और खानेवाले दस।' पर हम पूछते हैं कि दस मुख खानेवाले हैं, तो बीस हाथ भी तो काम के लिए हैं? अगर भगवान् एक हाथ और दो मुँह देता, तो क्या होता? लेकिन परमेश्वर ने ऐसा नहीं किया। उसने तो हमें एक मुँह और दो हाथ दिये हैं। फिर यदि हम यह कहते हैं कि 'एक कमानेवाला और दस खानेवाले हैं', तो उसके माने यह हुआ, 'हमने दो हाथ और दस-मुँह याने रावण ही बना लिया।' सारांश, इस तरह हम स्त्रियों को बेकार बना रहे हैं। स्त्रियों को कायम रखना तो चाहते हैं, पर उदर-भरण का साधन उनके हाथ में रखना नहीं चाहते। इसी प्रकार हम देहातियों को कायम रखना तो चाहते हैं, पर उनके उदर-भरण के साधन उनके हाथ में रखना नहीं चाहते। इसीलिए जहाँ हम भूदान का विचार समझाते हैं, वहाँ यह भी समझाते हैं कि उद्योगों का बँटवारा हो और सत्ता का विभाजन हो।

सत्ता रहने पर ही झगड़ा न होने का मूल्य

प्रजा-समाजवादियों ने प्रस्ताव किया कि ग्राम-पंचायत के चुनाव में पार्टियों के भेद न रखे जायँ। कांग्रेस ने उसे मान्य कर अब तय किया है कि अब गाँव के चुनाव में पार्टी के झगड़े नहीं होंगे। पर हम पूछते हैं कि अगर गाँव में कुछ

सत्ता रखी होती और फिर यह निश्चय किया होता, तो हम कुछ समझते। पर आज तो गाँवों में कुछ सत्ता ही नहीं है। आज गाँव में झाड़ू लगाने के लिए न प्रजा-समाजवादी तैयार हैं, न कांग्रेसवाले। इसीलिए तो वे कहते हैं कि हम वहाँ के चुनाव में झगड़ा ही नहीं करेंगे। इसीलिए हम गाँव-गाँव में ग्रामोद्योग चाहते हैं।

एक गाँव में 'ग्रामोद्योग-संघ' की तरफ से कोल्हू चलते थे। एक आदमी ने वहाँ मिल खड़ी कर दी, जिससे सारे कोल्हू खतम हो गये। वे लोग हमारे पास आये और हम भी उनके गाँव गये थे। लोग कहते हैं कि संविधान में तो लिखा है कि 'कोई भी कहीं उद्योग शुरू कर सकता है।' पर हम पूछते हैं, क्या लोगों को बेकार बनाने की इजाजत भी संविधान में है? हमारे एक भाई मणिपुर गये थे। वे सुना रहे थे कि मणिपुर के धन्धे टूट रहे हैं। यह सब क्या है? गाँव को सत्ता दें और फिर प्रजा-समाजवादी या कांग्रेसी कहें कि हम झगड़ा नहीं करेंगे, तो हम समझेंगे कि अब इन्हें कुछ अक्ल आयी है।

साम्ययोगी समाज

भूदान के जरिये हम सामूहिक तौर पर राजनैतिक, औद्योगिक और सामाजिक क्षेत्रों में समता लाना चाहते हैं और उसीका यह प्रयत्न है। लोग कहते हैं, 'सरकार हमारे यहाँ स्कूल खोले।' पर हम यह पसन्द नहीं करते। सरकार एक पाठ्य-पुस्तक निर्धारित करेगी, तो वह सभी जिलों में चलेगी। इस तरह उसका एक यन्त्रीकरण ही होगा। हम तो 'सर्वोदय' इसे ही कहते हैं कि गाँव-गाँव में तालीम और ग्रामोद्योग का आयोजन हो, गाँव-गाँव में जमीन का बँटवारा और उसके रक्षण की योजना हो, गाँव-गाँव में गाँव की अपनी दूकान हो और साथ ही ऐसे मण्डल हों, जो यह तय करें कि गाँव में कौन-सा माल बेचा जाय और कौन-सा बाहर से लाया जाय आदि। यही साम्ययोगी समाज-रचना का आरम्भ है। यह सिर्फ देहातियों की ही नहीं, बल्कि सबके कल्याण की बात है। इसलिए शहरवालों को भी इसमें हिस्सा लेना चाहिए। अब तक शहरवालों ने गाँवों से भर-भरकर पाया, अब उनके देने की बारी है।

पटना

१०-१-'५४

दो-तीन रोज से अखबार में एक मनोरंजक विषय चल पड़ा है। अमेरिका ने हाइड्रोजन बम बनाया है। वे उसका प्रयोग करके देखना चाहते हैं। उस विज्ञान की प्रगति कहाँ तक हुई, बनी हुई चीज कारगर है या नहीं?, यह देखने के लिए वे प्रयोग करना चाहते हैं। उधर इंग्लैंडवाले कह रहे हैं कि ये प्रयोग अतलान्तिक महासागर में न होने चाहिए। इधर हमारे पंडित नेहरू बोले कि 'यह प्रयोग करना ही गलत है। इस प्रयोग से ही खतरा पैदा होगा। कहीं भी प्रयोग किया जायगा, तो उसका असर सैकड़ों मील तक होगा। उसके ज्ञात-अज्ञात, व्यक्त-अव्यक्त क्या परिणाम होंगे, कौन जान सकता है?'

मैं अपने मन में सोचता हूँ कि अगर प्रयोग नहीं करना है, तो यह उद्योग ही क्यों करें? उद्योग ठीक है, तो प्रयोग भी ठीक। बिना प्रयोग के उद्योग कैसे होगा? किन्तु आखिर जो शस्त्र-बल मानते हैं, वे भी कहीं-न-कहीं उसकी एक मर्यादा मानते ही हैं। इसी तरह हाइड्रोजन बम का प्रयोग छोड़ ही देना चाहिए, इतनी मर्यादा मान लेनी चाहिए, यही उनके उस सुझाव का अर्थ है।

हिंसा पर मर्यादा के असफल प्रयोग

इस तरह हिंसा पर मर्यादा रखने के प्रयोग हिंसा को मान्य करनेवालों ने (अर्थात् अपरिहार्य समझकर जिन्होंने वह मर्यादा मानी है) कई बार किये हैं। महाभारत में हम देखते हैं कि युद्ध के कानून बनाये गये थे, फिर भी युद्ध के बीच वे तोड़ दिये गये, यद्यपि कानून बनानेवालों में दोनों तरफ धुरन्धर न्याय-नीति-निपुण पुरुष थे। इधर भीष्म, द्रोण जैसे थे, तो उधर धर्मराज और अर्जुन जैसे। और बीच में भगवान् श्रीकृष्ण थे। सबने मिलकर कुछ नियम मान लिये, जो उनके पूर्वजों ने निश्चित किये थे। लेकिन मौके पर इन मर्यादाओं का पालन वे भी नहीं करते थे।

एक नियम था कि गदायुद्ध में कमर के नीचे प्रहार न करना चाहिए; पर

युद्ध के समय वैसा किया गया। एक सज्जन ने ही वैसा प्रहार किया, दूसरे सज्जन ने उसका समर्थन किया और तीसरे सज्जन ने उसकी प्रशंसा की। माना गया कि उसके बिना विजय नहीं प्राप्त हो सकती थी। इसलिए यह कैद मान लेना मूर्खता है, ऐसा उसके समर्थकों ने कहा। इसी तरह अकेले पर प्रहार न करना, रात को लड़ाई न लड़ना, ऐसे पचासों नियम बनाये गये और वे तोड़ डाले गये। हिंसा में और जो भी दोष हों, एक बहुत बड़ा दोष है कि उसमें अपने पर मर्यादा डालने की अक्ल नहीं है। हिंसा तो शक्तिमात्र है, शक्ति में बुद्धि कहाँ से आयेगी? बुद्धि की देवता तो अलग ही है।

हिंसा से दोनों का अन्त

इसलिए एक बार हम हिंसा को मान्यता देते हैं, साथ-साथ उसकी कुछ मर्यादाएँ भी रखते हैं और जहाँ तक हो सके, उनका पालन भी करते हैं, इतना ही होता है। महाभारत को हमने 'इतिहास' का नाम दिया है। एक महाभारत पढ़ लिया, तो दूसरा कोई इतिहास पढ़ने की जरूरत नहीं होती। इतना व्यापक समाज-शास्त्र अनुभव के आधार पर उसमें दिया गया है। यह कोई घटनाओं पर आधृत इतिहास नहीं; बल्कि सनातन इतिहास है। उसके आदि और अन्त में व्यास भगवान् ने कहा है कि मोहावरण दूर करने के लिए मैं यह 'इतिहास-प्रदीप' जला रहा हूँ। सनातन इतिहास तो मनुष्य के हृदय में जलता है। यह सारा परिणाम के साथ उसमें बता दिया गया है। उस युद्ध में दोनों तरफ महापुरुष थे, फिर भी युद्ध में अंकुश नहीं रहा। उस युद्ध से कौरव खतम हुए और पांडव भी खतम हुए। पर इतने से ही वह युद्ध पूरा नहीं हुआ। जब यादव भी खतम हुए, तब वह पूरा हुआ। इस तरह उस युद्ध से सिवा खात्मे के कुछ नहीं हुआ। उसमें जो जीते और जो हारे, दोनों का खात्मा हुआ, कोई भी नहीं बचा। उसीके बीच गीता जैसा महान् तत्त्वज्ञान कहा गया है। उसमें यह बात बतायी गयी है कि शक्ति के पीछे लगने से मनुष्य का कल्याण नहीं होता।

बुद्धि की शरण लें

अब विज्ञान का जमाना है। इसमें बहुत कारगर और अच्छे-अच्छे औजार पैदा हुए हैं, लोकसेवा के और लोकसंहार के भी। यह शक्ति ही तो है। इसलिए

यह अच्छे उपयोग में या बुरे उपयोग में, दोनों में मदद दे सकती है। अच्छे या बुरे उपयोग का आधार बुद्धि है। इसलिए हमें बुद्धि की शरण जाना चाहिए। भगवान् ने कहा है, "बुद्धौ शरणमन्विच्छ।"

हिंसा-विश्वासी सज्जनों का मुकाबला सत्याग्रह से

तुलसीदासजी ने कहा है, "दंड जतिनकर", यानी संन्यासी के हाथ में दंड होना चाहिए। अर्थात् जो ज्ञानी-विज्ञानी हैं, उनके हाथ में समाज-नियमन की शक्ति सौंप दें, यह बात उन्होंने सुझायी थी। किन्तु दंड-शक्ति स्वयमेव ऐसी अक्ल नहीं रखती। दंड में यह अक्ल नहीं कि वह और किसीके हाथ में जाने से इनकार कर दे और संन्यासी के ही हाथ में आये। ऐसी क्षमता दंड-शक्ति में नहीं है, वह तो खुद जड़ है। इसलिए हमें ज्यादा-से-ज्यादा तकलीफ उनसे होती है, जो सज्जन धर्मशील, भोगविलासी न होते हुए भी ऐश्वर्य का दावा करते हैं। कहते हैं कि हमने परोपकार के लिए सत्ता ली है। हम अनासक्त होकर, विकारहीन होकर, संहार की आज्ञा देते हैं। विकारहीन होकर संहार की आज्ञा देने का उनका दावा पुराने जमाने में थोड़ा-बहुत संभव था; क्योंकि उस समय विज्ञान बढ़ा नहीं था। इसलिए हिंसा-शक्ति को रोकने की शक्यता शायद उस जमाने में कुछ सम्भव थी। अतएव उस जमाने में संहार में गीता की अनासक्ति कुछ चल सकती थी। किन्तु आज विज्ञान बढ़ा है, उसे हम रोक नहीं सकते। इसलिए आज सज्जन में भी ऐसी शक्ति नहीं कि हिंसा-शक्ति का तटस्थ भाव से उपयोग करें और चाहे जब उसे वापस ले लें। यानी हिंसा-शक्ति का स्वामी बनकर उसका उपयोग करें, यह विज्ञान के युग में सम्भव नहीं।

जब यह बात स्पष्ट हो जाती है, तब हमारे सामने यही सवाल आता है कि जिन्हें यह स्पष्ट नहीं हुआ है, ऐसे सज्जन जो हिंसा को इच्छा या अनिच्छा से उत्तेजन देते हैं, उसका उपयोग करते हैं, उनका मुकाबला कैसे किया जाय? हमारे सामने आज यह सवाल नहीं है कि दुर्जनों का मुकाबला कैसे किया जाय, बल्कि यह सवाल है कि भोगवृत्ति-रहित ऐश्वर्यवादी सज्जनों का मुकाबला कैसे किया जाय? स्पष्ट है कि यह मुकाबला केवल विचार-शक्ति से ही होगा। उसके लिए

अपने अन्तःकरण की तीव्रता चाहिए। दुःख सहने से ही वह हो सकता है। इसके लिए निरन्तर अन्तःशोधन और विनम्रभावना से, धर्म समझकर दुःख सहना आवश्यक है। इसीको इस जमाने में हमने 'सत्याग्रह' का नाम दे रखा है।

शाब्दिक नहीं, सक्रिय विरोध करें

आज वह शब्द इतना अर्थ प्रकट करता है या नहीं, यह हम नहीं जानते। किन्तु विचार-निष्ठा और दुःख सहने को धर्म समझना, इतना भाव सत्याग्रह शब्द का समझना चाहिए। वह एक अत्यन्त शुद्ध, रचनात्मक, प्रेममय, विधायक शक्ति होगी। उसीके प्रयोग से जिन्हें हम गुमराह समझते हैं, उन सज्जनों का मुकाबला कर सकते हैं।

सवाल पैदा होता है कि इससे आम जनता में कुछ गलतफहमी हो सकती है, क्योंकि जिनका मुकाबला करना है, वे सज्जन काफी तटस्थ होते हैं और समाज का उन पर भरोसा होना सम्भव है। इस हालत में हम उनका शाब्दिक विरोध करें, तो जनता में भ्रम पैदा हो सकता है। जनता हमारी बात मानेगी या नहीं, हम कह नहीं सकते। इसलिए शाब्दिक विरोध नहीं करना चाहिए। किन्तु जो बात हमें सही लगती हो, उसका समस्त शक्ति से अमल करने की चेष्टा करनी चाहिए।

भूदान-यज्ञ आरम्भ में एक छोटी-सी बात थी। अब उसका रूप कुछ बड़ा है। फिर भी उसके मुकाबले में, जो मैंने सामने रखा, यह एक बहुत ही छोटी चीज है। इसलिए हमें यह करना चाहिए कि सत्ता की अभिलाषा छोड़ दें। जैसे हमने हिंसा की भक्ति छोड़ी, वैसे ही सत्ता की और दण्ड-शक्ति की भक्ति को छोड़कर समाज-शक्ति निर्माण करने की कोशिश करनी चाहिए। भूदान-यज्ञ उसका एक साधनमात्र है। आगे दूसरे भी साधन आयेंगे। जब मैं इस तरह सोचता हूँ, तो मुझे बहुत शान्ति मालूम होती है। भूदान-यज्ञ में उत्तरोत्तर जो कठिनता मालूम होती है, उससे भी मुझे शान्ति प्राप्त होती है।

गया
३०-२-'५४

सत्ता-निरपेक्ष सेवा

लोग सेवा का नाम लेते-लेते अन्त में सत्तापरायण बनते हैं। पहले तो वे सत्ता को सेवा का साधन समझते हैं और फिर धीरे-धीरे सत्ता ही उनकी देवता बन जाती है। जहाँ सत्ता देवता बन जाती है, वहाँ उसकी रक्षा का प्रश्न उठता है। फिर सारा अवलम्बन हिंसा पर होता है, जिसका फल विज्ञान के इस युग में बहुत खतरनाक होगा। इसका भान अब कुछ-कुछ विचारकों को हो रहा है। किन्तु इससे छुटकारा कैसे पाया जाय, इसकी राह किसीको सूझ नहीं रही है। मैंने सुझाया है कि अगर हम जनता के बड़े-बड़े मसलों का हल जनशक्ति यानी अहिंसा-शक्ति से निकालने की कोशिश करेंगे, तो सत्तापरायण बनने की दृष्टि से छुटकारा पाया जा सकता है। इसलिए भूदान-यज्ञ के आन्दोलन की ओर देखने की दृष्टि गहरी होनी चाहिए। सत्ता-निरपेक्ष सेवा कैसे हो, सेवा के द्वारा शक्ति कैसे पैदा हो, समाज को केवल सुरक्षित नहीं, बल्कि स्वरक्षित कैसे बनाया जाय, यह ढूँढ़ना चाहिए। भूदान-यज्ञ उसका आधार है। यह एक महान् काम है। इतनी व्यापक दृष्टि रखकर भूदान-यज्ञ का काम करना चाहिए। नहीं तो यह भी हो सकता कि भूदान-यज्ञ में किसी भी तरह जमीन हासिल की जाय और उसमें कार्यकर्ताओं की ओर से तरह-तरह का दबाव डाला जाय। वह अहिंसा-शक्ति की दिशा में नहीं, बल्कि हिंसा का ही काम होगा। चाहे वह शस्त्र का उपयोग न करे, पर उसमें डराना-धमकाना आदि जो चलेगा, वह हिंसा ही होगी और इसलिए भूदान-यज्ञ सार्थक न होगा।

चुनाव से अनुचित लाभ

प्रजा-समाजवादी दल के एक नेता की चर्चा चल रही थी। उन्होंने कहा कि इन दिनों लोगों को चुनाव में बहुत ज्यादा दिलचस्पी मालूम होती दिखाई दे रही है। सब कबूल करते हैं कि भूदान-यज्ञ एक जरूरी काम है, पर लोग उसमें उतनी

दिलचस्पी नहीं दिखाते, जितनी भिन्न-भिन्न दलीय चुनाव में दिलचस्पी लेते हैं। कोई भूदान-यज्ञ के बारे में सोचते भी हैं, तो उनका सोचने का ढंग ऐसा होता है कि 'इस काम के जरिये हम जनसंपर्क बढ़ायेंगे, तो इससे चुनाव में लाभ होगा।' मैं मानता हूँ कि कुछ लोग इस तरह से सोचते हैं। लेकिन किसी अच्छे काम का उपयोग करने की बात हो, तो कोई बेजा नहीं है, बशर्ते कि वह अच्छा काम सत्दृष्टि रखकर किया जाता हो। इस तरह भूदान-यज्ञ के काम से दूसरे काम भी सम्भव हैं।

चुनाव से अहिंसक जन-शक्ति-निर्माण अधिक शक्तिशाली

प्रायः लोगों को लगता है कि चुनाव में बड़ी भारी शक्ति है। किन्तु जब उन्हें मालूम हो जायगा कि उससे बहुत अधिक शक्ति अहिंसक जन-शक्ति-निर्माण में है, तब उनका सोचने का ढंग ही बदल जायगा। इस पर जरा सोचने की जरूरत है। इस देश में पश्चिम से आये हुए चुनाव के तरीके दो-चार साल ही नहीं, काफी दिनों तक चलेंगे। सोचना यह चाहिए कि उसमें सुधार की जरूरत है या नहीं ? आज के काम जिस तरह चलते हैं, उससे लाभ होता है या नहीं ? अपने-अपने देश की परिस्थिति देखकर उसमें परिवर्तन करना आवश्यक है। अगर हम वह न करें और केवल पश्चिम का अनुकरण ही करें, तो ठीक न होगा। दूसरे देशों की कोई चीज लेना बुरा नहीं, पर लेते समय उसमें अपने देश की परिस्थिति के अनुसार सुधार करना ही होगा।

चुनाव के कारण जाति-भेद में वृद्धि

हमारा समाज जातिभेद-युक्त है। राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक जितने चिन्तनशील महापुरुष पैदा हुए, सबने जाति-भेद पर प्रहार किया, जिससे वह संस्था काफी ढीली हो गयी। किन्तु इन दिनों हम देख रहे हैं कि वह अधिक मजबूत हो रही है। आखिर यह क्यों हो रहा है ?

स्पष्ट है कि चुनाव में जाति-भेद का विचार आता और उसे बल मिलता है। चुनाव के दूसरे दोष ये हैं कि उससे परस्पर द्वेष पैदा होता है, पैसा और समय बरबाद होता है। आज चुनाव को जरूरत से ज्यादा महत्त्व दिया गया है। किसी

महत्त्वपूर्ण चीज को भी अगर फालतू महत्त्व दिया जाता है, तो मनुष्य-समाज गुमराह हो जाता है। स्वराज्य-प्राप्ति के पहले राजनीति में जो ताकत थी, वह स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सामाजिक और अर्थ-विकास के कार्य में आये, इस तरह सोचना चाहिए। इस दृष्टि से आज के चुनाव के तरीके में क्या परिवर्तन करना चाहिए, इस पर जरा सोचिये। ऐसे तरीके का संशोधन हो, जिससे आज का किया-कराया काम, जो बरबाद होता दिखाई दे रहा है, उससे हम छुटकारा पा सकें।

सामूहिक कार्यक्रम आवश्यक

हमने कई बार इस पर सोचा और कहा भी है। उसके लिए गहरा चिंतन होना चाहिए। मैं ऐसा ही चिंतन करता हूँ, जिससे कुछ राह सूझती है। मुझे जो कुछ विचार सूझते हैं, उनमें से जो आज की परिस्थिति में सम्भव हैं, उनके बारे में कुछ कहूँगा। पहली बात यह कि चुनाव का क्षेत्र सीमित हो जाय। जहाँ केवल जनसेवा-कार्य करने की ही जिम्मेदारी है, वहाँ व्यर्थ ही राजनैतिक पक्ष का अभिनिवेश न हो। वे चुनाव पार्टी की तरफ से न लड़े जायँ। जैसे म्युनिसिपैलिटी, लोकलबोर्ड आदि के चुनाव पार्टी की तरह से न लड़े जायँ। इस बात पर लोग सोचें, तो उनके ध्यान में आयेगा कि इससे बहुत लाभ होगा। म्युनिसिपैलिटी, लोकलबोर्ड, ग्राम-पंचायत आदि में जन-सेवा के कार्य करने पड़ते हैं। उनमें विभिन्न राजनैतिक वादों का अधिक सम्बन्ध नहीं आता है और न आना ही चाहिए। हिन्दुस्तान जैसे पिछड़े और विशाल देश में यही दृष्टि रखनी होगी। मैंने इसे 'पिछड़ा हुआ' इस अर्थ में कहा है कि यहाँ का जीवनमान गिर गया है और तालीम नहीं है। ऐसी स्थिति में यह भी जरूरी है कि विभिन्न राजनैतिक पक्षों के लोगों को कोई एक साधारण कार्यक्रम मिले और उसी पर वे जोर लगायें। उनके अपने-अपने जो राजनैतिक वाद, विचार और दर्शन हैं, उन्हें छोड़ने की बात तो मैं नहीं करता। किन्तु यह अवश्य चाहता हूँ कि विभिन्न राजनैतिक पक्ष, जो प्रजा का हित चाहते, लोकसत्ता में विश्वास रखते और शान्ति की बातें करते हैं, कोई एक सामूहिक कार्यक्रम ढूँढ़ निकालें, जो सबको समान रूप से मान्य हो।

विचार-मंथन हो, पर आचार-संघर्ष नहीं

यदि कोई कहे कि ऐसा कोई भी सामूहिक कार्यक्रम नहीं मिल रहा है, तो कहना होगा कि यह सारी दुर्जनों की जमातें हैं। लेकिन मैं मानता हूँ कि ये सारे दुर्जन नहीं, बल्कि सज्जन हैं। सज्जनों में इस तरह के समान कार्यक्रम होते हैं, तभी तो वे सज्जनता का दावा कर सकते हैं। हम मानते हैं कि ये सारे सज्जन हैं, इसलिए उनके बीच समान आचार का कोई कार्यक्रम उपलब्ध होना चाहिए, जिसमें सबकी एक राय होगी और उसी पर जोर दिया जायगा। अगर यह व्यवस्था चले, तो इस समय जिस तरह आचारों का संघर्ष हो रहा है, वह नहीं होगा। प्रजा के सामने अनेक राय रखी जाने से प्रजा का बुद्धि-भेद होता है। यहाँ की प्रजा पहले ही से अकर्मण्य है, फिर इस तरह का बुद्धि-भेद पैदा होने से अकर्मण्यता और भी बढ़ जायगी। भिन्न-भिन्न पक्ष एक-दूसरे का खण्डन करते रहेंगे, तो प्रजा की श्रद्धा स्थिर नहीं होगी। इसलिए कोई एक साधारण कार्यक्रम ढूँढ़ना चाहिए। उससे आज के चुनाव में जो कटुता पैदा होती है, वह कम होगी। यह काम बहुत जरूरी है। संक्षेप में मैं चाहता हूँ कि विचार-मंथन चले, पर आचार-संघर्ष नहीं।

उचित मूल्यमापन हो

म्युनिसिपैलिटी, लोकलबोर्ड और विद्यापीठों में राजनैतिक पक्ष नहीं आना चाहिए। वहाँ राजनीति की चर्चा खूब चले, पर उनका आयोजन सर्वमान्य विचार से हो, उसमें राजनैतिक पक्ष न हो। इसी तरह म्युनिसिपैलिटी आदि के चुनाव भी राजनैतिक पक्ष की तरफ से न हो। यदि लोगों को यह विचार मान्य हो जायगा, तो फिर वैसा कानून बनाया जा सकता है। उनके चुनावों के लिए जो भी खड़ा होगा, वह सेवक के नाते ही खड़ा होगा और लोग भी जिसे चुनेंगे, अच्छा सेवक मानकर ही चुनेंगे। फिर आज चुनाव में जो कटुता और संघर्ष होता है, उसमें लोगों को जो दिलचस्पी मालूम होती तथा महत्त्वाकांक्षियों को उसमें जो अवसर मिलता है, इन बुराइयों से हम बरी हो जायँगे।

हमें थोड़ा तारतम्य और विवेक सीखना चाहिए। किस चीज को कितना महत्त्व दिया जाय, इसका लोगों को भान होना चाहिए। फिर चुनाव में आज-सी

दिलचस्पी नहीं रहेगी और सामाजिक एवं लोक-शक्ति के कार्यों में लोगों को अधिक दिलचस्पी मालूम होगी। आज तो हिन्दुस्तान में मूल्यांकन के बिना ही काम चल रहा है। किस चीज को कितना महत्त्व दिया जाय, यह हम जानते ही नहीं। लेकिन यदि इसका भान हो जाय, तो भूदान का महत्त्व सबको मालूम हो जायगा और सब उसमें जुट जायँगे, जिससे ताकत पैदा होगी।

सब लोग संकल्प करेंगे, तो दो-चार साल में यह काम खतम हो जायगा। किन्तु यह संकल्प तब होगा, जब आज का गलत मूल्यमापन खतम हो जायगा और लोगों को इसका खयाल हो जायगा कि किस चीज को कितना महत्त्व देना है।

गया
२१-२-'५४

वेदांत और अहिंसा का समन्वय : ४१ :

[बोधगया में 'समन्वयाश्रम' की स्थापना के समय दिया गया भाषण]

वेदान्त और अहिंसा, दोनों परस्पर अविरुद्ध हैं। दोनों एक-दूसरे के कार्य-कारण हैं। वेदांत में से सीधी अहिंसा प्रतिफलित होती है और अहिंसा के लिए बिना वेदान्त के कोई पक्की मजबूत बुनियाद नहीं हासिल होती। वेदान्त का आधार छोड़ अहिंसा का कितना ही बचाव क्यों न करें, वह मामला ढीला ही रह जायगा। वह पक्का तभी बनेगा, जब उसे वेदांत का आधार मिलेगा। यह सारी प्रक्रिया गीता के एक श्लोक में बहुत ही संक्षेप में कही गयी है :

'समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥'

अर्थात् जो मनुष्य सर्वत्र परमेश्वर के अस्तित्व को समान रूप में देखता है, यह हुआ वेदांत। इसके परिणामस्वरूप वह हिंसा ही नहीं कर

सकता, क्योंकि हिंसा के लिए जो भी हथियार उठाया जायगा, वह अपने खुद के खिलाफ उठाने जैसा ही होगा। इसलिए जो आत्महिंसा नहीं करेगा, वह परम गति पायेगा। यहाँ मूल बुनियाद समान परमेश्वर के दर्शन की अर्थात् वेदान्त की है, उस पर से अहिंसा की जीवन-निष्ठा और उसका अंतिम परिणाम परम गति—इस तरह एक श्लोक में सारे विश्व के लिए आदि से अंत तक (बुनियाद से शिखर तक) जरूरी समन्वय गीता के इस अद्भुत श्लोक में बता दिया गया है।

सत्य और वेदांत

बापू वेदांत के बदले 'सत्य' का नाम लेते थे और उसके साथ अहिंसा जोड़ देते थे। वे कहते थे कि 'सत्य और अहिंसा, ये एक ही द्विदल तत्त्व हैं। दोनों मिलकर एक ही तत्त्व होता है।' इस तरह 'सत्य' शब्द को वे पसंद करते थे। मैंने सोचा कि सत्य का संशोधन जितनी प्रखरता से वेदांत में होता है, उतनी प्रखरता से और किसी प्रक्रिया में नहीं होता। इसलिए 'सत्य' शब्द का अर्थ 'वेदांत' ही हो जाता है। वेदांत याने वेद-सार, तत्त्वज्ञान का सर्वसार, जो कि सत्य है। यह भी वेदांत में ही बताया गया है कि वह अंतिम शब्द सत्य ही है और उसके अंदर बाकी का सारा जीवन-विचार निहित है। सारांश, जिसे बापू 'सत्य' कहते थे, वही हिंदुस्तान और आम समाज की भाषा में 'वेदांत' होता है।

'सत्य' शब्द परम-तत्त्व का सूचक है और 'वेदांत' समन्वय का। याने सत्य के दर्शन के अनेक पहलू होते हैं। वे सारे अनेक पहलू जहाँ इकट्ठा होते हैं, वहाँ किसी एक विचार के अंग का आग्रह मिट जाता है। उसीको 'वेदांत' कहते हैं। आचार्य गौडपाद ने स्पष्ट कह ही दिया है :

'स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिता दृढम्।
परस्परं विरुद्ध्यन्ते तैरयं न विरुद्ध्यते॥'

अर्थात् "चाहे आप आपस-आपस में लड़ते रहें, लेकिन आप हमसे नहीं लड़ सकते। आप सारे हमारे पेट में हैं।"

समन्वय का कार्य

हाँ, तो सर्वाङ्गीण समग्र-सत्य-दर्शन और उसके साथ अहिंसा—इस दर्शन को वेदान्त कहते हैं। हमें अपने जीवन और दर्शन में इन्हीं दो तत्त्वों का समन्वय

करना होगा। अभी तक समन्वय करने की जो कोशिश की गयी, उसमें हमें एक दिशा मिल गयी। फिर भी उसमें परिपूर्णता नहीं होती और शायद कभी होगी भी नहीं। आज हमारे लिए भी भगवान् ने समन्वय करने का बड़ा भारी कार्यक्रम रचा है और भूदान-यज्ञ न मालूम हमें किस तरह कहाँ ले जायगा, इसका भी अभी कोई अन्दाज नहीं लग रहा है। लेकिन एक-एक कदम हमें उठाना पड़ रहा है। इस सिलसिले में सांस्कृतिक केन्द्र की यह कल्पना, जिसे 'समन्वय-आश्रम' या 'समन्वय-मन्दिर' जो भी नाम दिया जाय, पर्याप्त होती है।

हम शून्य बनें

इस काम के लिए हम आप सब लोगों का हृदय से सहयोग चाहते हैं। सहयोग का जैसा अर्थ दुनिया में किया जाता है, साधारणतः वैसा अर्थ हमारे मन में नहीं है। हम चाहते हैं कि अपने हृदय में हम यही भाव रखें कि एक परमेश्वर की हस्ती है और बाकी हम सब जो भी हैं वह शून्य है। उसीके अन्दर, उसीकी लीला से हमें ये सारे रूप मिले हैं। शून्य को भी एक रूप होता है। उसका भी एक आकार दिखाया जाता है। वह भी निराकार नहीं होता। इसी तरह हमें भी आकार मिला है। फिर भी हमें शून्य बनना चाहिए।

बोधगया
१८-४-'५४

मन्दिर-प्रवेश-बन्दी से बढ़कर यह गुनाह : ४२ :

एक भाई ने कहा था कि 'जमीन उत्पादन का बड़ा भारी साधन है। इसलिए वह साधन किसीकी मालकियत का नहीं हो सकता, यह बात कुछ समझ में आ जाती है।' इस पर मैंने कहा कि वह सिर्फ उत्पादन का साधन नहीं, परमेश्वर की भक्ति का भी साधन है।' यह बात मैंने अपने अनुभव से कही, इसका अनुभव मैंने स्वयं किया है। ईश्वर की भक्ति के विभिन्न साधन जप, तप, ज्ञान आदि का थोड़ा-बहुत अनुभव मुझे भी है। लेकिन उन सबसे जितनी ईश्वर-भक्ति होती है, अर्थात् मनुष्यों के विकार-शमन के लिए जितनी मदद उन सब तरीकों से मिलती है, उससे ज्यादा मदद जमीन पर परिश्रम करने और खुली हवा में कुदाली लेकर काम करने से होती है।

इसीलिए काशी-विश्वनाथ के मन्दिर में हरिजनों को न आने देना मुझे जितना गुनाह मालूम होता है, उससे ज्यादा गुनाह यह मालूम होता है कि किसी व्यक्ति को—जो जमीन की काश्त कर सकता हो और उसे करना चाहता हो—हम यह कहकर जमीन देने से इनकार कर दें कि इस जमीन का कोई दूसरा मालिक है। और वे मालिक भी ऐसे, जो बिना नोटिस के इस दुनिया से चल बसेंगे और जमीनें कायम ही रहेंगी ! अब यह चल नहीं सकता।

एक बार हरिजनों का मंदिर-प्रवेश न हो, तो चल सकता है; क्योंकि ईश्वर की भक्ति और उसके दर्शन के उससे भी बेहतर दूसरे तरीके मौजूद हैं। लेकिन बेजमीनों को जमीन की सेवा ईश्वर-भक्ति का सबसे उत्तम साधन है। उस साधन से किसीको भी वंचित नहीं कर सकते।

बोधगया
१८-४-'५४

गोकुल-वृन्दावन में भगवान् श्रीकृष्ण ने जब गोवर्धन-पर्वत उठाने की योजना प्रस्तुत की, तो सब ग्वाल-बालों से कहा था कि इस पहाड़ के उठाने में आप सब लोगों के हाथ और आप सब लोगों की लकड़ियाँ लगनी चाहिए। फिर गोकुल-वृन्दावन के सभी बाल-गोपालों ने अपनी-अपनी लकड़ियाँ लगायीं। कहीं पहाड़ लकड़ी से उठता है ? लेकिन सब लोगों ने लकड़ियाँ लगायीं और अपने-अपने हाथ लगाये। कवि लिखता है कि जब भगवान् श्रीकृष्ण ने यह देखा, तो अन्त में उन्होंने अपनी अंगुली का स्पर्श उस पहाड़ को करा दिया। फिर क्या था ! वह गोवर्धन-पर्वत उठ खड़ा हुआ। तभी से भगवान् का 'गोवर्धनधारी' नाम पड़ा।

नारायण-शक्ति का आविष्कार

सारांश, काम तो भगवान् के नाम से ही होता है। उन्हींकी उँगली का स्पर्श होने पर गोवर्धन-पर्वत उठता है। किन्तु जब उसे सभी लोगों के हाथों का, नर-समुदाय का बल मिलता है, तभी उसमें नारायण-शक्ति दाखिल होती है। नरों के समुदाय में जो नयी शक्ति दाखिल होती है, उसे 'नारायण-शक्ति' कहते हैं। जब सिर्फ पाँच इकट्ठे होते हैं, तो हरएक की एक-एक सेर शक्ति मिलकर पाँच सेर नहीं होती, बल्कि पचास सेर होती है। यह विज्ञान का विषय है। समूह या समुदाय में एक नयी शक्ति दाखिल होती है। यह नयी शक्ति ईश्वरीय शक्ति है, नारायण-शक्ति है और काम उसीसे बनता है। लेकिन वह तब दाखिल होती है, जब कि सब लोगों का सहयोग हासिल होता है।

भूदान-यज्ञ में भाग न लेना देशद्रोह

जिस काम में सब लोगों का सहयोग प्राप्त होता है, उसीको 'यज्ञ' कहते हैं। जब देश पर कोई संकट आता है, तो यज्ञ किया जाता है। अपने देश पर आज संकट मौजूद है। कोई नया संकट आया है, ऐसी कल्पना मैं नहीं करता। अन्दर-ही-अन्दर संकट पड़ा है। मजदूर और मालिक का भेद है, करोड़ों लोगों के पास

कोई साधन नहीं हैं, हरिजन और दूसरों में छुआछूत पड़ी है, अनेक धर्म-भेद के झगड़े भी मौजूद हैं। ये सारे संकट आज हमारे देश पर मँड़रा रहे हैं। ऐसी हालत में देश को बचाने के लिए जब कोई यज्ञ शुरू होता है, तो अगर उसे कोई अकेला व्यक्ति ही करेगा या पाँच-पचास लोग करेंगे, तो उससे कुछ नहीं बन सकता। यज्ञ में हरएक को अपना हिस्सा अर्पण करना पड़ता है, जैसे गाँव की होली होती है, तो हर घर से लकड़ी जाती है। इस यज्ञ में जो अपना-अपना हिस्सा नहीं देते, वे देशद्रोही सिद्ध होते हैं, यह मैं जाहिर करना चाहता हूँ। देश की इस समय माँग है कि भूमिहीनों का मसला हल करने के लिए, यह पहाड़ उठाने के लिए हर किसीका दान-पत्र मिलना चाहिए।

बोधगया
१८-४-'५४

जीवन-दान

: ४४ :

[श्री जयप्रकाश नारायण ने भूदान-कार्य के लिए अपना जीवन-दान देने का संकल्प घोषित किया, जिससे जीवन-दान-यज्ञ का आरंभ हुआ। उसके बाद विनोबाजी ने जयप्रकाशजी को एक पत्र लिखकर निम्नलिखित शब्दों में अपना भी जीवनदान घोषित किया।]

श्री जयप्रकाश,

कल आपने जो आवाहन किया था, उसके जवाब में—

भूदान-यज्ञ-मूलक, ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति के लिए मेरा जीवन समर्पण।

सर्वोदय पुरी
२०-४-'५४

—विनोबा

यह विज्ञान का जमाना है। विज्ञान की रफ्तार तेज होती है। हम मन्द-मन्द गति से समाज-सुधार का काम करें, तो जमाना हमारी राह नहीं देखेगा। इसलिए काम की गति बढ़े, यह जरूरी है। इस बार के बोधगया-सर्वोदय-सम्मेलन में एक नयी घटना घटी, जिसने सारे देश को प्रभावित किया। वह था, 'जीवनदान' का स्रोत। भूदान में से सम्पत्तिदान, श्रमदान, ये सब निकले, किन्तु उन सबकी पूर्ति जीवनदान में होती है। उसका असर सारे देश पर होगा। उससे भूदान के काम की गति बढ़ेगी।

षष्ठांश दान और स्वत्व मिटाने में विरोध नहीं

समाज में परिवर्तन लाने की बात भूदान की नींव में है। भूमि का मसला सारे एशिया का मसला है। यह दूसरे कई देशों में भी है, पर हिन्दुस्तान का यह प्रमुख मसला है। इसी मसले को लेकर हम लोग काम कर रहे हैं। यह भूदान का बाहरी रूप है। किन्तु भूदान का भीतरी रूप ज्यादा महत्त्व का है। जितना लोग इसे समझेंगे, उतना ही उनमें जोश आयेगा। उसका भीतरी रूप यह है कि समाज का सारा ढाँचा बदल दें। पर लोग इसे नहीं समझते। वे समझते हैं कि इससे गरीबों को मदद मिलेगी, अच्छा काम है। इसलिए जितनी हो सके, उतनी अपनी ओर से मदद पहुँचानी चाहिए। इस दृष्टि से भी लोगों ने भूदान में मदद दी है।

अभी हमने 'ग्रामधर्म' पर व्याख्यान देते हुए कुछ बुनियादी बातें समझायी थीं। उनमें यह भी एक था कि भूमि पर किसीकी मालकियत नहीं है। लोग कहते हैं कि यह तो नयी बात है। हम तो समझते थे कि बाबा मालकियत को पहचानता था, तभी तो वह भूमि का छठा हिस्सा माँगता है। अगर ऐसा नहीं होता, तो वह सारी-की-सारी जमीन माँगता! आज तीन साल से मैं बार-बार

दुहराता आ रहा हूँ कि हवा, पानी, सूरज की रोशनी और जमीन परमेश्वर की देन हैं। इसलिए वे सबकी चीजें हैं और सबके उपयोग के लिए हैं। जैसे हवा-पानी का कोई मालिक नहीं, वैसे ही जमीन का भी कोई मालिक नहीं है। उसका मालिक तो एक भगवान् ही है। इसलिए हम सबको मिल और बाँटकर उसका उपयोग करना चाहिए। मैंने भूमि का छठा हिस्सा दान भी माँगा है। जमीन पर किसीकी भी मालकियत नहीं है। इसमें कोई विरोधाभास नहीं है।

उपनिषद् के आधार पर नयी रचना

हम लोग सत्य-विचार पर समाज की रचना करना चाहते हैं। 'भगवान् ने हमें जो बुद्धि, शक्ति और दौलत दी है, वह समाज की सेवा के लिए है। उसका स्वतन्त्र भोग करना उचित नहीं। समाज को समर्पण करने के बाद ही हम उसे भोग सकते हैं।' इसी बुनियादी भावना को हमें फैलाना और उस पर समाज-रचना करनी है। यह कोई नया विचार नहीं। अपने उपनिषदों में भी यही बात लिखी गयी है।

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः………………॥"

अर्थात् यह समस्त जगत् ईश्वरमय है और समर्पण करके ही प्रसाद के रूप में उसका भोग करना चाहिए। इससे बढ़कर कोई और सन्देश किसी शास्त्र में नहीं दिया गया है। कम्युनिज्म में भी यह भावना पायी जाती है, पर वह बहुत ही कम है। कारण, वे ईश्वर के अस्तित्व को नहीं पहचानते। इसलिए वहाँ दान की बात नहीं है, छीनने की बात है। वे ईश्वर को समर्पण नहीं करते, यही कम्युनिज्म की कमी है। बाकी कम्युनिज्म का तत्त्व वही है, जो ईशावास्य में परिशुद्ध पद्धति और निर्दोष ढंग से बताया गया है। आज तक इस बात को सोचा गया, किन्तु उस पर समाज-रचना करने की बात अब तक नहीं चली। आज के समाज में व्यक्तिगत मालकियत मानी गयी है। हमारी सरकार, कानून और संविधान, सभी इसीके आधार पर बने हैं। किन्तु हम लोग इस विचार को जड़मूल बदल देना चाहते हैं। हम उस राजनीति को ही बदलना चाहते

हैं। यहाँ तक कि उस 'राजनीति' शब्द के बदले हम 'लोकनीति' लाना, उसे ही स्थापित करना चाहते हैं।

नित्य दान की आवश्यकता

भगवान् शंकराचार्य ने 'दान' की व्याख्या की है। उन्होंने कहा है कि "दानं समविभागः" दान याने दूसरों पर उपकार करना नहीं, बल्कि अपनी चीज का समान विभाग करना। यह कोई शंकराचार्य की निकाली हुई चीज नहीं है। यह परिभाषा तो सारे वैदिक-दर्शन में है। सर्वत्र दान का अर्थ 'सम-विभाजन' ही माना गया है। फिर भी आज हम तो सारा नहीं माँगते, सिर्फ छठा भाग ही माँगते हैं, यद्यपि कहीं-कहीं पूरे-के-पूरे गाँव मिले हैं। जैसे—उड़ीसा में १६-१७ गाँव, उत्तर प्रदेश में दो-तीन, गया जिले में दो-तीन और पलामू जिले में १५-१६ गाँव दान मिले हैं। इतनी बड़ी क्रान्ति लाने के लिए हमें कदम-कदम चलना चाहिए। पहले लोग विचार पसन्द करें और फिर उसे मान्य करें। प्रारम्भ में छठा हिस्सा मिलने पर ही प्रस्तुत मसला हल हो जायगा। पाँच करोड़ एकड़ जमीन मिल जाय, तो आज का काम निभ जाता है। आगे चलकर फिर और माँगा जायगा।

किन्तु ध्यान रहे कि एक बार दान दे देने से छुटकारा नहीं। जैसे एक बार खाना खाने से छुटकारा नहीं होता और शरीर चलाने के लिए समय-समय पर नित्य खाना पड़ता है, वैसे ही समाज में दानक्रिया भी नित्य चलेगी, जब तक भोगक्रिया चलती है। दान में धर्म है, वह तो सतत करने का कार्य है। धर्म और दान नित्य करने चाहिए। 'फण्ड' में दान देना नित्य का कर्तव्य नहीं, पर भूदान का काम नित्य कर्तव्य है। जब तक आप धर्माचरण की आवश्यकता महसूस करें, तब तक भूदान देना आपका काम है। वह तो आपका प्राण होना चाहिए। छठा भाग आरम्भ का दान है, आखिर में कुल जमीन दे देनी होगी। सारी जमीन गाँव की होगी। यद्यपि सहूलियत के लिए वह अलग-अलग बाँटी जायगी, किन्तु यह बँटवारा कायम का न रहेगा। पन्द्रह-बीस साल बाद फिर बँटवारा होगा। उस समय कौटुम्बिक व्यवस्था में जैसी घटी-बढ़ी होगी, बाँटने की क्रिया भी वैसी ही चलेगी।

इस प्रकार दान और मालकियत में कोई विरोध नहीं है। आत्मा शरीर से भिन्न है और वह अमर है। मैं शरीर नहीं हूँ। शास्त्रकार कहते हैं कि शरीर को परिपुष्ट बनाकर ही काटना चाहिए। देह को उसके आधार से ही मजबूत बनाकर काटना है। इस प्रकार दान की प्रवृत्ति तब तक चलेगी, जब तक दान ही कट जायगा। तभी दान सार्थक होगा। तुलसीदासजी ने कहा है कि फिर तो याचना ही नहीं करनी पड़ती। इस प्रकार छठे भाग का दान हमेशा चलता रहेगा, जब तक वह खुद कट नहीं जाता। यह आमूलाग्र परिवर्तन करने की बात है।

समाजशास्त्र में भारत यूरोप से आगे

पाश्चात्यों की धारणा है कि 'समाज में आमूलाग्र परिवर्तन सत्ता के जरिये ही हो सकता है। राजनीति में एक पक्ष राज्य करता है, तो दूसरा विरोधी होता है। इस प्रकार एक-दूसरे को परिशुद्ध करते रहते हैं। इसी प्रकार सत्ता से परिवर्तन होगा।' हम लोग भी उसीकी नकल करते हैं। किन्तु आप लोगों को यह मालूम नहीं कि पश्चिम का समाजशास्त्र बहुत ही पिछड़ा हुआ है। आज हिन्दुस्तान में मराठी, बंगाली, गुजराती, तमिलनाड, मलाबार आदि प्रान्त हैं। ऐसे ही यूरोप में भी भिन्न-भिन्न भाषाभाषी देश हैं। हमारे देश में यद्यपि भाषावार प्रान्तों की माँग की जाती है, पर कोई भी अपना अलग देश स्थापित करना नहीं चाहता। कोई भी दिल्ली से अलग होने का विचार नहीं करता। इसके विपरीत यूरोप में स्विट्जरलैण्ड, जर्मनी, बेलजियम, फ्रान्स आदि छोटे-छोटे देश हैं। आज भी उनके यहाँ जातिवाद विद्यमान है। सारे यूरोप का राजनैतिक विभाजन जातिवाद पर ही हुआ है। वहाँ कोई प्राकृतिक सीमाएँ उन्हें विभाजित नहीं करतीं। फ्रान्स और जर्मनी के बीच कोई पहाड़ नहीं है। फिर भी मनुष्यों ने ही 'सीगफ्रीड लाइन', 'मैजिनो लाइन' आदि कृत्रिम दीवारें बनाकर अपने-अपने देश को अलग कर लिया है। फ्रेञ्च और जर्मन भाषाएँ इतनी मिलती-जुलती हैं कि लोग उन्हें १५ दिनों में ही सीख सकते हैं। फिर भी वे ऐसा नहीं करेंगे और न तो एक समूचा ही देश बनायेंगे। किन्तु हमारे यहाँ

ऐसी स्थिति नहीं है। भाषावार प्रान्त की माँग भी किसानों की सहूलियत के लिए की गयी है। कोई अपना राज्य या सेना अलग नहीं चाहते। इस तरह स्पष्ट है कि समाजशास्त्र की रचना में यूरोप हिन्दुस्तान से बहुत पिछड़ा है।

दूसरी मिसाल यह है कि यहाँ किसीको यह शंका नहीं होती कि स्त्रियों को मत देने का अधिकार देना चाहिए या नहीं ? मैं मानता हूँ कि हमारे यहाँ की स्त्रियाँ बहुत अधिक पिछड़ी हुई हैं। हमें उन्हें उठाना और सामने लाना होगा। फिर भी हमने उन्हें मत देने का अधिकार बिना किसी संकोच के दे दिया है। इसके विपरीत यूरोप के कई देशों में आज भी स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त नहीं है। चालीस साल पहले इंग्लैण्ड में पुरुषों के विरुद्ध स्त्रियों का आन्दोलन हुआ। विधान-सभा में अण्डे फेंके गये, तब कहीं जाकर उन्हें मताधिकार प्राप्त हुआ। हमारे देश में ऐसा कोई झगड़ा नहीं हुआ। इस प्रकार भी स्पष्ट है कि दुनिया के अन्य देशों से हम समाजशास्त्र में आगे बढ़े हुए हैं।

आज की सदोष चुनाव-पद्धति

आश्चर्य है कि फिर भी हम लोग आँख मूँदकर पाश्चात्य-पद्धति स्वीकार कर लेते हैं। यह नहीं सोचते कि उसका परिणाम क्या होगा ? जब कि हमारे यहाँ 'पाँच बोले परमेश्वर' और एकमत से काम होता था, पश्चिम में चार विरुद्ध एक, तीन विरुद्ध दो प्रस्ताव पास हो जाते हैं। अदालत में खून के केस चलते हैं और वहाँ भी तीन विरुद्ध दो का फैसला लेकर खूनी अभियुक्त फाँसी पर चढ़ाये जाते हैं। इतना भी नहीं सोचते कि फाँसी के बदले कुछ हल्की सजा क्यों न दी जाय ? सचमुच बहुमत का यह जो विचित्र विचार हम लोगों ने पश्चिम से स्वीकार किया, वह बड़ा ही खतरनाक है।

सर्वोदय-सम्मेलन में नेहरूजी ने स्वयं कहा कि 'यद्यपि चुनाव-पद्धति को हमने श्रद्धा से अपनाया, फिर भी उसमें काफी दोष हैं। इसे सुधारना जरूरी है।' इस तरह हम पश्चिम से जो भी चीज लेते हैं, उसे सोच-समझकर लेना चाहिए। दुनिया के सब देशों में चुनाव का यह भूत सवार है और उससे बहुत कुछ हानि भी होती है। किन्तु हिन्दुस्तान के लिए तो इसका परिणाम बहुत ही दुःखद

हुआ है। राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक ने जिस जाति-भेद पर प्रहार किया और जिसकी कमर टूट चुकी थी, वह इस चुनाव से फिर खड़ा हो उठा है।

क्रांति पक्षातीत ही होती है

सत्ता या 'पार्टी-पालिटिक्स' (दलगत राजनीति) के जरिये क्रांति कभी नहीं होती। वह तो जनमानस में ही होती है। इसलिए उसे पक्षातीत ही होना चाहिए। इसके लिए एक-दूसरे के सामने दिल खोलकर रखने चाहिए। लेकिन आजकल के पक्ष तो एक-दूसरे के अखबार तक नहीं पढ़ते। जैसे वैष्णवपन्थी शैवपन्थियों की कोई भी बात नहीं अपनाता, वैसे ही ये पार्टियाँ एक-दूसरे से भारी नफरत करती हैं। उनके लिए उनकी पार्टी की पुस्तकें ही वेदवाक्य होती हैं। वे दूसरे के साहित्य को पढ़ते ही नहीं। उनके विचार संकुचित होते हैं। इन वादों के कारण दलबन्दी ही नहीं, दिलबन्दी फैल रही है, जो दलबन्दी से कहीं ज्यादा खराब है। ऐसी स्थिति में क्रान्ति रुक जाती है। लोग समझते ही नहीं कि हवा फैलाने के लिए अवकाश चाहिए। विचार-प्रचार के लिए खुले दिल होने चाहिए। पार्टी की सभाओं में खास जमातें ही आती हैं और वे क्रांति को आगे बढ़ने नहीं देतीं। किन्तु भूदान के इस काम ने लोगों के मन में इस बारे में कुछ सन्देह पैदा कर दिया है। अब लोग इस बात को समझ जायँगे, तो बड़ी बात होगी।

कोई भी बड़ा आंदोलन जनशक्ति से ही हो सकता है। जरा अक्ल से सोचिये कि पार्टी बनाने से विचार के समझने में मदद होती है या बिना पार्टी के? अगर बाबा ने पार्टी बनायी होती, तो उसका आंदोलन कैसे चलता? किन्तु आज तो वह निःसंकोच घर-घर जाता है। हजार हाथवाले भगवान् को जगाने के लिए वह नारद की तरह से गाँव-गाँव, घर-घर घूमता है। इसके विपरीत पार्टीवाले छोटे दिल और संकुचित दृष्टि के बन जाते हैं। भूदान एक पक्षातीत आन्दोलन है। इसीलिए सभी इसे अच्छा काम समझते हैं। पक्षातीत पद्धति से ही क्रांति का उद्‌गम होगा, सत्ता के जरिये नहीं। यदि जनशक्ति से क्रान्ति हो सकती है, यह बात सिद्ध हो जायगी, तो राजनीतिक विचार में मौलिक

परिवर्तन हो जायगा और न केवल हमारे देश, बल्कि सारी दुनिया के लिए नयी राह मिल जायगी। यह सर्वशक्ति और स्वयंशक्ति समाज में भरी पड़ी है। सौभाग्य की बात है कि अब इसके झरने का मुक्त संचार होने लगा है।

सचमुच आज के पक्षभेद से समाज छिन्न-भिन्न हो गया है। सतत राजनीति को माननेवाले जयप्रकाश बाबू भी आज इसी निश्चय पर आ पहुँचे, यह समझने की बात है। उनके इस परिवर्तन के पीछे गहरा विचार और चिन्तन है। प्रत्यक्ष दर्शन से उन्होंने यह निश्चय किया और जीवनदान समर्पित किया है।

शासनमुक्त समाज की ओर

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ ने यह संकल्प किया है कि हम हिन्दुस्तान-भर में दो साल में २५ लाख एकड़ भूमि एकत्र करेंगे। जनता ने उसके इस संकल्प को उठा लिया। हजारों उसकी पूर्ति में लग गये और वह संकल्प पूर्ण भी हो गया। संघ के पास कोई सत्ता, कानून या कोई अनुशासन नहीं है। लोगों को वह संकल्प सत्य और सार्थक लगा और उन्होंने उसे पूरा कर दिया। इस घटना से लोगों के दिलों में विश्वास उत्पन्न हो गया कि बिना सत्ता के आधार के एक संस्था संकल्प कर सकती है और उसकी पूर्ति भी हो सकती है। लोग उसकी सफलता के लिए जुट पड़ते हैं। इससे यह भी आशा हो जाती है कि शासनमुक्त समाज और पक्षातीत राज्य की स्थापना सम्भव है। इसके लिए स्वतंत्र जनशक्ति पैदा करनी होगी और उसीके साधन के तौर पर यह भूदान-आंदोलन शुरू किया गया है।

मई १९५४

आज वैशाखी पूर्णिमा का दिन है। आज सारी दुनिया में, खासकर एशिया-खंड में बुद्ध भगवान् का जन्म-दिवस मनाया जा रहा है। बुद्ध भगवान् ने दुनिया के लिए जो सन्देश दिया, उसे उन्होंने अपने जीवन से निर्माण किया था। उन्होंने वह सन्देश उस समय दिया, जिस समय हिन्दुस्तान का सारी दुनिया के साथ विशेष सम्बन्ध नहीं था। उस समय दुनिया को उस सन्देश की उतनी आवश्यकता भी नहीं थी। लेकिन आज सारी दुनिया को उसकी आवश्यकता है। उनका वह सन्देश यह है : 'वैर से वैर नहीं मिटेगा, क्रोध से क्रोध नहीं जायगा, झूठ से झूठ नष्ट न होगा।' वैर से वैर बढ़ेगा और क्रोध से क्रोध सुलगेगा। इसलिए वैर का मुकाबला प्रेम से, क्रोध का मुकाबला शान्ति से और असत्य का मुकाबला सत्य से ही करना होगा।

आज विश्व को बुद्ध-सन्देश की प्यास

इस समय दुनिया को इस बुद्ध-सन्देश की अत्यन्त आवश्यकता है। आज दुनिया में असमाधान और अशान्ति व्याप्त है। सारी दुनिया शान्ति की तलाश में है, लेकिन वह मिलती नहीं। सारी दुनिया में कशमकश चल रही है, परस्पर भय बढ़ रहा है। कम-ज्यादा ताकतवाले सारे देश एक-दूसरे से भयभीत हैं। छोटे छोटे देश तो खैर डरते ही हैं, लेकिन अमेरिका और रूस जैसे बड़े-बड़े देश भी डरने लगे हैं। दुनिया पहले कभी इतनी भयभीत नहीं हुई। जब विविध देशों को एक-दूसरे का ज्ञान ही न था, तो डरने की बात दूर ही रही। लेकिन आज दुनिया के किसी एक कोने में एक छोटी-सी हलचल होती है, तो सारी दुनिया पर उसका असर हो जाता है। यह हालत विज्ञान से ही हुई है। अन्ततः विज्ञान का परिणाम यही होगा कि या तो मानव-जाति हिंसा और वैर बढ़ाकर जल्द-से-जल्द अपना खात्मा कर लेगी या हमें अक्ल आ जायगी और

हिंसा के दुष्ट-चक्र से मानवता मुक्त होकर रहेगी। अब बीच की हालत न रह सकेगी। इसीलिए बुद्ध भगवान् का निर्वैरता-सन्देश आज अत्यावश्यक है।

वैर के कारण मिटाये जायँ

पचास साल पहले हिन्दुस्तान में 'बुद्ध-जयन्ती' नहीं होती थी, लेकिन इन दिनों यह शुरू हुई है। कारण स्पष्ट है, भगवान् बुद्ध के सन्देश का उपयोग आज बहुत है, ऐसा हम महसूस करने लगे हैं। उनका यह उपदेश नया नहीं है। गीता ने भी कहा है : 'निर्वैरः सर्वभूतेषु।' निर्वैर बनने का आदेश वेदों ने भी दिया है। भगवान् बुद्ध से पहले के सन्तों ने इसे अपने जीवन में भी उतारा था। फिर भी दुनिया का हाल बदला नहीं। क्योंकि व्यक्तिगत जीवन में यदि कोई निर्वैर बन भी गया, तो लोग उसका आदर करते थे, फिर भी उसकी वह बात व्यावहारिक न मानते थे। 'निर्वैर होना चाहिए' इसे वे अस्वीकार तो न करते थे, पर आचरण में न लाते थे।

बात यह है कि जब तक वैर के कारण नहीं मिटते, तब तक वैर मिट नहीं सकता। कोई अत्यन्त प्यासा हो और उसे अगर स्वच्छ निर्मल पानी न मिल रहा हो, तो वह गन्दा पानी भी पी लेता है। उसकी प्रथम माँग तो स्वच्छ पानी की होती है, लेकिन वह न मिले, तो गन्दे पानी पर भी उसका चित्त राजी हो जाता है। इसी तरह दुनिया को भी वैर की कोई भूख नहीं है। समाज में आग लगे, ऐसा कोई भी जान-बूझकर नहीं चाहता। लेकिन दुनिया के कुछ सवाल हैं; वे अगर शान्ति से हल हो जाते हैं, तो वह शान्तिमय मार्ग से चलने के लिए तैयार है। किन्तु यदि वे मसले शान्ति से हल न हों, तो भी दुनिया शान्ति कायम रखे, यह हो नहीं सकता। इसलिए हमें ऐसी युक्ति ढूँढ़नी चाहिए, जिससे शान्ति स्थापित हो, शान्तिमय शक्ति पैदा हो और दुनिया के अत्यन्त कठिन मसले सुलझ जायँ। ऐसा किये बगैर अहिंसा की शक्ति के प्रति दुनिया का विश्वास नहीं होगा। इसीलिए हमने भूदान-यज्ञ प्रारम्भ किया है।

विज्ञान ने आज हमें छोटा रहने नहीं दिया, बड़ा बना दिया है। भूदान-यज्ञ निर्वैरता के मार्ग से मसले हल करने की कोशिश है। यह आन्दोलन शान्ति की

तलाश के लिए चल रहा है। वह शान्ति में भरी शक्ति की तलाश कर रहा है। इसीलिए हम गाँव-गाँव जाते, लोगों को प्रेम से समझाते और भूमिहीनों के लिए जमीन माँगते हैं। अगर इस तरह भूमिहीनों को जमीन मिल जायगी, तो शान्ति कायम रहेगी। किन्तु हम केवल कहते चले जायँ कि 'शान्ति रखो, निर्वैरता से रहो', तो शान्ति कैसे रहेगी? आज तक तो हम दूसरों से छीनते-बटोरते रहे, संकुचित भावना रखते आये। यह संकुचित भावना विज्ञान के लिए शोभाप्रद नहीं है। विज्ञान ने यह संकीर्णता कम कर दी है। बुद्धि व्यापक हो गयी, पर हृदय अब भी संकुचित ही है। अतः हरएक व्यक्ति को यह तालीम मिलनी चाहिए कि 'देने से निर्वैरता आयेगी।' उसके बगैर भगवान् बुद्ध का सन्देश कोरा ही रहेगा, अमल में नहीं आयेगा।

तीन आधार : संयम, अस्तेय, असंग्रह

भगवान् बुद्ध, महावीर और अन्य ज्ञानी पुरुषों ने अहिंसा के साथ और भी दूसरी बातें बतायी हैं। उन्होंने कहा है कि अहिंसा के साथ-साथ अस्तेय, अपरिग्रह और संयम भी होना चाहिए। उनके बिना अहिंसा और समाज-रचना टिक नहीं सकती, यह उनका पक्का निश्चय था। जैसे-जैसे मैं सोचता हूँ, इसमें मुझे उनकी दीर्घदृष्टि दीखती है। अगर हम संयम का पालन न करें और भोग-विलास में डूब जायँ, तो दुनिया के सामने विकट सवाल खड़ा हो जायगा, मानव मानव को कत्ल करने लगेगा। आज तो लड़ाई में बेखटके हत्या होती ही है, पर कल कोई डॉक्टर कहेगा कि मनुष्य का ताजा गोश्त पुष्टिकारक होता है, तो लोग मनुष्य का ताजा गोश्त भी खाने लगेंगे। भोग-विलास बढ़ेगा, तो संख्यासुर उत्पन्न होगा। पुराणों में अनेक असुर कहे गये हैं। अगर मानव की संख्या बढ़ गयी, तो मानव मानव को खा जायगा। आपने सुना होगा कि जानवरों में कई अपने बच्चों को ही खा जाते हैं। हम कहते हैं कि अगर मनुष्य भोग-विलास न छोड़ेगा, तो यही हालत होगी। इसलिए यदि अहिंसा लानी है, तो संयम आवश्यक है।

दूसरी बात है, अस्तेय यानी चोरी न करने की बात। हमने इसे एक हद तक चलाया है। जो चोर कानूनी चोरी करता है, उसे हम जेल में डाल देते हैं।

किन्तु जिस चोरी की कानून के अन्दर गिनती नहीं होती, उसे हम नहीं हटाते। अतिरिक्त तनखाह, अतिरिक्त मुनाफा, व्याज, दलाली, आखिर यह सब चोरी ही तो है! इसलिए हमें इनसे भी मुक्ति पानी ही चाहिए। संग्रह पर काबू रखना चाहिए। संग्रह भी बढ़े और अहिंसा भी चले, यह कभी सम्भव नहीं। लोग पूछेंगे कि रेडिओ, लाउडस्पीकर, क्या यह सब संग्रह नहीं है? नहीं, अगर सारे समाज का ऐश्वर्य बढ़ता है, तो वह हिंसा नहीं है। दूसरों को लूटकर अपने घर में संग्रह करें, तो वह हिंसा होती है। समाज लक्ष्मीवान् बने, तो हम खुश ही हैं। किन्तु आप 'लक्ष्मीवान्' किसे कहेंगे? मान लीजिये कि सारा समाज बीड़ी पीता है, हर रोज हरएक व्यक्ति एक रुपये की बीड़ी-सिगरेट पीता है, तो यह अच्छा नहीं है। बीड़ी-सिगरेट की ऐसी समृद्धि हो जाय, तो उसे ऐश्वर्य आया, ऐसा नहीं कहेंगे। अच्छी बातें बढ़ने पर ही जीवन समृद्ध होता है। दूसरों को जो चीज नहीं मिलती, वह मैं ले लूँ, यह संग्रह है, गुनाह है। प्रायः हम लोग सब बातों में अपनी ही सोचते हैं, दूसरों का खयाल ही नहीं करते। इसीलिए असंग्रह, अस्तेय, संयम, ये तीन बातें अहिंसा के साथ जोड़ी जायँ, तभी वह टिक सकती है।

पृथ्वी के रक्षक को छठा हिस्सा

शास्त्रों का कहना है कि जो जमीन का संरक्षण करता है, उसे छठा हिस्सा देना चाहिए। हम कहते हैं कि आज पृथ्वी का रक्षण मजदूर ही करते हैं। सारा भार उन्हीं पर है। वे ही दुनिया के नाथ हैं और जगत् के तात हैं। यह नाम गांधीजी ने उनको दिया था। इसलिए मजदूरों को छठा हिस्सा मिलना लाजिमी है। "इहैव तैर्जितः स्वर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।" जिन्होंने इसी जिन्दगी में साम्ययोग साधा, उन्होंने इसी जिन्दगी में संसार जीत लिया। तुलसीदासजी ने कहा है :

> 'को जाने को जैहै जमपुर, को सुरपुर परधाम को।
> तुलसिहि बहुत भलो लागत, जग-जीवन राम-गुलाम को॥'

कौन जानता है कि कौन स्वर्ग में जाता है और कौन नरक में? इसलिए वे इसी जिन्दगी में भगवान् का गुलाम बनकर रहना पसन्द करते हैं।

जीवन-दान के लिए आह्वान

यह आन्दोलन इस लोक को ही स्वर्ग बना देगा। विज्ञान के साथ अहिंसा को जोड़ दें, तो हम इसी दुनिया में स्वर्ग ला सकते हैं। भूदान-यज्ञ सबके लिए है। उसका नाम ही 'सर्वोदय' है। यह सर्वोदय कब होगा? जैसे यति-संघ, भिक्षु-संघ, भगवान् बुद्ध के अनुयायी निकले, वैसे ही जीवन-दानी निकल पड़ने पर यह काम होगा। महावीर और बुद्ध ने समझ लिया था कि हजारों की तादाद में सर्वस्व की बाजी लगाकर जब यह भिक्षु-संघ घूमेगा, तभी विचार का प्रसार होगा। भगवान् बुद्ध तो कहते भी थे: "ननिकते रमतिन्ते" जो ज्ञानी होते हैं, वे घर में आनन्द नहीं मानते। उनको घूमने में ही उत्साह है। वे निरंतर घूमते हैं, सेवा करते हैं, राग-द्वेष, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, सब भगवान् को अर्पण करके काम करते हैं। वैसे ही आज भी जब लोग जनसेवार्थ 'बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय' नहीं, 'सर्व हिताय, सर्वसुखाय' निकल पड़ेंगे, तभी यह काम होगा। अगर समाज की रचना अहिंसात्मक चाहते हैं, तो लाजिमी है कि जीवनदानी निकलें।

इसका भी आरम्भ बोधगया में हो गया है। जहाँ तथागत को बोधिवृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ था, वहाँ गांधीजी को माननेवाले उनके भक्तगण इकट्ठे हुए थे। उन्हें एक प्रेरणा हुई और जीवनदान शुरू हुआ। इसका प्रारंभ आपके प्रिय नेता जयप्रकाशजी ने किया था। नया समाज बनाने के लिए यह आन्दोलन हुआ और यह धारा बहने लगी। इसके आगे समाज-रचना अहिंसा पर स्थापित करने का कार्यक्रम जोर से चलेगा। मैं देखता हूँ कि यह भगवान् की स्पष्ट इच्छा है कि शोषणहीन शासनमुक्त मानव-समाज बने। मेरा यह आवाहन है कि जिसके जीवन में कुछ तत्त्व हो, जिसके शरीर में प्राण हो, जिसकी बुद्धि में विवेक हो, वह इस काम में कूद पड़े और भगवान् का आशीर्वाद ले।

मोहनिया
१६-५-'५४

चोरी और सजा

हमसे एक अहम सवाल पूछा गया कि 'इन दिनों चोरियाँ, खून, डकैतियाँ आदि बढ़ रही हैं, तो उनके लिए क्या उपाय किया जाय?' यह सुनकर हमें आश्चर्य नहीं होता, बल्कि इस बात पर आश्चर्य होता है कि आज की हालत में इतने कम अपराध कैसे होते हैं! कम अपराध होते हैं, इसका कारण यह है कि यहाँ के गाँव-गाँव के अपढ़ लोगों के खून में सभ्यता पैठी है। इसीलिए यहाँ के लोगों की सहज प्रवृत्ति शान्तिमय, सौम्य और संयमशील है।

अहिंसा की ताकत

दस-बारह साल पहले की घटना है। बंगाल में अकाल के कारण लाखों लोग मर गये। उन दिनों हम जेल में थे। वहाँ कुछ लोग कहते थे कि 'हमारे देश की हालत इतनी गिरी हुई है कि लाखों लोग ऐसे ही मर गये। दूसरे देशों के लोग ऐसी हालत में चोरियाँ करते या हमला करके अनाज लूटते।' यह सुनकर मैं बेचैन हो गया। मुझे रात को नींद नहीं आयी। सोचता रहा कि 'क्या सच-मुच हम गिरे हुए हैं?' तो अन्दर से आवाज आयी: 'ऐसी बात नहीं है।' हमारे देश के सन्तों ने, ऋषि-मुनियों ने सिखाया है कि हम तो मर रहे हैं, फिर जो जिन्दा हैं, उन्हें क्यों हैरान करें? यह अपने देश का बहुत बड़ा गुण है, बहुत बड़ी सिफत है। प्राचीन काल से हमें यह मर्यादा सिखायी गयी है। बंगाल में जो मरे, वे ईश्वर का नाम लेते हुए मरे होंगे। यह कमजोरी नहीं, इसमें अहिंसा की, सत्याग्रह की ताकत छिपी है। चाहे हम मर जायँ, पर दूसरों को पीड़ा न देंगे। जो सहन करने को सहज बात मानते हैं, उनमें अहिंसात्मक प्रतिकार की शक्ति का सहज निर्माण हो सकता है।

चोरी की सजा

इन दिनों कुछ लोग काम न मिलने के कारण चोरियाँ करते हैं, जिससे अपने भूखे बाल-बच्चों को खिला सकें। लेकिन उन्हें पकड़कर न्यायाधीश के सामने खड़ा किया जाता है, जो उसे दो-तीन साल की सजा देता है। वास्तव में इसमें उसके बीबी-बच्चों को सजा भुगतनी पड़ती है, क्योंकि उसे तो जेल में खाना मिल ही जाता है। अगर हमें न्यायाधीश बनाया जाय, तो हम दूसरे किस्म की सजा देंगे। अच्छी तरह से तहकीकात करने पर अगर यह साबित हो जाय कि फलाने व्यक्ति ने चोरी की है, तो हम उससे कहेंगे : 'तूने चोरी की है, इसलिए तुझे तीन एकड़ जमीन की सजा दी जाती है, तीन साल के जेल की नहीं। उस जमीन में अच्छी तरह से मिहनत करके अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण कर।' हम मानते हैं कि इस तरह की सजा दी जायगी, तो चोरियाँ न होंगी।

आज के समाज में एक अजीब न्याय चलता है। छिटपुट चोरियाँ करने-वाले को 'चोर' कहा जाता है और बड़ी चोरी करनेवाले को—संग्रह करनेवाले को—प्रतिष्ठा दी जाती है। समझने की बात है कि जहाँ ताले-कुञ्जियाँ बढ़ती हैं, वहाँ चोरियाँ बढ़ती हैं। अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वॉशिंगटन ने बचपन की अपनी डायरी में एक वाक्य लिखा है : **'फेन्स इज ए टेम्टेशन टू जंप'** याने जो घेरा लगाया जाता है, वह कूदने के लिए प्रलोभन ही है। अगर हम चाहते हैं कि समाज में चोरियाँ न हों, तो समाज की शुद्धि होनी चाहिए। उसके लिए जमीन का बँटवारा करना और सबको काम देना होगा। ग्रामोद्योगों के बिना सबको काम देना असम्भव है। इसीलिए हम सिर्फ राम का नाम नहीं लेते, बल्कि 'सीताराम' का लेते हैं। सीता है, जमीन का बँटवारा और राम है, ग्रामोद्योग।

इसके अलावा हमारे चिन्तन में शुद्धि भी होनी चाहिए। संग्रह करना पाप है, शरीर-श्रम टालना पाप है, यह विचार रूढ़ होना चाहिए। जो थोड़ा काम करके ज्यादा लेता है, बिना श्रम के किसीके घर से हजार रुपया उठा लेता है, उसे हम 'चोर' कहते हैं। तो, फिर न्यायाधीश, प्रोफेसर आदि भी चोर ही गिने जायँगे, क्योंकि वे मुश्किल से ३-४ घण्टा काम करते हैं और बहुत ज्यादा तनख्वाह

लेते हैं। इसलिए समझना चाहिए कि किसान और मजदूरों को छोड़कर, जो कि अपने पसीने से रोटी कमाते हैं, हम सबकी गिनती लूटनेवालों में है। इसलिए हरएक को व्रत लेना चाहिए कि कुछ-न-कुछ उत्पादक परिश्रम किये बगैर नहीं खायेंगे।

पकडिहार
१६-६-'५४

क्रान्ति का त्रिकोण : ४८ :

हम तीन साल से घूम रहे हैं, फिर भी घूमने का हमारा उत्साह बढ़ ही रहा है। यह इसीलिए संभव हुआ कि भूदान-यज्ञ की बुनियाद में एक महान् तत्त्वज्ञान भरा है। जिसे इसका दर्शन होता है, उसे इससे रस मिलता रहता है। यहाँ ये पेड़ बरसों से खड़े हैं। उन्हें भीतर से रस मिलता है, इसीलिए गर्मी में भी नहीं सूखते। इतना ही नहीं, बाहर से ज्यों-ज्यों सूर्य की जोर की मार पड़ती है, त्यों-त्यों वे हरे-भरे होते जाते हैं। बात यह है कि जहाँ अन्दर से रस मिलता है, वहाँ बाहर का ताप तकलीफ नहीं देता। इसी तरह अन्दर से तत्त्वज्ञान का रस मिलता है, तो तपस्या से उत्साह बढ़ता है और तकलीफ नहीं होती।

आचार्य नरेन्द्रदेवजी का आक्षेप

अभी हमने पढ़ा कि आचार्य नरेन्द्रदेव ने, जो कि उत्तर प्रदेशीय भूदान-समिति के सदस्य हैं, कहा कि 'भूदान का काम तो अच्छा है, लेकिन उसके पीछे कोई खास तत्त्वज्ञान नहीं दीखता।' इसका उत्तर मैं क्या दूँ। इतना ही कहूँगा कि अगर इसके पीछे तत्त्वज्ञान न होता, तो बाबा के पाँव तीन साल में ढीले पड़ जाते। लेकिन बाबा के पाँव ढीले नहीं हुए, बल्कि उनमें जोर ही आ रहा है। जहाँ एक मामूली विचार से मनुष्य काम करता है, वहाँ उसकी गति धीमी पड़ जाती है। लेकिन जहाँ विचार की गहराई है, वहाँ काम की गति तेज होती है। नित्य नयी स्फूर्ति मिलती है, जीवन में नवीन पल्लव फूटते हैं। आप देखते हैं, भूदान-यज्ञ से सम्पत्ति-दान निकला, श्रमदान निकला और अब जीवन-दान भी निकला। ये सब

भूदान-यज्ञ की ही नयी-नयी शाखाएँ हैं। इसका विस्तार इतना होगा कि जितने भी रचनात्मक काम हैं, वे सभी इसके अन्दर आयेंगे ही, लेकिन समाज-जीवन के अन्य नैतिक अंग भी इसमें आ जायँगे। अगर इसके मूल में कोई मजबूत तत्त्वज्ञान न रहता, तो यह सब न होता।

आचार्य नरेन्द्रदेव ने यह तो नहीं कहा कि 'हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया निकम्मी है'; लेकिन यह अवश्य कहा कि 'वे वर्ग-संघर्ष को माननेवाले हैं और केवल हृदय-परिवर्तन से यह काम होगा, ऐसा नहीं मानते।' इसके माने यही कि कोई व्यक्ति अपना एक निश्चय करके बैठ गया है। अगर ऐसा निश्चय हुआ हो, तो किसी विचार या अनुभव से ही हुआ होगा। लेकिन सृष्टि में नित्य नये अनुभव आते रहते हैं। क्रान्ति की नयी-नयी प्रक्रियाएँ होती हैं। आखिर क्रान्ति वही है, जिसकी नयी-नयी प्रक्रियाएँ होती हैं। अगर उसकी प्रक्रिया तयशुदा होगी, तो वह क्रान्ति ही नहीं रहेगी।

क्रान्ति का त्रिकोण

हम कहते हैं कि विचार से जिसने मान लिया हो कि वर्ग-संघर्ष से ही क्रान्ति हो सकती है, वह अगर अनुभव के लिए गुंजाइश रखे, तो यह भी अनुभव कर सकता है कि हृदय-परिवर्तन और विचार-परिवर्तन से भी क्रान्ति हो सकती है। हृदय-परिवर्तन मोहग्रस्तों का और विचार-परिवर्तन सज्जनों का करना पड़ता है। दोनों मिलकर क्रान्ति की प्रक्रिया होती है और यही हमारा कार्यक्रम है। एक तरफ हम विचार समझाते हैं और दूसरी तरफ से हमारा तप चलता है। समझाने से विचार-परिवर्तन होता है और तप से हृदय-परिवर्तन। इन दोनों के साथ इन्हींके परिणामस्वरूप एक बात और भी आ जाती है, परिस्थिति-परिवर्तन। इस तरह क्रान्ति का एक त्रिकोण बन जाता है। पूछा जा सकता है कि परिस्थिति-परिवर्तन के लिए क्या करना चाहिए ? कुछ लोगों का खयाल है कि कानून से यह परिवर्तन होगा, फिर कानून के लिए क्या करना होगा ? सत्ता हाथ में कैसे लेंगे ? यही कि हम लोगों को समझाकर उनका विचार-परिवर्तन करेंगे और उसके जरिये सत्ता हाथ में लेंगे। लोकशाही में यही उत्तर हो सकता है। आखिर केवल विचार-परिवर्तन का रास्ता ही रह जाता है।

असहयोग का शस्त्र

किन्तु हमारे पास तो विचार-परिवर्तन के साथ हृदय-परिवर्तन यानी तपस्या का रास्ता भी है। तपस्या के कई प्रकार हो सकते हैं। गाँव-गाँव पैदल घूमना भी तपस्या का एक प्रकार है। इसके जरिये हम जनता को यह समझा सकते हैं कि वह पाप में हिस्सेदार न बने। आज जगह-जगह बेदखलियाँ चल रही हैं। जमींदारों को बेदखली का अन्याय हम जँचा सकते हैं। पर वे नहीं समझते, तो असहयोग आता है। जनता उनके कामों में सहयोग न देगी। हम कहते हैं कि हमारी प्रक्रिया में असहयोग और सत्याग्रह हो ही सकता है, हमारी प्रक्रिया से कानून भी बन सकता है। हम यह भी कबूल करते हैं कि अगर जनसमूह निराश हुआ, तो खूनी क्रांति भी हो सकती है। लेकिन चौथी बात भी बन सकती है याने भूदान से ही समस्या हल हो सकती है—अगर कार्यकर्ता चारों ओर से इसमें लग जायँ और ठीक ढंग से लोगों को विचार समझा दें। जनता का हमें जो परिचय हुआ है, उस पर से हम कह सकते हैं कि यह बात बिलकुल नामुमकिन नहीं है। हम तो इसी आशा से काम करते हैं।

हमने कानून को रोका नहीं है

लेकिन मान लीजिये कि वह आशा सफल नहीं होती, तो तीन मार्ग रह जाते हैं। इनमें से 'खूनी-क्रान्ति' का मार्ग तो कोई मार्ग ही नहीं है और न वह क्रान्ति ही है। तब सोचने के लिए केवल दो ही उपाय रह जाते हैं, एक कानून का और दूसरा असहयोग का। कानून को हमने रोका तो नहीं है। कानून बने, लेकिन कानून का ढोंग न बने। कानून कारगर बने। हम किसी पार्टी को सत्ता हासिल करने या कानून बनाने से रोकते नहीं। हरएक पार्टी कबूल करेगी कि इस आन्दोलन से कानून बनाने को बल ही मिला है।

कानून की बात चलती है, तो सीलिंग की बात की जाती है। और भी दूसरे पचड़े निकलते हैं, उसीमें समय चला जाता है। तब तक लोग अपनी जमीन बाँट लेते हैं। अभी हैदराबाद में कानून बना है। उसके अनुसार सौ या सवा सौ एकड़ खुश्क जमीन लोग रख सकते हैं। तीन साल पहले हम तेलंगाना में थे, तभी इस

कानून की बात चल रही थी। लोगों ने तभी से आपस में बँटवारा कर लिया है। धनी लोग प्रत्युत्पन्नमति होते हैं। जिनके पास दौलत और जमीन है, उनके पास अक्ल भी होती है। इसलिए कानून बनाइये, लेकिन ऐसा कि जिससे आप बेवकूफ न बनें।

प्रेम कारगर बारूद है

अब रहा असहयोग और सत्याग्रह। यह रास्ता न्याय और धर्म का है। इसमें किसी तरह का द्वेष नहीं है। सत्याग्रह और असहयोग की ताकत द्वेष से घटती है। द्वेषयुक्त असहयोग तो गीली बारूद है। कारगर बारूद तो प्रेम ही है। सत्याग्रह की ताकत प्रेम में ही है। जितना प्रेम, उतना ही सत्याग्रह का हक। हम तो कहते हैं कि द्वेष जिस चीज से पैदा होता है, उसमें सत्याग्रह है ही नहीं। कुछ लोग सत्याग्रह को धमकी समझते हैं। हम कहते हैं कि फिर प्रेम को ही धमकी समझना होगा। इस जमाने में बन्दूक और नोटों से धमकी का काम होता है। जैसे पिस्तौल की सत्ता चलती है, वैसे ही पूँजीवादियों ने पैसों का भी जादू चलाया है। वे किसानों के पास जायँगे और दस रुपये का नोट दिखायेंगे और किसान भी घबड़ाकर घी-मक्खन दे देंगे।

किन्तु पिस्तौल और पैसों की एवज में प्रेम की शक्ति साधारणतया सहयोग के रूप में और विशेष प्रसंगों में असहयोग के रूप में प्रकट होती है। माँ कभी बच्चे को प्रेम से खिलाती है, तो कभी उसे सन्मार्ग पर लाने के लिए तमाचा भी जड़ देती है। पर बच्चा जानता है कि वह प्रेम का तमाचा है। यह तमाचे की बात निकली, इसलिए हम कहते हैं कि नाजायज तरीके से किसीका गल्ला किसीके घर में रखा गया हो, तो उसे लूटना भी अहिंसा में आ सकता है। शुकदेव ने श्रीकृष्ण की चोरी के भी गीत गाये हैं। गांधी के जमाने में 'लुंगलीचोर' (प्याज चोर) विशेष गौरव का विषय बन गया था। ये सारी चीजें प्रेम में आती हैं। इतना प्रेम प्रकट करने के लिए घर-घर जाना और समझाना चाहिए। अगर यह सब होगा, तो बहुत-से लोग जमीन दे ही देंगे, और नहीं ही देंगे, तो दूसरे शस्त्र भी तो अभी हमारे पास पड़े हैं। हाँ, हमारे शस्त्र ऐसे हैं कि सामनेवाले को तकलीफ नहीं देते, वरन् उसकी हृदय-शुद्धि करते हैं।

कार्यकर्ता आत्मवादी बनें

भूदान-यज्ञ की प्रक्रिया में क्या-क्या आता है, उसका विवरण मैंने दिया। लेकिन इतने से हमारी विचार-सफाई पूरी नहीं होती। हमारे कार्यकर्ताओं को आत्मवादी होना चाहिए। अगर हम आत्मवादी नहीं, तो हमारा भूदान का तत्त्वज्ञान टूट जाता है। आत्मवादी का अर्थ है, इस बात पर विश्वास कि हरएक के हृदय में आत्मा है, इसलिए हरएक का हृदय-परिवर्तन हो सकता है। मनुष्यों के हृदय में एक-दूसरों के लिए सहानुभूति भरी पड़ी है। अगर यहाँ किसीको बिच्छू काटे, तो हम चुप नहीं बैठ सकते। क्योंकि मनुष्य के दिल में एक ऐसी चीज है, जिसका तार दूसरे मनुष्य के हृदय में पहुँचता है। यह जो नहीं मानता, उसके लिए हृदय-परिवर्तन और भूदान भी बेकार है। यदि हम मानते हैं कि हरएक में आत्मा है, तो हृदय-परिवर्तन, विचार-परिवर्तन और दोनों के बल पर परिस्थिति-परिवर्तन, यह त्रिकोणात्मक प्रक्रिया टिकेगी। भूदान-यज्ञ के मूल में यह सारा विचार भरा है। हम शब्दों के विवाद में, खंडन-मंडन में न पड़ें; लेकिन हमारे खुद के विचारों की सफाई होनी चाहिए।

वृन्दावन
२६-६-'५४

गहनों ने बहनों को दबाया है

कुछ बहनों ने कुआँ बनाने के लिए गहनों का दान दिया है। इससे हमें खुशी होती है। वास्तव में गहनों ने बहनों को दबाया है। बहनें गहनों के कारण बिलकुल डरपोक बन गयी हैं, पुरुषों ने उन्हें अपना बैंक बना रखा है। वे सारा धन उन पर इकट्ठा करते हैं। जैसे धन को सन्दूक में बन्द किया जाता है, उसी तरह पुरुष भी स्त्रियों को परदे में बन्द करते हैं। यहाँ तक कि संस्कृत में स्त्रियों का गौरव करते समय उन्हें 'भीरु' कहा जाता है। यह भीरुता गहनों के कारण ही है। इसलिए स्त्रियाँ जब गहने देती हैं, तो हमें न सिर्फ कुएँ बनाने का आनन्द होता है, बल्कि बहनें उससे डरपोकपन छोड़ देंगी, इसलिए बहुत आनन्द होता है।

एक बार गहने देने पर आप फिर दुबारा उन्हें न पहनने का निश्चय करें। गहनों को कचरा समझकर दे दो। उसका दान नहीं, त्याग कर दो, क्योंकि दान तो अच्छी चीज का होता है, कचरे का नहीं। कचरे का तो त्याग होता है। ये गहने आपको दबानेवाले हैं, इसलिए इन्हें दे दो। हमें गहने न मिलें, तो हमारा काम रुकनेवाला नहीं है। किन्तु अगर स्त्रियाँ गहने देती हैं, तो देश का काम होता ही है, अन्दर का काम भी बनता है। इससे बहनें मजबूत बन सकती हैं और डरपोकपन छोड़ सकती हैं। इस तरह इससे दुहरा काम बनता है।

क्रांति के लिए बहनें वैराग्य-संपन्न बनें

मैं समझता हूँ कि हमारे सर्वोदय-कार्यक्रमों में बहनों का कार्यक्रम एक विशेष स्थान रखता है। अगर वह ठीक ढंग से चले, तो उससे समाज बहुत बदल दिया जा सकता है। इसलिए हम इसे बहुत महत्त्व देते हैं।

मैंने कई बार कहा है कि स्त्रियों को उतनी ही तालीम की जरूरत है, जितनी पुरुषों को है। आज हिन्दुस्तान में ही नहीं, दुनियाभर में स्त्रियों का क्षेत्र मर्यादित-सा हो गया है। प्राकृतिक और सामाजिक रीति-नीति के कारण कुछ पाबन्दियाँ पैदा हुई हैं। उन बहनों को, जो समाज में जाकर काम करेंगी, उत्तम शिक्षण चाहिए। यह शिक्षण भोग या सुख का शिक्षण नहीं, जीवन-शिक्षण होना चाहिए। मेरा विश्वास है कि जब शंकराचार्य के जैसी या उनसे भी बढ़कर बहनें आत्मज्ञान और वैराग्य-सम्पन्न होकर निकलेंगी, तभी देश में क्रांति हो सकेगी। मेरा विश्वास है कि अगर भगवान् हिन्दुस्तान का उद्धार चाहता हो, तो ऐसी बहनें जरूर निकलेंगी।

हिंदू-समाज में स्त्रियों के मार्ग की रुकावटें

हिन्दू-समाज में बहनें बहुत पीछे हैं। उन्हें कानूनी या सामाजिक अड़चनों के अलावा आध्यात्मिक विचारों की भी रुकावटें हैं। एक जमाना था, जब कहा जाता था कि स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं। आज तो पुरुष भी यह अधिकार नहीं चाहते। आज उसकी कोई कीमत नहीं। लेकिन जब कीमत थी, तब स्त्री को अधिकार नहीं था। अच्छे-अच्छे धर्मज्ञ और शास्त्री तक मानते हैं कि स्त्रियों को आजन्म-ब्रह्मचर्य का अधिकार नहीं है। जब ये बातें सामने आती हैं, तब उनके लिए बड़ी भारी आध्यात्मिक रुकावट पैदा होती है। परिणाम यह होता है कि हर कन्या के सामने यह आदर्श रहता और सिखाया जाता है कि पिता के घर से दूसरे के घर जाना है। सारी तालीम उसी ढंग से दी जाती है। मानसिक

शिक्षण भी उसी प्रकार चलता है। स्वतंत्र, पराक्रमी स्त्रियों की कल्पना हिन्दुस्तान में नहीं की जाती।

माना जाता है कि स्त्री पति या पुत्र के जरिये सेवा करेगी। यह सेवा कम है, यह मैं कभी नहीं कहता। लेकिन इतना जरूर मानता हूँ कि स्त्रियों को स्वतन्त्र पराक्रम का अधिकार होना चाहिए। हिन्दुओं में एक टीकाकार ने तो यहाँ तक लिखा है कि 'पुरुषार्थ' शब्द ही बताता है कि वह पुरुष के लिए है और स्त्री को तो पुरुष में लीन होना चाहिए। मेरा मन इसे कबूल नहीं करता। इसमें आत्मा के गौरव की हानि होती है। स्त्री के रूप में शक्ति सीमित है और पुरुष के रूप में असीमित, यह आत्मा का भेद कैसा ?

स्त्रियों को अध्यात्मज्ञान पहले दिया जाय

जहाँ तक स्त्रियों की शिक्षा का सवाल है, उन्हें अध्यात्मज्ञान पहले दिया जाय। पहले हमारे यहाँ की स्त्रियाँ अध्यात्म-परायण होती थीं। महाभारत में जनक-सुलभा-संवाद आता है। सुलभा ने जनक को ज्ञान दिया है। इस तरह और भी कहानियाँ हैं। हिन्दुस्तान में एक जमाने में स्त्री का इतना गौरव था, पर आज यह हालत नहीं है। आज उनकी प्रथम आवश्यकता अध्यात्मज्ञान की ही है। 'हम देह से अलग हैं, आत्मा अविनाशी है, इन्द्रियों पर संयम रखना चाहिए, परमेश्वर हमारे अन्दर विराजमान है, इसी जन्म में दर्शन सुलभ है, सारे जीव हमारे रूप हैं—ये सारी बातें उन्हें सिखानी चाहिए। इस तरह बहनें अध्यात्म-विचार में प्रवीण हों। तालीम का सारा आधार आत्मा का ज्ञान होना चाहिए। स्त्री-शिक्षण में सत्य-निष्ठा और जीवन-तपस्या की सख्त जरूरत है, ताकि स्त्री में आज के समाज के विरुद्ध बगावत करने की हिम्मत आये। जिसके अन्दर अध्यात्म-विद्या है, उसे सारी दुनिया भी दबाना चाहे, तो वह दब नहीं सकता। मेरा विश्वास है कि अध्यात्म-विद्या से हम जबर्दस्त क्रान्ति कर सकते हैं। पुस्तकों से मदद जरूर मिलती है। गीता, उपनिषद् जैसे उत्तम-उत्तम ग्रन्थ पड़े हैं, आधुनिक जमाने के भी ग्रन्थ हैं। लेकिन पुस्तकों से मेरा मतलब नहीं। मेरा मतलब तो मूल विचार से है। अगर वह मिलता है, तो आगे की बात अच्छी तरह चल सकती है।

स्त्रियों के उद्योग सुरक्षित रहें

जहाँ तक उद्योग की बात है, मेरा खयाल है कि कुछ उद्योग बहनों के ही हों। जैसे शहरवालों ने गाँववालों के उद्योग छीन लिये, उसी तरह पुरुषों ने स्त्रियों के उद्योग ले लिये और उन्हें केवल भोग का साधन मान लिया है। यह मत समझिये कि यह बात केवल देहातों में है। जिसे 'फैशनेबुल सोसाइटी' कहा जाता है, वहाँ भी यही हालत है। वहाँ तो स्त्रियों को गाड़ियों की तरह रखते हैं। कोई खास जिम्मेवारी भी उन पर नहीं रहती, सारा जीवन भोग-विलास का रहता है। किन्तु यह विचार सारे समाज को छिन्न-भिन्न करने और निर्वीर्य बनानेवाला है।

एक जमाने में स्त्रियों का खास काम बुनना समझा जाता था। आज यह स्थिति है कि पुरुष बुनते हैं और स्त्रियाँ नरी आदि भरती हैं। ऐसे ही सिलाई का काम है। सिंगर मशीनें आने के बाद से पुरुष ने उसे भी अपने हाथ में ले लिया। इस तरह एक-एक धन्धा स्त्रियों के हाथ से जाता रहा। आज यह अवस्था हो गयी है कि सब काम पुरुष करते हैं और कहते हैं कि स्त्री हम पर भार है। स्त्री की पराधीनता का प्रधान कारण यही है कि कोई खास उद्योग आज उसके पास नहीं रहा। उत्तम-से-उत्तम रसोई बनाने का काम वह कर सकती है। केवल भोगसाधक चटोरपन की रसोई में ही नहीं, बल्कि आरोग्यप्रद और रुग्णों के लिए पथ्यकर रसोई बनाने में भी वह अवश्य प्रवीण हो सकती है। बहनें तरकारी के बगीचे लगा सकती हैं। इनके अलावा दूध दुहना, गाय की सेवा, सफाई आदि का काम भी वे कर सकती हैं।

स्वतन्त्र ज्ञान-प्राप्ति की क्षमता

इनके साथ-साथ स्त्रियों को किसी एक भाषा का सर्वोत्तम ज्ञान होना भी जरूरी है, फिर वह चाहे मातृभाषा हो, प्रान्तभाषा हो या राष्ट्रभाषा। उनके पास ज्ञान की पूँजी कभी कम न होनी चाहिए। ज्ञान तो उत्तम और परिपूर्ण होना चाहिए। 'परिपूर्ण' का अर्थ है, स्वतन्त्र ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति, ज्ञान-प्राप्ति में स्वावलम्बिता। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि लड़कियाँ सीखती ही रहें और

सेवा-कार्य कभी न करें। उन्हें सेवा करने के लिए अनुभवी बहनों के पास भेजा जाय और साथ-साथ जिसे मैं परिपूर्ण विद्या कहता हूँ, वह भी सिखायी जाय। जब पूरा अनुभव हो जाय, तभी उन्हें अकेले किसी क्षेत्र में भेजा जाय।

लोकशक्ति बढ़ाने में स्त्रियों का सहयोग

स्वराज्य के बाद कुछ काम तो सरकार को करना है। लेकिन सरकार बहुत-से काम नहीं कर सकती, उन्हें हमें करना है। स्त्रियों को परदे से बाहर लाना है। आखिर कौन लायेगा? तिलक की प्रथा बन्द करनी है। पर वह कैसे बन्द होगी? स्त्रियों के विवाह की उम्र बढ़ानी है, तो वह कैसे बढ़ेगी? इसी तरह बीमारों की सेवा और तालीम का काम करना है। सब कौन करेगा? यह सरकार कभी नहीं कर सकती, इन्हें तो हमें ही करना होगा। लोग-शक्ति के आधार पर धर्मनिष्ठा द्वारा हमें ही ये काम करने हैं। हम आशा करते हैं कि हमारे देश में ऐसी तेजस्वी बहनें निकलेंगी, जो सूर्य की तरह प्रतापी होंगी। उनकी किरणों से प्रकाश फैलेगा और देश का अन्धकार दूर होगा।

आज जो तालीम दी जाती है, वह गुलाम बनानेवाली है, आरामतलबी की और भोग की तालीम है। ज्यादा स्वतन्त्र तो हमने देहात की बहनों को ही पाया है। शहर की भी ऐसी पढ़ी-लिखी स्त्रियों को देखा है, जो आरामतलबी में बुरी तरह से पति के वश में हैं, जिससे न तो उसकी उन्नति होती है और न पति की ही। हमें समाज की रूढ़ियों को तोड़ना है। इसकी अपेक्षा आपके ग्राम-सेविका विद्यालयों से है। अगर आदर्श ऊँचा रहे और उस ओर लगातार प्रयत्न किया जाय, तो जरा नीचे रहने पर भी कुछ न बिगड़ेगा। हमें अपना काम सतत प्रयत्न से जारी रखना चाहिए।

पूसारोड
२६-८-'५४

आप सबको मालूम है कि हम किस काम के लिए घूम रहे हैं। यह बात अब बिहार की हवा में फैल गयी है कि जमीन जल्दी ही बँटकर रहेगी। कोई ऐसा व्यक्ति न रहेगा, जो जमीन की काश्त करना चाहे और जमीन माँगे, पर उसे वह न मिले। हम बाढ़-पीड़ित प्रदेश की बात कर रहे हैं, जहाँ हमारे ढाई महीने बीते। वहाँ कार्यकर्ताओं ने कोई खास काम नहीं किया था। वहाँ ऐसे भी मौके आये कि हम लोगों के भोजन का कोई भी इन्तजाम नहीं था। हम बिहार में साढ़े तीन साल से घूम रहे हैं, पर ऐसे मौके बाढ़-पीड़ित प्रदेश में ही आये और कहीं नहीं। बावजूद इसके वहाँ हम जा पहुँचे, तो सैकड़ों लोग आ जुटे।

बाढ़-पीड़ितों का यह उत्साह !

एक जगह तो लोगों ने हमें बताया कि करीब दो सौ नौकाएँ आ पहुँची थीं। सैकड़ों स्त्री-पुरुष आये थे। बच्चों को बहनों ने गोद में उठा लिया था। गीली जमीन और ऊपर से बारिश हो रही थी, लेकिन सब उत्साहपूर्वक खड़े-खड़े शान्ति के साथ प्रार्थना में सम्मिलित हुए। उन्हें जमीन तो नहीं मिली, पर यह संदेश जरूर मिला कि 'गरीब का जमीन पर हक है। जिस तरह हवा, पानी और सूरज की रोशनी परमेश्वर ने हमें दी है और उनका कोई मालिक नहीं हो सकता, उसी तरह जमीन भी परमेश्वर की दी हुई चीज है और इसका भी कोई मालिक नहीं हो सकता। जो जमीन की सेवा करना चाहे, उसे जमीन मिलेगी।' और हमें वहाँ भी दानपत्र मिले। इतना उत्साह हमने वहाँ देखा।

इस तरह सारे बिहार की हवा उत्साह से भरी है और हरएक को समाधान है। हमें बिहार में दो साल से ज्यादा हो चुके, अब हम दो महीने यहाँ और हैं। कोई वजह नहीं कि जितनी जमीन हमने माँगी है, वह इन दो महीने में पूरी न हो जाय। अगर कार्यकर्ता इसमें जी-जान से लगें, तो गाँव-गाँव जमीन मिलेगी।

दान-पत्र-वापस-आन्दोलन की फल-श्रुति

बीच में हमने एक नया आन्दोलन शुरू किया। वह है, दान-पत्र-वापसी-आन्दोलन। कुछ दानपत्रों के पीछे हमने लिख भी दिया कि 'ना-काफी दान है, इसलिए वापस।' उसके नीचे हमने अपने हस्ताक्षर भी कर दिये। जिसके पास पचास बीघे हैं और उसने आधा बीघा दिया, तो हमने वापस कर दिया। लोगों ने उससे कहा कि कुछ दे दो, तो उसने दे दिया था। फिर शाम को वह हमारे पास आया। उसकी ऐसी कुछ मुद्रा देखते, जैसे घोर पश्चात्ताप हो रहा हो। वह उसकी गुनहगार जैसी नजर देखते। थोड़ी बात करने के बाद वह छठा हिस्सा देता और चला जाता। एक आध अपवाद छोड़कर इस तरह जितने लोग आये, सभी दानपत्र दुरुस्त करके ही गये। यह आन्दोलन हमने मुजफ्फरपुर में शुरू किया और जारी रखा। मुझे हक क्या था दानपत्र वापस करने का? माने यही होगा कि लोग मेरा प्रेम का हक मान ही लेंगे। बाबा छठा हिस्सा माँगता है, तो लोग उसे मान लेंगे। पर उन लोगों पर इसका बहुत असर हुआ, यह कोई छोटी बात नहीं है।

कलियुग में सत्ययुग

एक जगह तो यहाँ तक हुआ कि एक आदमी ने छठा हिस्सा जमीन दी। मैंने कहा, 'सब अच्छी ही दीजियेगा।' इस पर वह कहने लगा, 'मैंने आपको भाई मानकर हिस्सा दिया है, केवल अच्छी जमीन किससे माँगते हैं।' मानो भाई-भाई बात करते हों! मैंने कहा, 'ठीक है, दोनों में से हम हिस्सा ले लेंगे। लेकिन एक बात करनी होगी। जिस भाई को आप दे रहे हैं, उसके पास कोई साधन नहीं है। इसलिए उसके खड़े होने का इंतजाम भी आपको करना होगा। जो खराब जमीन होगी, उसे तोड़कर दें।' उसने तत्काल मंजूर कर लिया। यह संवाद, जो हम आपको सुना रहे हैं, कलियुग में हुआ संवाद है, सत्ययुग का नहीं है। अपने प्रति इतने अधिक सद्भाव से अगर हम लाभ न उठा सके, तो हतभागी ही कहलायेंगे।

ईश्वर इसके पीछे है

किसी भाई ने एक अखबार में देखा कि बाबा को कितनी जमीन उस बाढ़-ग्रस्त पड़ाव पर मिली, तो लिखा कि 'कहीं, कुछ।' लेकिन किस हालत में यह हुआ? वास्तव में यही देखकर आश्चर्य होता है कि वहाँ लोगों ने दिया ही कैसे। वे खुद दान के पात्र थे, दाता की स्थिति में नहीं थे। हमने उन्हें यही समझाया कि ऐसे संकट के समय पर धर्म-भावना दृढ़ होनी चाहिए। दानपत्र की कोई कीमत नहीं, पर वहाँ जो सद्भावना देखी, उसीसे निश्चय हो गया कि ईश्वर हमारे पीछे है। हम अक्सर यही कहते भी हैं। एक भाई ने लिखा है कि 'विनोबा ईश्वर को चार हाथ दूर ही रखे और आर्थिक बातें करे तो बेहतर हो।' हम कहते हैं कि जो ईश्वर को वैकुंठवासी मानते हैं, उन्होंने तो उसे चार हाथ ही नहीं, दुनिया के बाहर रख छोड़ा है। लेकिन जो घट-घट व्यापी है, उसे दूर कैसे रखा जा सकता है। मुझे तो दृढ़ निश्चय होता जा रहा है कि इसके पीछे ईश्वर है और अगर है, तो मुझे कोई चिंता न होनी चाहिए। वास्तव में वह होती भी नहीं, रात को गाढ़ निद्रा आती है, मुश्किल से कभी स्वप्न आते हैं। यह भी सबूत है कि इसके पीछे ईश्वर है, इसलिए आपको केवल ईश्वर के हाथ का औजार बन जाना है। भगवान् का नाम लेकर उठ खड़ा हो जाना है। निमित्तमात्र बनना और कुछ नहीं करना है। बहुत बातें चलती हैं कि आन्दोलन में गति कैसे आये, आदि-आदि। हम भी मनुष्य हैं, सोचना ही पड़ता है। हम मानते हैं कि अगर हम न कर सके, तो नालायक साबित होंगे। लेकिन आन्दोलन सफल जरूर होगा। ईश्वर हमसे नहीं, तो दूसरों से यह काम जरूर करायेगा। केवल हमें निमित्त होना है। वैद्यनाथ बाबू की मिसाल सामने है कि सारा समय वे इसीमें देते हैं। हमें आशा है कि हमारा कोटा पूरा होगा और पूर्णियाँ का नाम पूर्ण सिद्ध होगा।

इसलामपुर (पूर्णियाँ)
२-११-'५४

पहला पूँजीवादी, अपना शरीर

एक बार हमारे एक साथी ने कहा कि 'बाबा का काम पूँजीवाद से लड़ने का मोर्चा है, पूँजीवाद से उनकी दुश्मनी है।' बात ठीक है। लेकिन पहला पूँजीवादी दुश्मन तो अपना शरीर ही है, जो पूँजीवादी व्यवस्था में पला है। शरीर को कुछ आदतें पड़ गयी हैं, उन्हें छोड़ना और अपने हाथों काम करना होगा। पहला मोर्चा अपने घर में ही है। उसे फतह करके ही पूँजीवाद खतम किया जा सकता है। पूँजीवाद अनेक तरह का होता है। पूँजीवाद का अर्थ है, पूँजी बनाना। यह काम विकेन्द्रित रूप से नहीं, केन्द्रित ढंग से किया जाता है।

आजकल अपने को 'कम्युनिस्ट' कहलानेवाले भी भलीभाँति पूँजीवादी हैं। वे उत्पादन में पूँजीवाद और बँटवारे में समता चाहते हैं। ऐसे मोह में पड़े हैं कि उत्पादन केन्द्रित हो और बँटवारा समाज करे। वास्तव में वे पूँजीवाद के बेटे हैं, उन्हींके प्रतिक्रियास्वरूप हैं। वे स्वतन्त्र विचार के नहीं हैं। जीवन का उनका स्वतन्त्र दर्शन नहीं है। पूँजीवाद से यूरोप में जो बुराइयाँ हुईं, उनके प्रतिक्रियास्वरूप ही साम्यवाद पैदा हुआ। वह 'सिनथेसिस' नहीं, पूँजीवाद के 'थीसिस' के खिलाफ 'एण्टीथीसिस' है। सिनथेसिस तो वह होगा, जिसमें जीवन-तत्त्व पूरा हो। इसलिए इसने उत्पादन के लिए पूँजीवाद को कबूल कर लिया। लेकिन हमारा काम तो प्रतिक्रियात्मक विचार से न चलेगा। हमें तो जीवन की बुनियाद बनानी होगी और उसीके आधार पर सारा समाज खड़ा करना होगा।

चितरा
१५-१२-'५४

भारत को ईसामसीह कबूल है

आज का दिन बड़ा ही पवित्र दिन है। आज सारी दुनिया में महात्मा ईसा का स्मरण-दिन मनाया जाता है। यों तो ईश्वरीय सृष्टि के सभी दिन शुभ होते हैं। सूर्यनारायण उगते हैं, तो शुभ-दिन ही लाते हैं। मानव के व्यक्तिगत जीवन में देखा जाय, तो वह दिन शुभ माना जाता है, जिस दिन उसे कोई शुभ संकल्प सूझे, जिस दिन वह कोई शुभ आचरण या शुभ चिन्तन करे। पर समाज-जीवन में इन व्यक्तिगत शुभ संकल्पों और परमेश्वर के नित्य प्रकाशमय दिनों के अलावा और भी कुछ दिन विशेष शुभ और पवित्र माने जाते हैं, जब मानव को उसकी उच्चता का कुछ दर्शन हुआ हो। इसलिए महापुरुषों की स्मृति में दुनियाभर में लोग थोड़े समय के लिए ही क्यों न हो, अपने साधारण स्तर से ऊँचा उठने की कोशिश करते हैं, कुछ आत्मचिन्तन और कुछ पूजा-पाठ आदि भी करते हैं। इस तरह का रिवाज सभी देशों, सभी धर्मों और सभी समाजों में मौजूद है।

ईसा का पवित्र स्मृति-दिन

इन दिनों हमने धर्मों में भी भेद-भाव पैदा कर दिया है। समाज-समाज एक-दूसरे से लड़ते हैं। देश-देश के बीच दुश्मनी चलती है। लेकिन इन सबकी तुच्छता दिखलानेवाले कुछ महात्मा भी सारी दुनिया में हो गये हैं, जो किसी देश, पंथ, सम्प्रदाय या समाज-विशेष के नहीं कहलाते। ऐसे सत्पुरुषों में महात्मा ईसा भी गिने जाते हैं। वे अपने को 'मानव-पुत्र' कहते थे। मानव-पुत्र का मतलब यह कि वे कोई संकुचित उपाधि, पदवी या दर्जा कबूल करने को तैयार नहीं, बल्कि अपने को सारे मानव-समाज का प्रतिनिधि समझते थे। वे मानव के बल और उसकी दुर्बलता के प्रतिनिधि थे। इसलिए महात्मा ईसा ने सारी मानव-जाति की शुद्धि के लिए बड़ा भारी प्रायश्चित्त कर दिया। उनका स्मरण जहाँ-जहाँ ईसाई-धर्म प्रचलित है, वहाँ तो होता ही है, पर दुनिया के दूसरे हिस्सों में भी यह स्मरण पवित्र माना जाता है।

ईसामसीह भारत को कबूल

भारत-भूमि के लिए तो यह विशेष पवित्र दिन माना जाता है। सब लोग नहीं जानते कि ईसामसीह के कुछ ही दिनों बाद मलाबार के किनारे ईसाई-मिशन आया था। तभी से ईसाई-धर्म के अनुयायी इस भूमि पर हैं। दुर्दैव की बात है कि ईसाई-धर्म के साथ अंग्रेजी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि राज्यों की राजनीति जुड़ गयी। इस कारण कई बेजा काम भी यहाँ हुए और उसके परिणामस्वरूप यहाँ जितनी प्रतिष्ठा ईसाई-धर्म की होनी चाहिए, नहीं हुई। सच तो यह है कि एक प्रकार की प्रतिक्रिया ही हुई। इसके साथ अंग्रेजी शासन के जुड़ जाने से ईसाई-धर्म के लिए मिथ्या भावना ही चली, पूर्व-ग्रह बना; यह बड़े दुःख की बात है। किन्तु यह बात अब मिट रही है और बहुत-कुछ मिटी भी है। अब यह तैयारी हो रही है कि हिन्दुस्तान यह महसूस करे कि ईसाई-धर्म भी हिन्दुस्तान का एक धर्म है।

मेरे ईसाई मित्र कहते हैं कि 'सारा हिंदुस्तान ईसामसीह को कबूल करे।' मैं सारे देश की तरफ से जाहिर करना चाहता हूँ कि ईसामसीह सारे भारत को कबूल है, हम उनके संदेश को शिरोधार्य मानते हैं। उसे हम पूरी तरह से अमल करने के लिए उत्सुक हैं। उन्हें हम अपने ही परिवार का समझते हैं। हमारा दावा है, जिसमें कोई अभिमान की नहीं, नम्रता की ही बात है कि ईसामसीह की तालीम का जितने व्यापक प्रमाण में सामूहिक प्रयोग महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत ने किया, उतना और कहीं हुआ हो, यह हम नहीं जानते। इस बात का हमें अभिमान नहीं, बल्कि नम्रता से कहते हैं कि महात्मा ईसा का संदेश शिरोधार्य करने की बुद्धि परमेश्वर ने हमें दी, जिससे हमारा भला ही हुआ। हम कहते हैं कि आज का पवित्र दिन हिन्दुस्तान और दुनिया के लिए अन्तःपरीक्षण का दिन होना चाहिए।

विज्ञान से मानव ईसा की तालीम मानेगा

आज सारी दुनिया में कशमकश चल रही है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि जिन देशों ने ज्यादा-से-ज्यादा पैमाने पर एक-दूसरे के खिलाफ हिंसा का

आयोजन किया, वे भगवान् ईसा के अनुयायी ही कहलाये। हम समझते हैं कि यह बहुत ज्यादा दिन न चलेगा और ईसा की यह भविष्यवाणी कि 'आसमान में आबाद प्रभु का राज्य जमीन पर भी आबाद होगा', शीघ्र ही सफल होगी। शस्त्रास्त्र बढ़ाने में ही अपनी और दुनिया की रक्षा समझनेवाले देश ईसा की तालीम से नहीं, वरन् विज्ञान के कारण यह बात समझ जायँगे।

विज्ञान के इस जमाने में यह बात ज्यादा दिन चल नहीं सकती कि हम शस्त्रास्त्र बढ़ाते चले जायँ और 'बैलेंस ऑफ पावर' (शक्ति का संतुलन) कायम रखकर शान्ति की कोशिश करें। शान्ति का यह अशान्त उपाय ज्यादा दिन न चलेगा। विज्ञान औजारों को सीमित न रहने देगा। वह मनुष्य के लिए सोचने का मौका ला देगा। बाइबिल पढ़कर जो काम नहीं हुआ, अनेक धर्मोपदेशकों के रविवार के व्याख्यान सुनकर जो काम न हुआ, वह विज्ञान-युग कर ही देगा। मनुष्य को बुद्धि आयेगी कि आखिर हिंसक शस्त्र के परित्याग में ही मानवता और मानव-समाज का विकास है। ये दोनों बातें विज्ञान कर दिखायेगा। शरीर की रक्षा और आत्मा का विकास, दोनों बातें एक ही बात से सधेंगी। जब मानव शस्त्रास्त्रों का परित्याग कर परस्पर प्रेम और सहयोग से दूसरों के लिए जीना सीखेगा, देने में ही सुख अनुभव करेगा, तब उसका बेड़ा पार हो जायगा—यह विज्ञान से प्रत्यक्ष सिद्ध होकर रहेगा।

अभिक्रम दूसरों के हाथ में न दिया जाय

ईसामसीह ने कहा है कि अपने से प्यार करनेवाले पर अगर हम प्यार करें, तो कौन बड़ी बात है? यह तो जानवर भी करते हैं, इसमें कौन-सी मानवता है? जो हमसे प्यार करेगा, उससे हम प्यार करेंगे और जो हमसे द्वेष करेगा, उससे द्वेष करेंगे, तो इसके माने यह हुए कि हम क्या बनेंगे, यह हमने सामने-वाले के हाथ में रख दिया। इसे 'अभिक्रम' कहते हैं। यह 'अभिक्रम' शब्द, जिसे अंग्रेजी में 'इनीशियेटिव' कहते हैं, मैंने गीता से लिया है। अमेरिका से मदद लेकर पाकिस्तान फौजी ताकत बढ़ा रहा है। पर शांति, अहिंसा और शस्त्र-त्याग

चाहनेवाले हमें (भारत को) भी शस्त्र-शक्ति बढ़ाने की सूझे, तो वह ठीक नहीं। परमेश्वर की कृपा है कि पंडित नेहरू के नेतृत्व में हमें ऐसी दुर्बुद्धि नहीं हो रही है। पर मान लीजिये कि वह हुई और लाचार होकर हमने भी वैसा ही किया, तो इसका मतलब यह होगा कि हिंदुस्तान को कैसा रूप दिया जाय, यह हमने पाकिस्तान के हाथ में सौंप दिया। यह मिसाल मैंने सहज ही दी। आज हर देश दूसरे के शस्त्रास्त्र देखकर अपने शस्त्रास्त्र बढ़ाने की कोशिश कर रहा है। जिसका डर हम रखते हैं, वह हमसे भी डर रख रहा है। इस तरह हम एक-दूसरे से डरते हैं। लाचारी महसूस कर उल्टी दिशा में जा रहे हैं और मजा यह कि उस ओर जाना उचित नहीं, यह कबूल भी करते हैं।

अहिंसा परम ही नहीं, निकट धर्म

महात्मा गांधी जब परलोक सिधारे, तो दुनियाभर के लोगों ने—बड़ों ने और साधारण मनुष्यों ने भी—समवेदना प्रकट की। उसमें वह प्रसिद्ध सेनापति मैकआर्थर भी था, जिसने दुनिया पर सितम गुजारा था, अधिक-से-अधिक हिंसा-शक्ति को बढ़ावा दिया था। उसने कहा कि 'अगर हम लोगों को मानवता की रक्षा करनी है, तो कभी-न-कभी सुलह और प्यार से मानवता की रक्षा करने की बात सोचनी ही होगी।' यह कबूल करने पर भी बहुत-से लोग ऐसा महसूस करते हैं कि वह चीज आज करने की नहीं है। **'अहिंसा परमो धर्मः'** यह सभी महसूस करते हैं। पर वह निकट धर्म है, यह महसूस नहीं करते।

आज हिंसा से बचाव करनेवाले भी कहते हैं कि 'हम हिंसा के लिए हिंसा नहीं चाहते। हिंसा के लिए हिंसा करना शैतान का ही लक्षण है। मानव-समाज में ऐसा कोई नहीं, जिसे हिंसा के लिए हिंसा प्यारी हो। पर लाचारी से वह करनी पड़ती है, क्योंकि सामनेवाला जब हिंसा-बल बढ़ाता है, तो हम क्या करें?' किन्तु इस लाचारी और पुरुषार्थहीनता को मैं 'निर्वीर्यता' ही कहूँगा। यह महात्मा ईसा को सहन नहीं हो सकती। वे महावीर पुरुष थे, उन्हें डर मालूम ही नहीं था। वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे और प्राणिमात्र पर उनका प्रेम था। उन्होंने जाहिर कर दिया था कि 'जो हमसे द्वेष करेगा, उसे भी हम प्यार से जीत लेंगे।' कितनी

बड़ी ताकत की चीज है यह ! कोई भी कमजोर आदमी न तो इस तरह बोल सकता है और न सोच ही सकता है। बलवान् ही ऐसा कर सकता है। आज अगर हम ठीक से सोचें, तो मालूम होगा कि विज्ञान के इस जमाने में बुद्धि कह रही है कि हिंसा द्वारा समाज के मसले हल करने की बात निरी मूर्खता है। इसलिए ईसामसीह का । देश अमल में लाने का मौका दुनिया के लिए शीघ्र आयेगा और यह काम विज्ञान करेगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

ईसाई और मुसलमान ब्रह्मविद्या कबूल करें

यह भरत-भूमि का अहोभाग्य है कि यहाँ दुनियाभर की सब जातियाँ और सब लोग प्रेम से रहते आये हैं। यहाँ के लोग विचार और चिंतन में भेदभाव नहीं करते। यहाँ की जनता को 'राष्ट्रवाद' भी मुश्किल से कबूल होता है। हाँ, 'अंतर्राष्ट्रवाद' समझना आसान है। अगर यहाँ के किसी आदमी को समझाया जाय कि तुम 'बिहारी हो, बिहार का अभिमान रखो; बाहरवालों के साथ दूसरा व्यवहार करो, थोड़ा-थोड़ा फर्क रखो', तो वह यहाँ के किसान की भी समझ में न आयेगा। किन्तु यह बात कि 'प्राणिमात्र पर प्रेम करो, सिर्फ मानव पर ही नहीं, सब पर प्रेम रखना धर्म है', वह तत्काल समझ लेगा। इसलिए मैं आशा रखता हूँ कि भारत ने तो ईसामसीह को कबूल कर ही लिया। अब अगर हमारे ईसाई भाई यहाँ की पृष्ठभूमि कबूल कर लें, तो न केवल ईसाई-धर्म को ही परिपूर्णता प्राप्त होगी, बल्कि हिन्दू-धर्म और इसलाम-धर्म भी परिपूर्ण होगा। इससे सभी धर्मों को परिपूर्णता प्राप्त होगी और सब धर्मों का सुन्दर संगम हो जायगा। इसलिए यहाँ के मुसलमान और ईसाई, जिनकी परंपरा भारत के बाहर की है, भारत को अपने धर्म और अपने जीवन का अंग समझें। मेरे कहने का मतलब यह है कि वे पड़ोसी पर प्यार करें, दुश्मन पर प्यार करें। क्यों ? इसका उत्तर हिंदुस्तान की ब्रह्मविद्या ही देती है। उस ब्रह्मविद्या को यहाँ के ईसाई और मुसलमान कबूल करें, तो वे जो चाहते हैं, उसे बल मिलेगा। जो प्रचार वे चाहते हैं, वह सहज ही हो जायगा।

इसलाम में एक प्रकार का भाईचारा है, यह सबको कबूल है। सेवामय

काम करने की प्रवृत्ति ईसाई-धर्म की विशेषता है, यह भी सभी मानते हैं। ये दोनों चीजें हम हजम करना चाहते हैं। भारत के हिन्दू के नाते मैं कहना चाहता हूँ कि इसलाम और ईसाई-धर्म मुझे कबूल हैं। लेकिन उन्हें कबूल करने से मेरा हिंदुत्व नहीं मिटता, बल्कि वह खिलता और प्रकाशित होता है। कारण इसलाम-धर्म के भाईचारे और ईसाई-धर्म की सेवा-वृत्ति से यहाँ पर निर्मित ब्रह्मविद्या बहुत मजबूत चीज बन जाती है, यहाँ का एक विशेष ईसाई-धर्म होगा, एक विशेष इसलाम-धर्म होगा। भारत-भूमि के रंग से उसमें एक विशेष बल मिलेगा, उसकी प्रभा विशेष आकर्षक होगी।

सब धर्म शाकाहार मानें

मेरा यह भी मानना है कि अब समाज को इस ओर बढ़ना होगा कि हम अपने जीवन के लिए किसी पशु की हत्या न करेंगे, पशु को अपना भक्ष्य न समझेंगे। अगर हम उनकी रक्षा नहीं कर सकते, तो कम-से-कम उन्हें भक्ष्य तो नहीं ही बनायेंगे। यह भारत का विशेष संदेश है, जो यहाँ की ब्रह्मविद्या से निकला है। इसीलिए यहाँ के जितने धर्म हैं, सब इस बात पर पहुँचे कि मानव के लिए सबसे उत्तम आहार फलाहार, शाकाहार है। मैं जानता हूँ कि आज दुनिया में इतना अन्न नहीं है, अन्न की काफी कमी है; पर मानवता के विकास, मानव की परिपूर्णता और सर्वधर्म की एकरसता के लिए यह जरूरी है कि मानव मांसाहारी न रहे। इस पर आज ज्यादा नहीं कहूँगा। आज यह बात इसलिए कह दी कि ईसाई-धर्म भारत को मंजूर है, तो ईसाई-धर्म भी भारतत्व मंजूर करे। दोनों मिलकर ऐसी परिपूर्णता आयेगी, जिसमें मानवता का सर्वांगीण दर्शन होगा।

मालकियत मानना नास्तिकता

मैंने एक दावा किया कि ईसाई-धर्म पर अमल करने का भाग्य हिन्दुस्तान को हासिल है। दूसरा नम्र दावा यह है: मेरी आत्मा कहती है कि इस भूदान-यज्ञ में मुझे सदा ईसामसीह का आशीर्वाद प्राप्त है। बुद्ध-भूमि गया में भी मैंने कहा था कि 'बुद्ध भगवान् का आशीर्वाद मुझे प्राप्त है।' आखिर ईसामसीह ने भी यही सिखाया कि हमें पड़ोसी के जीवन से अपने जीवन को अलग मानना

और उसकी चिंता को अपनी चिंता न समझना भी कोई मानवता नहीं। इसीलिए हम आज भूमि और सम्पत्ति पर चलनेवाली मालकियत को मिटाना चाहते हैं। इस तरह की मालकियत का दावा करना अभक्ति, अश्रद्धा और नास्तिकता का लक्षण है। 'ईश्वर' शब्द का अर्थ ही है प्रभु, मालिक या स्वामी। इसलाम में उसे 'मालिक' कहा गया है, ईसाई-धर्म ने 'गॉड' कहा है और हम 'प्रभु' कहते हैं। तीनों का एक ही अर्थ है कि वही स्वामी है। फिर अगर हम मालकियत का दावा करते हैं, तो 'कुफ्र' करते हैं, नास्तिक बन जाते हैं।

अब यह बात न चलेगी। मालकियत हाथ में रखकर दूसरों पर थोड़ी दया करने या थोड़ा प्यार करने भर से विज्ञान के इस युग में काम न चलेगा। अब तो पूरा ही प्रेम करना होगा। नानक कहता है :

पूरा प्रभु आराधिआ, पूरा जाका नाउ।
नानक पूरा पाइआ, पूरे के गुन गाउ॥

अधूरा प्रेम कबूल न होगा, यह कबीर ने भी कहा है :

कहे कबीर मैं पूरा पाया, सब घर साहिब दीठा।

यहाँ कबीर ने 'साहिब' शब्द का प्रयोग किया है। उसने ईश्वर, प्रभु, गॉड या मालिक को याद किया है। उसे पूरा दर्शन हो गया था। हमें भी अगर पूरा दर्शन होगा, तो हम पूरा प्रेम कर सकेंगे। विज्ञान के युग में अधूरा दर्शन न चलेगा। कुछ लोग कहते हैं कि 'विज्ञान का युग अश्रद्धा लायेगा।' किन्तु मेरा इससे उल्टा मानना है। विज्ञान से तो सच्ची श्रद्धा पूरी होगी, अधूरा भक्ति-मार्ग पूरा होगा। यह तभी होगा, जब हम अपनी मालकियत मिटाकर सामूहिक मालकियत मान लेंगे। आज का 'कम्युनिस्ट' शब्द ईसा के अनुयायियों से ही आया है। वे अपना 'कम्युन' बनाते थे, याने मिलकर एक साथ रहते थे। व्यक्तिगत मालकियत न रखते थे। यह बात केवल ईसा के अनुयायियों में ही नहीं, हिन्दुस्तान में भी मानी जाती है। भारत-भूमि का भी यही दावा है।

एक तमिल भक्त की कहानी है। वह छोटी-सी कोठरी में रहता था, जो बहुत ही तंग थी। बाहर बारिश हो रही थी। कोई आया और दरवाजा खटखटाने लगा। पूछा : 'क्या जगह दे सकते हैं?' उसने कहा : 'आइये, यहाँ एक आदमी

सो सकता है, पर दो बैठ सकते हैं।' दोनों बैठ गये। थोड़ी देर में तीसरा आया। बारिश हो ही रही थी। भक्त ने कहा : 'आइये, यहाँ एक सो सकता है, दो बैठ सकते हैं और तीन खड़े हो सकते हैं।' उसने उसे भी अन्दर ले लिया और तीनों खड़े रह गये। ऐसी हजारों कहानियाँ हिन्दुस्तान में सुनी जाती हैं।

भाग्यवान् भरत-भूमि

परमेश्वर का महान् उपकार है कि इस भरत-भूमि पर असंख्य सत्पुरुषों की अखण्ड वर्षा हुई है। उससे यह भूमि पवित्र हुई है। जिस जमाने में हिन्दुस्तान बिलकुल नीचे गिरा हुआ था—पराधीनता के कारण जो निकृष्ट-काल माना जायगा और जब यहाँ अंग्रेजी-राज्य था—उस निकृष्ट-काल में भी असंख्य सत्पुरुष इस पुण्यभूमि ने पैदा किये। ऐसे सत्पुरुषों को पैदा किया, जिनका संदेश सारी दुनिया को कबूल करना पड़ा। परमेश्वर की यह भी बड़ी कृपा है कि हिन्दुस्तान में इसलाम, ईसाई और पारसी-धर्म भी आया। इसी तरह यहाँ के बुद्ध-धर्म का विचार दूसरे देशों में फैला। बुद्ध-धर्म के प्रचारक हाथ में तलवार लेकर नहीं निकले। राज्य-सत्ता चलाने की बात उन्होंने नहीं की, केवल ज्ञान की ही बातें कहीं। बड़े भाग्य की बात है कि हिन्दुस्तान के कुल इतिहास में—जो छोटा नहीं, पाँच हजार साल का तो ज्ञात इतिहास है—उसने बाहर के किसी देश पर आक्रमण किया, ऐसा कहीं नहीं मिलता। ऐसे देश के लिए ईसामसीह का संदेश उसकी बपौती मानी जायगी।

हम यह कोई आश्चर्य की बात नहीं मानते कि ईसा का अहिंसा का यह विचार यहाँ इतना फैला। जहाँ के लोग ईश्वर की भक्ति में रमे हों—हिन्दुस्तान में कहीं भी जाइये, ईश्वर के नाम पर लोग मुग्ध दीखेंगे—वहाँ ईसामसीह का स्वीकार होना कोई नयी बात नहीं। यह जरूर है कि हमारे आचरण में गलती हुई। हम उस प्रभु से क्षमा माँगते हैं...(बाबा कुछ देर तक के लिए शान्त रहे)...वह हमें अवश्य क्षमा करेगा, जब कि ईसामसीह ने भी उस शख्स पर क्षमा कर दी, जिसने उसे शूली पर चढ़ाया......प्रभु अत्यन्त क्षमाशील है......(बाबा का गला भर आया और वे एक मिनट शान्त रहे)......वह हमें क्षमा क्यों न करेगा ? हम नहीं कहते कि हम पुण्यवान् हैं, हम अत्यन्त पापी हैं। फिर भी यह

शुद्ध विचार, ईसा का यह संदेश हमें सहज ग्राह्य है। ईसा का जन्म गोशाला में हुआ था। हमारी भाषा में 'ह्यूमैनिटी' का तर्जुमा करना मुश्किल होता है। इसलिए नहीं कि कोई शब्द नहीं मिलता, बल्कि इसलिए कि 'ह्यूमैनिटी' शब्द में छोटा विचार है। यहाँ इसके बदले 'भूतदया' शब्द चलता है। भूतदया में मानव-दया आ ही जाती है। इसलिए हमारा हृदय ईसामसीह के सन्देश के लिए खुला है......(बाबा का गला रुँध गया और वे शान्त रहे)...और आज के पवित्र दिन हम उनका पुण्य-स्मरण करते हैं।

मानव-पुत्र ईसा की राह पर

मुझे इस बात की खुशी है कि मलाबार के ईसाई-चर्चों में सबने जाहिर कर दिया है कि 'भूदान-यज्ञ का कार्य ईसामसीह की राह पर चल रहा है। इसलिए सबको इस पर चलना चाहिए।' उन्होंने यह बात ठीक ही कही। हमारा दावा है कि इस यज्ञ के जरिये ईसामसीह का पैगाम घर-घर फैलेगा। ईसामसीह का कहना था कि 'नाम में सार नहीं।' कोई हिन्दू कहलाये, कोई मुसलमान, कोई ईसाई, इसमें क्या रखा है? इसलाम के माने हैं, शान्ति। इसलाम ने चाँद को आदर्श माना है। जिस मनुष्य के आचरण में दया न हो, शान्ति न हो, उसे मुसलमान कैसे कहा जायगा? जिसके आचरण में दया हो, चाहे वह मुसलमान न हो, उसे मुसलमान कैसे न कहा जायगा? इसीलिए ईसा-मसीह ने कहा था : 'जो किसी भूखे को खिलाता है, वह ईश्वर को खिलाता है; जो किसी प्यासे को पानी पिलाता है, ईश्वर को पिलाता है; जो किसी ठण्ड में ठिठुरनेवाले को कपड़ा पहनाता है, वह प्रभु को पहनाता है।' वे धर्म, पन्थ, संप्रदाय आदि जानते ही नहीं थे। जैसा मैंने शुरू में कहा कि वे मानव-पुत्र थे, हमने भी मानव-पुत्र के नाते ही यह काम शुरू किया है। इसीसे सारी मानवता प्रफुल्लित होगी। आज अब ज्यादा कहने की जरूरत नहीं और न हमारी योग्यता ही है। प्रभु से यही प्रार्थना है कि हमारी वाणी में करुणा, दया और प्रेम भर दे, तो उसका यह काम सम्पन्न हो जायगा।

राजगंज
२५-१२-'५४

हमारा यह देश बहुत बड़ा है। यहाँ के किसी भी लड़के से पूछा जाय कि तुम कितने भाई हो, तुम्हारे देशवासी कितने हैं, तो वह छत्तीस करोड़ का आँकड़ा सुनायेगा। सिवा चीन के किसी भी देश के नागरिक की जबान पर इतना बड़ा आँकड़ा न होगा। यूरोप के लोगों से पूछा जाय, तो कोई कहेगा एक करोड़, कोई कहेगा दो करोड़, तो कोई कहेगा चार करोड़। इस तरह छोटे-छोटे आँकड़े वहाँ सुनाये जायँगे। पर हम तो इतने भाई हैं, इतना विशाल हमारा वैभव है। यह सब क्या है? हमें इस पर सोचना चाहिए। यह इसलिए है कि जिस तरह असंख्य नदियाँ समुद्र में जातीं और समुद्र सब नदियों को उदार आश्रय देता है, किसीको भी इनकार नहीं करता, उसी तरह भरत-भूमि ने दुनिया की सब जातियों का प्रेम से स्वागत किया और सबको आश्रय दिया।

मैं एक मिसाल देता हूँ। पारसी लोग ईरान से आश्रय के लिए यहाँ आये। यहाँ के सहृदय लोगों ने उन्हें आश्रय दिया। उनके जो रीति-रिवाज थे, उनके अनुसार वे अपनी उपासना करते थे, अपना भक्ति-मार्ग चलाते थे। उसमें हमने कोई बाधा नहीं पहुँचायी। आज भी पारसी जाति इस देश को अपना देश समझती और यहाँ अपने को सुरक्षित पाती है।

मैं एक मजेदार बात सुनाऊँगा। यहाँ जो पारसी आये, वे देवों की निंदा और असुरों की प्रशंसा करते हुए आये। फिर भी यहाँ के लोगों ने कोई गलतफहमी नहीं होने दी। यहाँ तो देवों की स्तुति और असुरों की निंदा की जाती है। पर पारसियों में असुरों की स्तुति और देवों की निंदा की जाती है। उनकी भाषा में 'असुर' का अर्थ ही 'भगवान्' है। शब्द उल्टा पड़ता है, पर अर्थ वही है। भगवान् को वे बड़ा भारी असुर 'अहुर-मज्द' कहते हैं और देवों को कहते हैं, 'भूत या पिशाच', जो भ्रान्त-मनुष्यों को तकलीफ दिया करते हैं। ऐसे देवों की उन्होंने निंदा की है। किन्तु यहाँ के लोगों ने अर्थ ग्रहण कर शब्दों को सह

लिया, यह बहुत बड़ी बात है। पारसी जाति यहाँ आक्रमणकारी बनकर नहीं आयी। वे जब यहाँ आये, तो उनके पास कोई ताकत नहीं थी, जिसके बल पर वे आश्रय माँग सकते। फिर भी वे आश्रय के लिए यहाँ आये और यहाँ के लोगों ने उन्हें आश्रय दिया। भारत ने उनके भरण-पोषण का जिम्मा उठा लिया। सारांश, यहाँ की जनता तो यहाँ के ज्ञानियों के विचारों पर ही चलती थी, इसीलिए हमारा विकास हुआ।

महा-मानवों का समुद्र : भारत

आजकल यहाँ कई 'वाद' चलते हैं। वाद तो कई प्रकार के हो सकते हैं। 'बिहार-बंगाल' का वाद चल रहा है। फिर भी बिहारवाले यह माँग नहीं करते कि हम अपना राष्ट्र बनाना और भारत से अलग होना चाहते हैं और न बंगालवाले ही यह माँग करते हैं कि हम अपना अलग राष्ट्र बनाना चाहते हैं। हम सब भारतीय हैं, भारतवासी हैं और एक राज्य में रहना चाहते हैं। ये जो दूसरे विवाद चलते हैं, वे मामूली फुटकर वाद हैं। उनके पीछे अभिमान की वृत्ति नहीं है। यद्यपि आजकल कुछ अभिमान और कटुता भी पैदा की गयी है, फिर भी यहाँ इनमें अभिमान की वह वृत्ति नहीं है, जो यूरोप के देशों में पायी जाती है। फ्रांस और जर्मनी के बीच कोई ऐसा पहाड़ नहीं, जो दोनों को अलग करे। फिर भी उन्हें वैसे पहाड़ की आवश्यकता महसूस होती है। दोनों देश बिलकुल नजदीक रहनेवाले हैं। उनकी लिपि और धर्म एक हैं, भाषाएँ भी काफी मिलती-जुलती हैं। उनके बीच शादियाँ भी हो सकती हैं। किन्तु फ्रांसीसियों ने तय किया कि हमारा एक छोटा-सा अलग देश है और जर्मनों ने तय किया कि हमारा जर्मनी एक अलग छोटा-सा देश है। फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैण्ड के बीच जो लड़ाइयाँ हुईं, वे राष्ट्रीय लड़ाइयाँ मानी जाती हैं, 'सिविल-वार' या आपसी लड़ाइयाँ नहीं। लेकिन हिन्दुस्तान में जो लड़ाइयाँ हुईं—मराठों की उड़ीसावालों के साथ या रजपूतों के साथ—वे 'सिविल-वार' (आपसी लड़ाइयाँ) मानी जाती हैं। यह कुछ अभिमान की ही चीज है कि यहाँ जो लड़ाइयाँ हुईं, वे आपसी लड़ाइयाँ मानी गयीं। बाहरवालों ने इन्हें आपसी लड़ाइयाँ ही माना और यहाँवालों ने भी।

हिन्दुस्तान रूस को छोड़कर यूरोप के बराबर बड़ा देश है। यहाँ यूरोप से कुछ कम विविधता नहीं। कई भाषाएँ हैं, जैसे कि यूरोप में हैं। इतना ही नहीं, वहाँ तो एक ही लिपि है, पर यहाँ अनेक लिपियाँ हैं और वहाँ एक ही धर्म है, पर यहाँ अनेक धर्म। इतना अधिक अन्तर होते हुए भी हम अपने को एक देश के निवासी मानते हैं और वहाँ के लोग अपने को एक खण्ड के निवासी। वहाँ के कुछ देश तो हमारे प्रांतों के एक हिस्से के जितने छोटे हैं, फिर भी वे अपने को अलग राष्ट्र मानते हैं; क्योंकि हरएक की अपनी एक अलग भाषा है। हिंदुस्तान में वैसी बात नहीं सुनी जाती। यहाँ के समाज-शास्त्र में एक व्यापक बुद्धि है। इसीलिए रवीन्द्रनाथ ने गाया है कि यह 'महा-मानवों का समुद्र' है। इसमें अनेक लोग आये और अब भी आयेंगे। हमारे देश में विविधता होते हुए भी एकता है।

एकता अंग्रेजों की बदौलत नहीं

यह एकता अंग्रेजों ने नहीं बनायी है, जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं। अंग्रेज तो चाहते थे कि देश के अधिक-से-अधिक टुकड़े हो जायँ और उन्होंने वैसी कोशिश भी की। वे लंका को अलग कर सके, तो कर ही दिया। ब्रह्मदेश को अलग कर सके, तो अलग कर ही दिया। हमने भी इसका कोई विरोध नहीं किया, क्योंकि हम मानते थे कि अपने निकट के देश अगर अलग रहना चाहते हैं, तो रहने दो। वास्तव में अंग्रेजों ने तो और भी भेद बढ़ाये। जैसे, हिन्दू-मुसलमानों के। पहले से कुछ भेद तो था ही, पर इन्होंने इसे बढ़ाया और उसके परिणाम-स्वरूप हिन्दुस्तान के दो हिस्से बने। यह तो यहाँ की सभ्यता है, जिसके कारण हमने इसे एक देश माना है। पर अंग्रेजों ने तो हिंदुस्तान और पाकिस्तान दो बना दिये।

कुछ लोगों का यह भी खयाल है कि अंग्रेजों के कारण यहाँ अंग्रेजी भाषा चली और हिंदुस्तान के सभी प्रान्तों के लोगों ने उसे सीख लिया, जिससे वे एक-दूसरे के साथ बातचीत कर सकें और इसीसे एकता पैदा हुई। किन्तु यह विचार भी गलत है। हम तो वेदों के जमाने से ही एकता की भावना पाते हैं, जब कि यातायात के कोई साधन नहीं थे। उस समय के ऋषियों के अनुसार सिंधु से लेकर हिमालय की

गुहा तक एक समूचा देश माना गया। यहाँ एक सभ्यता पली। असंख्य यात्री देश के इस सिरे से उस सिरे तक यात्रा करते रहे। असंख्य सत्पुरुष हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सद्विचार का प्रचार करते रहे। इसीलिए हमारा एक देश बना है। हमें यह विरासत मिली, इसलिए हम श्रीमान् हैं।

इतिहास-प्रदत्त जिम्मेवारी

पर बड़ी विरासत सँभालने के लिए अक्ल भी चाहिए। यदि यह अक्ल न हो, तो हमारी यह ताकत—देश की जनसंख्या और विस्तार—हमारी कमजोरी ही साबित होगी। इसलिए देश के इतिहास ने हम पर बड़ी भारी जिम्मेवारी डाली है कि यहाँ जो मसले पैदा होंगे, उनका हल हम प्रेम और शान्ति के तरीके से करें। अगर हम यह जिम्मेवारी सँभाल न पाये, तो देश की विशालता हमारी कमजोरी साबित होगी और परिणामस्वरूप हमारी आजादी भी न टिकेगी। इतिहास हमें सिखाता है कि इस देश पर दूसरों के जो आक्रमण हो सके, उसका कारण यहाँ के लोगों को यहाँ की विविधता का आन्तरिक भान न होना ही है। इसके कारण भेद बढ़े, फिरका-परस्ती हुई, एक-दूसरे के साथ विरोध शुरू हुआ और हिन्दुस्तान को वर्षों तक गुलाम रहना पड़ा।

शांति और प्रेम का तरीका अनिवार्य

इसलिए हमारे देश के लिए शान्ति और प्रेम का तरीका अनिवार्य हो जाता है। मैं तो यह कहूँगा कि यह हमारा सद्भाग्य है कि परमेश्वर ने ऐसी योजना कर रखी है कि हम शांति और प्रेम से ही अपने मसले हल करें। मैंने इसे 'सद्भाग्य' कहा है, क्योंकि अगर हम अपने मसले शांति और प्रेम से हल न कर सकें, तो हमारी ताकत और दौलत न बढ़ सकती, ऐसी योजना परमेश्वर ने की है। अगर हिन्दुस्तान फौजी ताकत बढ़ाने की सोचेगा, तो वह बिलकुल ही कमजोर हो जायगा; गुलाम हो जायगा। उसे अमेरिका या रूस किसी-न-किसीकी शरण जाना ही पड़ेगा। फिर हम आजाद न रह सकेंगे। इसलिए मैं इसे बड़ा भाग्य मानता हूँ कि इस देश के लिए यह अनिवार्य है कि सारे देश के मसले शांति और प्रेम के तरीके से हल किये जायँ।

जैसे इस देश के लिए यह अनिवार्य है कि देश के मसले शांति के तरीके

से हल किये जायँ, वैसे ही विज्ञान के लिए भी अनिवार्य है कि दुनिया अपने मसलों को हल करने के लिए शांति और प्रेम का तरीका ढूँढ़े। आज के शस्त्र मानव के हाथ में नहीं हैं। शस्त्र-शक्ति में चाहे कितनी ही बुराइयाँ हों, पर यदि वे मानव के नियंत्रण में रहें, तो कुछ लाभप्रद भी सिद्ध हो सकते हैं। किन्तु आज विज्ञान का इतना विकास हुआ है कि शस्त्र-शक्ति मानव के हाथ में रह ही नहीं गयी। मान लीजिये कि यहाँ कोई बीड़ी पीकर बिना बुझाये फेंक दे और उससे घर को आग लग जाय, तो उसे बुझाने की शक्ति उसमें नहीं रहती। उसने जान-बूझकर तो नहीं, फिर भी आग तो लगायी ही। उसके हाथ में आग लगाने की शक्ति है और वह आसानी से घर को आग लगा सकता है, किंतु आग बुझाने की शक्ति उसके हाथ में नहीं है। विज्ञान के जमाने में लगनेवाली आग की लपटों से न सिर्फ कुछ घर, बल्कि देश-के-देश जल जाते हैं। मानवता का और मानव-जाति का समूल उच्छेद करने की शक्ति विज्ञान ने निर्माण की है। इसलिए दुनिया के लिए यह जरूरी है कि वह अपने मसले शांति और प्रेम के तरीके से हल करे। यह आग्रह कभी न किया जाय कि एक देश में जो रीति या तरीका चला, वही सभी देशों में चले। हमारी वृत्ति आग्रह की नहीं है। हरएक देश के अपने भिन्न-भिन्न गुण होते हैं। इसलिए हर देश में एक ही प्रकार की राज्य-व्यवस्था और समाज-रचना चलनी चाहिए, ऐसा आग्रह हम न रखें। हरएक देश अपनी विशेष परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग समाज-रचना कर सकता है, ऐसी अनाग्रही वृत्ति हम रखें, तो दुनिया में शांति रहेगी। नहीं तो सारी दुनिया के लिए अशांति की नौबत आयेगी। आज हिन्दुस्तान का जो अंतर्राष्ट्रीय रूप आया है, हिंदुस्तान का जो स्वभाव है और हिंदुस्तान की जो ऐतिहासिक जिम्मेवारी है, उन सबके कारण हमारे लिए शांति का तरीका अनिवार्य है, और सारी दुनिया के लिए भी विज्ञान के कारण शान्ति का तरीका अनिवार्य है। हमारे लिए जहाँ वह अपनी परिस्थितियों के कारण अनिवार्य है, वहीं विज्ञान के कारण सारी दुनिया के लिए भी अनिवार्य हो गया है। अब सबको अपने मसले हल करने के लिए शांति का ही तरीका अख्तियार करना पड़ेगा। हमें यह देखना होगा कि आग न लगने पाये और लगे, तो बुझ सके।

लोहिया के भारतीय परंपरा के उद्गार

जब इंदौर में गोली चली, तब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने कहा कि स्वराज्य में इस तरह गोली नहीं चलनी चाहिए। स्वराज्य में आंदोलन चलानेवालों पर भी जिम्मेवारी है कि वे अपने पर अंकुश रखें और हिंसा न होने दें। सरकारवालों को भी यह वृत्ति रखनी चाहिए कि गोली न चले। इसलिए हमें खुशी है कि जब त्रिवांकुर-कोचीन में गोली चली, तब राममनोहर लोहिया की आत्मा पुकार उठी। यद्यपि वहाँ सोशलिस्ट पार्टी की ही सरकार थी, फिर भी उनकी आत्मा की पुकार प्रकट हुई। उस पर फिर चर्चा हुई। उसके पक्ष और विपक्ष में जो बातें की गयीं, उन सबमें मैं नहीं पड़ना चाहता। किन्तु उनके हृदय से स्वयंस्फूर्ति से जो उद्गार निकले, यद्यपि वहाँ उन्हींकी सरकार थी, उन उद्गारों को हम भारतीय-उद्गार कहते हैं और उनके साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति है।

हिंसा के बारे में एक गलत खयाल

आजकल यह जो खयाल हुआ है कि हिंसा से सारे मसले हल हो सकते हैं और जल्द हल हो सकते हैं, वह गलत है। हिंसा से सारे मसले न तो हल हो सकते हैं और न जल्द ही हल हो सकते हैं। मसले हल हुए, ऐसा आभास होता है। अगर उस आभास से ही हम मान लें कि मसले हल हो गये, तो वह गलत होगा। मान लीजिये कि कहीं गंदगी पड़ी है और देर लगेगी, इस खयाल से झाड़ू नहीं लगायी गयी। उस पर जाजम बिछा दिया और मान लिया कि स्वच्छता हो गयी। लोग बैठ गये और सभा आरंभ हुई। फिर नीचे से एक बिच्छू निकला और उसने किसीको काटा और सभा समाप्त! सारांश, झाड़ू लगाने में देर होगी, यह सोचकर गंदगी को ऊपर से ढँक देने से स्वच्छता नहीं हो जाती। स्वच्छता के लिए कुछ करना ही पड़ता है। संस्कृत में एक कहावत है कि बच्चा गेहूँ बोने गया और उसने एक दाना बोया। एक दिन राह देखी, नहीं उगा। दूसरे दिन, तीसरे दिन, चौथे दिन राह देखी, फिर भी नहीं उगा। आखिर पाँचवें दिन बाहर जरा-सा अंकुर उठा, तो बच्चे को लगा कि

जरा-सा अंकुर फूटने में इतनी देर क्यों हुई ? उसने उसे बढ़ाने के लिए ऊपर से खींच लिया। पर जब दूसरे दिन देखा, तो वह अंकुर क्षीण हो गया था। ऊपर से खींचने से अंकुर बढ़ नहीं सकता। उसके लिए तो समय लगता है और वह लगना भी चाहिए। उसमें कम समय लगने की कोशिश चलती है, तो वह टेढ़ी कोशिश होती है। उससे सारा मामला ही टेढ़ा हो जाता है। इसलिए हिंसा से मसले जल्द हल होते हैं, यह खयाल गलत ही है।

देह-प्रधान तालीम के नतीजे

आजकल लोगों का हिंसा पर इतना विश्वास है कि वे मानते हैं कि हिंसा से ही सारे मसले हल हो सकते हैं। यह खयाल गलत है। घर में भी माँ-बाप बच्चे को तमाचा लगाते हैं। इसका मतलब यह है कि उनका प्रेम पर, अपनी समझाने की शक्ति पर उतना विश्वास नहीं, जितना तमाचे पर है। स्कूल में भी यही होता है। बच्चा देर से आता है, तो उसे नियमितता सिखाने के लिए गुरु छड़ी लगाता है। फिर बच्चा नियमित स्कूल में आने लगता है। तब वे कहते हैं कि देखो, काम हो गया। जहाँ उसकी देह को छड़ी का स्पर्श हुआ, वहीं उसे सद्गुण की प्रेरणा हो गयी! अतः सद्गुण की प्रेरणा के लिए छड़ी का स्पर्श, डंडे का स्पर्श, कितना लाभदायी है, ऐसा कहा जाता है। किंतु यह व्याज के कारण मूल पूँजी गँवाने जैसा ही हुआ। छड़ी मारने से बच्चा स्कूल में नियमित तो जाने लगा, पर उसके साथ उसने डर भी सीखा। उसे यह तालीम मिली कि तुझे कोई मारे, तो उससे डरो। इस तरह उसने निर्भयता छोड़ नियमितता हासिल की।

आप ही बतायें कि निर्भयता की कीमत ज्यादा है या नियमितता की ? आपने एक पैसा कमाया और रुपया गँवाया, इससे क्या होता है ? बच्चा चंद दिनों के लिए नियमित स्कूल जाने लगता है। किंतु बाद में दबाव न रहा, तो वह नियमितता भी भूल जायगा, यही संभव है। इसलिए नियमितता भी टिकनेवाली नहीं और साथ-साथ डर भी पैदा हो गया! इस तरह की तालीम खतरनाक है। आज तो यह बच्चा डर के मारे शिक्षक या माता-पिता के वश में है, लेकिन, कल किसी जालिम के भी वश हो जायगा। यह तालीम बच्चे को देह-प्रधान बनानेवाली

है! उसे सिखाया जाता है कि देह पर खतरा हो, तो फौरन सामनेवाले की शरण जाना चाहिए। इस तालीम के माने यह है कि हम अपने सद्गुणों को खतरे में डालते हैं। आखिर जुल्मी लोगों के पास भी कौन-सी सत्ता है? यही कि वे मार सकते, पीट सकते और धमका सकते हैं। फिर इस तालीम से सारा-का-सारा नागरिक-शास्त्र खतम हो जाता है।

इसलिए जब हम देखते हैं कि हमारे मसलों के हल होने में देर है और सोचते हैं कि हिंसा करने से मसले जल्द हल हो जायँगे, तो यह एक निरा भ्रम ही है। इस भ्रम में लोग अनादिकाल से पड़े हैं। दस हजार साल से हिंसा के प्रयोग हुए हैं। एक हिंसा से दूसरी हिंसा की तैयारी हिंसा की प्रक्रिया है, ऐसा ही अनुभव आया है। फिर भी मनुष्य मान लेता है कि हिंसा की लड़ाई में हम इसलिए नहीं हारे कि हिंसा के तरीके में दोष है, बल्कि इसलिए कि हममें हिंसा-शक्ति कम थी! शस्त्रास्त्र की लड़ाई में हारनेवाले यह नहीं समझते कि हिंसा में कोई शक्ति नहीं है, बल्कि वे यही समझते हैं कि हम काफी हिंसक नहीं थे; इसलिए ज्यादा शक्ति बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए। फिर वह हारा हुआ शस्त्रास्त्र बढ़ाने की कोशिश करता और फिर जीतता है। इसके बाद जो हारता है, वह भी शस्त्रास्त्र बढ़ाता है।

युद्ध की गंगोत्री हमारे ही घर में

इस तरह एक-दूसरे को देखकर हिंसा बढ़ाते-बढ़ाते हम आज 'टोटलवार' (संकुल-युद्ध) तक आये हैं। आज एक व्यक्ति या एक जमात की दूसरे व्यक्ति या जमात के साथ लड़ाई नहीं चलती। अब तो एक राष्ट्र-समूह की दूसरे राष्ट्र-समूह के साथ लड़ाई चलती है। लेकिन इस युद्ध का उद्गम-स्थान, इस युद्ध की गंगोत्री कौन-सी है, जहाँ से यह गंगा बह निकली है? ऐटम बम या हाइड्रोजन बम तक जो मामला बढ़ा है, उसका आरम्भ कहाँ से हुआ? स्पष्ट है कि उसका आरम्भ परमप्रिय माता-पिता और गुरु से ही हुआ है। जिन्होंने अपने बच्चों को सद्गुण सिखाने के लिए मारने-पीटने का तरीका अख्तियार किया, ऐटम और हाइड्रोजन बम की गंगोत्री वे ही हैं। अगर माता-पिता और गुरु बच्चों को ऐसी तालीम दें कि

हमारी बात तुम्हें जँच जाय, तो उसे मानो और न जँचे तो न मानो, तभी देश बचेगा। इसी तालीम से हम विचार-प्रधान बनेंगे। जो बात जँचती है, वही माननी चाहिए और जो नहीं जँचती, उसे नहीं मानना चाहिए।

लेकिन आजकल तो उल्टा चलता है। बच्चों को सर्वत्र पीटा जाता है। बच्चों को सिखाना चाहिए कि जो बात तुम्हें नहीं जँचती, उस पर अमल मत करो। चाहे कोई तुम्हें मारे या पीटे, फिर भी उसकी बात कबूल मत करो और मार खाते रहो। शांति से मार खाने की यह शक्ति, यह तितिक्षा ही 'निर्भयता' है। शस्त्रों पर विश्वास रखना निर्भयता का नहीं, डरपोकपन का लक्षण है। इसीलिए यह जरूरी है कि हम शिक्षण में यह तत्त्व दाखिल करें कि कभी भय के वश में न होना चाहिए। हम बच्चों को दो बातें सिखायें : (१) हम किसीसे डरेंगे नहीं और न किसीको डरायेंगे ही और (२) हम किसीसे दबेंगे नहीं और न किसीको दबायेंगे ही। यही बात गीता ने कही है : **'नायम् हन्ति न हन्यते'**—यह न मारता है और न मरता है।

अभय की सबसे पहले आवश्यकता

इसलिए हम ऐसा तरीका अख्तियार करना चाहते हैं कि जिससे मसले हल हो जायँ और अशान्ति या मनक्षोभ पैदा न हो, वृत्ति में भय न हो। हमारे इतिहास-वेत्ताओं को यह बात मालूम थी। इसीलिए हमारे समाज-शास्त्र में एक शब्द मिलता है : "अभय"। लेकिन आज उसके बदले "लॉ एण्ड ऑर्डर" (कानून और बन्दोबस्त) आया है। आज माना जाता है कि लोग भयभीत होकर ही क्यों न हो, पर 'लॉ एण्ड ऑर्डर' मानते हैं। इस तरह हमने व्यवस्था-देवी को परमदेवी मान लिया है। हम उससे कहते हैं कि 'हे देवी, तू परमदेवी है। तू ही हमारा संरक्षण करती है। तू ही हमारा आधार है।' इस देवी पर इतना विश्वास हो गया है कि नास्तिक लोग भी इसे मानते हैं। कम्युनिस्ट कहते हैं कि 'हम ईश्वर को नहीं मानते।' तो, हम उनसे पूछते हैं कि आप ईश्वर को तो नहीं मानते, लेकिन उसके बाप को मानते ही हैं—प्रबन्ध-देवता को तो मानते ही हैं।'

कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि व्यवस्था करते-करते कुछ लोगों को सफा

करना होगा। फिर इस तरह का सफाया करते-करते ऐसी व्यवस्था बनेगी, जिसमें संघर्ष ही मिट जायगा। संघर्ष तो उनका परम सत्य है! जब हम पूछते हैं कि 'संघर्ष मिटेगा तो क्या होगा?' तो वे कहते हैं : 'फिर तो सृष्टि के साथ संघर्ष आरंभ होगा।' वास्तव में यह सारा विचार ही गलत है। हम भी व्यवस्था की कीमत मानते हैं। अभी हमने आप लोगों को समझाया कि शांत रहिये। परन्तु अगर हम समझाने के बदले मार-पीट शुरू कर देते, तो आप शान्त तो रहते, लेकिन सुन नहीं पाते; ज्ञान हासिल नहीं कर पाते। क्योंकि वह तो बाहर की शांति हो जाती, पर अंदर भय बना ही रहता। इसलिए वह शांति नहीं कहलाती। क्योंकि अंदर जो उबलता रहता है, वह क्षोभ है। अगर क्षोभ प्रकट न हो और अन्दर ही रहे, तो वह ज्यादा खतरनाक होता है। प्रकट हो जाय, तो कोई हर्ज नहीं। पानी की भाप अन्दर दबी रहती है, तो उसकी शक्ति से ट्रेनें भक-भक चलती हैं। इसी तरह क्षोभ बाहर प्रकट हो जाय, तो उसमें उतनी ताकत नहीं रह जाती। लेकिन हम उसे अन्दर दबाये रखें, तो ज्यादा अनर्थ हो जाता है। आज आपने यहाँ इसलिए शांति रखी कि हमने समझाया, धमकाया नहीं। लेकिन हम डर पैदा करके शांति स्थापित करें, तो व्यवस्थादेवी 'देवी' नहीं रह जाती, 'व्यवस्था-राक्षसी' बन जाती है। इस राक्षसी के पेट में इतनी अव्यवस्था होगी कि उसकी अपेक्षा बाहर की अव्यवस्था हमें मंजूर करनी पड़ेगी। इसलिए व्यवस्था से भी ज्यादा आवश्यक है, 'अभय'।

एक होने की अक्ल

आज हमने सुना कि झरिया एक बड़ा कुरुक्षेत्र है। यहाँ लड़ाइयाँ चलती हैं। यहाँ कितने दुर्योधन, दुःशासन और कितने कौरव-पुत्र हैं, हम नहीं जानते। लेकिन यहाँ मजदूर अवश्य रहते हैं। उनसे काम लेना है और हर हालत में लेना है, ऐसा सोचा जाता है। उनसे कोयला निकलवाना है। अगर जमीन में कोयला न निकला, तो देश का मुँह काला हो जायगा। इसलिए उनसे काम करवाना है, ऐसा सोचा जाता है। लेकिन मजदूर का मतलब है, श्रमशील। जहाँ श्रमशील होते हैं, वहाँ तो शांति होनी ही चाहिए। जहाँ आलसी लोग होते हैं,

वहाँ अशांति होनी चाहिए। जहाँ श्रम करनेवाले हैं, वहाँ तो लक्ष्मी पैदा होती है। किंतु आज तो इससे उल्टी बात हो रही है। जहाँ श्रम करनेवाले हैं, वहाँ दो पक्ष खड़े हो जाते और माना जाता है कि दोनों के हित भिन्न-भिन्न हैं। एक के दो और दो के चार, इस तरह टुकड़े-टुकड़े करने की अक्ल तो दुनिया में सबको हासिल है। पर चार के दो और दो का एक बनाने की अक्ल किसीको हासिल नहीं है। टुकड़े करने की यह अक्ल, जिसे गीता ने राजसी-बुद्धि कहा है और जिसके कारण कई शाखाएँ फूटती हैं—इसका उसके साथ नहीं मिलता और उसका इसके साथ नहीं मिलता—तो सबको हासिल है। किंतु सबमें जो समान अंश है, उसे ग्रहण कर सबको उस पर एक करने की अक्ल सूझनी चाहिए।

गुंडों का राज्य

मुझे बताया गया कि यहाँ गुंडों का राज्य चलता है। लेकिन जहाँ गुंडों का राज्य न हो, ऐसी जगह ढूँढ़ने पर भी कहीं न मिलेगी। एक गुंडे वे होते हैं, जो 'गुंडे' कहलाते हैं और दूसरे गुंडे वे हैं, जो 'सेनापति' या 'कार्यकर्ता' कहलाते हैं। सोचने की बात है कि हम सारे शिक्षित लोग अपनी रक्षा का आधार पुलिस और सेना पर रखते हैं। इससे अधिक अनर्थ क्या हो सकता है? इससे अधिक पराधीन दशा कौन-सी हो सकती है? और ये सिपाही भी कौन होते हैं? इनमें क्या गुण होते हैं? जिसकी छाती बत्तीस इंच की हो, वह सिपाही बनता है। बस, यही है उनका गुण और ऐसों पर हम अपने देश का आधार रखते हैं! फिर उसके लिए क्या-क्या करना पड़ता है? यह सब भी सोचना चाहिए। उधर बंबई में शराबबंदी हुई, तो वहाँ पर माँग की गयी कि सेना को उससे मुक्ति मिलनी चाहिए। सेना को शराब की सहूलियत होनी चाहिए। तब हमने सोचा कि रावण की सेना में तो सब लोग शराब पीते थे, परंतु रामजी की सेना के बंदरों को शराब की जरूरत महसूस न होती थी। हनुमान् को शराब की जरूरत नहीं थी। इसलिए राष्ट्र की रक्षक कहलानेवाली यह सेना राजसी है या सात्त्विक, इस पर हमें सोचना चाहिए। तुलसीदासजी ने 'हनुमान्-चालीसा' लिखा। रावण भी तो ताकतवर था, पर

उसने 'रावण-चालीसा' नहीं लिखा ! क्योंकि हनुमान् की ताकत हमें बचानेवाली है, रावण की ताकत वैसी नहीं। हनुमान् की ताकत से ही देश बचेगा, रावण की नहीं।

लेकिन आज तो हम गुंडों को हनुमान् की पदवी देना चाहते हैं। हम उस सेना को अपनी रक्षा का आधार मानते हैं, जिसके सिपाहियों को शराब पिलानी पड़ती है, भोग के साधन देने पड़ते हैं और रणक्षेत्र में भेजने पर जिनके भोग-विलास के लिए कन्याएँ भेजनी पड़ती हैं। उनकी अनीति को भी नीति मानना पड़ता है। जब हमने सुना कि 'वॉर बेबीज' यानी, युद्ध में पैदा हुए बच्चों का सवाल है, तो हम ताज्जुब में रह गये कि युद्ध से बच्चे कैसे पैदा होते हैं ? वहाँ तो लोग मरते हैं। लेकिन नहीं, आधुनिक युद्ध में बच्चे भी पैदा होते हैं। और ये ही फौजें हमारा आधार कही जाती हैं ! इस तरह जब तक हमारे देश की रक्षा गुंडों पर निर्भर है, तब तक गुंडों का ही राज्य चलेगा। भले ही उसे आप चाहे जो नाम दें, कोई नाम देने से असलियत नहीं मिटेगी। इसीलिए हम चाहते हैं कि हमारे मसले शांति के तरीके से हल हों।

कत्ल से, कानून से या हृदय से ?

कुछ लोग कहते हैं कि आपका जो भूदान-यज्ञ का कार्य चल रहा है, उसमें देर लगेगी। इसलिए कानून से जल्द काम क्यों नहीं करवा लेते ? ये सोचते हैं कि कानून से काम जल्द हो जाता है, कत्ल से और भी जल्द हो जाता है। मैं मानता हूँ कि कत्ल से काम जल्द होता है। मान लीजिये कि हमारे सारे मजदूर उठ खड़े हो जायँ, एक तारीख मुकर्रर करें (जैसे कि २६ जनवरी) और उस दिन सब मालिकों को कत्ल कर दें, तो विनोबा जो काम दस साल में करता, वह एक दिन में हो जायगा। मैं मानता हूँ कि यह हो सकता है। लेकिन क्या यह भी कोई हल है ? लोग सोचते हैं कि कानून से क्या नहीं हो सकता ? लेकिन क्या कानून से आप दयालु बन सकते हैं, धार्मिक बन सकते हैं ? स्पष्ट है कि भूमि का मसला कानून से हल नहीं हो सकता। कानून से जमीन बँट सकती है, पर वह टूटे दिलों को जोड़ नहीं सकता। यह काम केवल हृदय से ही हो सकता है।

सौ प्रतिशत दान-पत्र चाहिए

हम गणित के प्रेमी हैं, इसलिए गणित करते हैं। अब तक साढ़े तीन लाख लोगों ने दान दिया। अगर एक मनुष्य दान देता है, तो कम-से-कम दस मनुष्य हमारा विचार सुनते हैं। जितने काश्तकार हैं, उतने दान-पत्र हमें मिलने चाहिए। हमें तो सौ प्रतिशत दान-पत्र चाहिए। अगर देश में छह करोड़ मनुष्य संपत्ति रखनेवाले हैं—फिर वे चाहे चार कौड़ी रखें, चाहे चार करोड़—तो हमें छह करोड़ संपत्ति-दान-पत्र चाहिए। लोग हमसे पूछते हैं कि क्या किसी आंदोलन में इस तरह सौ प्रतिशत काम हो सकता है ? अभी वैद्यनाथ बाबू ने भी कहा कि 'सौ प्रतिशत दान-पत्र कैसे हासिल कर सकते हैं, कुछ 'परसेंटेज' (प्रतिशत) लगाइये।' तो, हमने उनसे कहा कि हाँ, आप यह कर सकते हैं, पर हमारी माँग तो १००% दानपत्रों की रहेगी।

अभी यहाँ जो बैठे हैं, वे सब-के-सब मरनेवाले हैं। मरने में शत-प्रतिशत की बात है, तो फिर जीवन में कम प्रतिशत क्यों ? यह आन्दोलन तो जीवन-निर्माण का आंदोलन है। सारे लोग मरनेवाले हैं। उस चुनाव में सभी वोट देंगे। यम-राज की पेटी में सबके वोट गिरेंगे। फिर जब मृत्यु के लिए इतना वोटिंग हो, तो जीवन के लिए कम क्यों हो ? जो विचार हमें घुमा रहा है, हमारे पाँवों को प्रेरणा दे रहा है, वह विचार अगर आपको जँच जाय, तो आपसे भी रहा न जायगा। विचार पर हमारी इतनी श्रद्धा है कि हम मानते हैं कि दुनिया में विचार से बढ़कर कोई ताकत नहीं है।

आत्म-शक्ति का महत्त्व

एक बार एक भाई ने हमसे कहा कि 'जरा आपकी कुंडली देखना चाहता हूँ। मंगल और शनि का आप पर क्या असर पड़ता है, यह देखना चाहता हूँ।' मैंने कहा कि 'मैं जरा मंगल की कुंडली देखना चाहता हूँ कि उस पर मेरा क्या असर पड़ता है, क्योंकि वह तो आखिर जड़ है और हम चेतन हैं।' हम ब्रह्म हैं। हमसे बढ़कर दुनिया में कोई ताकत नहीं है। हम द्रष्टा हैं और सारी सृष्टि दृश्य है। हम इसे रूप देनेवाले हैं। जैसे कुम्हार मिट्टी को रूप दे सकता

है, वैसे ही हम इस सृष्टि को चाहे जो रूप दे सकते हैं। अगर यह विचार आपको जँच जाय तो आपमें ऐसी ताकत पैदा होगी, जो ऐटम बम में भी नहीं है। जब लोगों ने मुझे सुनाया कि ऐटम बम कितना बड़ा शक्तिशाली है, तो हमने कहा : 'हमारे पास 'आत्म-बम' है, आत्मा की शक्ति। आखिर ऐटम बम मनुष्य ने ही तो बनाया। जो उसे बना सकते हैं, वे उसे खतम भी कर सकते हैं। हम आपको बताना चाहते हैं कि आप कमजोर नहीं हैं। आप अत्यन्त बलवान् हैं। आपसे बढ़कर बलवान् दुनिया में कोई नहीं है। किंतु वह शक्ति शस्त्रों में नहीं, आत्मा में है, प्रेम में है। उसी शक्ति को प्रकट करने के लिए यह आन्दोलन चल रहा है।

'सर्वोदय' का यही नियम है कि पहले हमारे भाई को मिले और बाद में हमें। लेकिन जब लोग कहते हैं कि पहले मुझे मिले, तो वह सर्वनाश का तरीका है। इसलिए हम चाहते हैं कि सब लोग कहें कि पहले दूसरों को मिले। हम ऐसी सहज व्यवस्था चाहते हैं, राक्षसी-व्यवस्था हम नहीं चाहते। आप 'गीता-प्रवचन' का पठन करेंगे, तो आपको आत्मा की शक्ति का भान होगा।

झरिया
२७-१२-'५४

हरएक देश के निवासियों को अपने-अपने देश के प्रति प्रेम और अभिमान होता है। प्रेम होना तो उचित ही है, पर अभिमान भी उचित है। अगर वह देश के किसी गुण के लिए हो और उस अर्थ में हो, जिसमें किसी दूसरे देश की निन्दा का खयाल न हो। इस मर्यादा में अपने देश का अभिमान रखना योग्य ही है। किन्तु हिंदुस्तान में हम लोगों में अपने देश के प्रति जो विशेष भावना है, वैसी भावना हम दूसरे देशों में नहीं देखते।

'दुर्लभं भारते जन्म' क्यों ?

हिंदुस्तान में कहा गया कि "दुर्लभं भारते जन्म, मानुष्यं तत्र दुर्लभम्" भरत-भूमि में जन्म पाना यह एक दुर्लभ वस्तु है, पर उसमें भी मनुष्य का जन्म पाना और भी दुर्लभ है। इसका मतलब यह होता है कि हिंदुस्तान में कीड़े-मकोड़े का जन्म लेना भी सौभाग्य है, खुशकिस्मती है; क्योंकि दूसरा वाक्य कहता है कि हिन्दुस्तान में मनुष्य का जन्म पाना और भी दुर्लभ है। दुनिया के किसी भी अन्य देश में इस किस्म का उद्गार नहीं निकला कि अपने देश में कीड़े-मकोड़े का जन्म पाना भी सौभाग्य है। यह उद्गार अतिशयोक्तिपूर्ण है ही, फिर भी अतिशयोक्ति के तौर पर यहाँ तक भावना रखी जाय कि 'इस मिट्टी में जन्तु बनकर पड़ना भी सौभाग्य है', इस विचित्र वाक्य का कारण कुछ अवश्य होना चाहिए। इसका कारण मैंने यही समझा कि इस देश में सर्वप्रथम मनुष्य ने मानव-धर्म सीखा और उसे अहिंसा के तरीके से जीने का पता चला। मानव पहले शिकार करता था और जैसे दूसरे प्राणी रहते हैं, वैसे ही रहता था। उसके लिए हिंसा अनिवार्य थी, जैसे जंगल के दूसरे प्राणियों के लिए वह अनिवार्य होती है। उससे छुटकारा पाने की तरकीब मानव को हिन्दुस्तान में ही सबसे पहले सूझी। यहाँ से मानव दूसरे देश गया और वह तरकीब लेता गया। इसीलिए

यह उद्गार निकला है कि 'इस भूमि में जन्तु बनकर पड़े रहना भी सौभाग्य की बात है।'

सर्वप्रथम भारत में ही खेती की खोज

पूछा जा सकता है कि आखिर वह तरकीब कौन-सी थी, जिसके कारण हमारा जीवन हिंसा से बच गया और हमने मानवता का जीना सीखा ? वह तरकीब थी, खेती करना। आज हमें यह मालूम नहीं कि खेती में इतना बड़ा आध्यात्मिक रहस्य छिपा है। किन्तु दो-चार दाने बोकर उसमें से सौ दाने पैदा करना और फिर जैसा चाहें, वैसा जीवन-निर्वाह करना, यह एक विशेष ही वस्तु उस समय मानव को सूझी। तभी से हिन्दुस्तान में लोगों को अहिंसक जीवन का मार्ग-दर्शन मिला। फिर मांसाहार के त्याग का आन्दोलन चला और जैनियों ने उसमें पूर्णता प्राप्त की। बुद्ध भगवान् ने उसके साथ अहिंसा और करुणा जोड़ दी और वैदिकों ने खेती की उपासना ! इस तरह एक-एक कदम आगे बढ़ते-बढ़ते हिन्दुस्तान का सर्वसाधारण समाज अहिंसा की खोज में आगे बढ़ता गया। लेकिन अहिंसा की यह प्रथम खोज हिन्दुस्तान में ही हुई।

मेरा वेदों का जो अभ्यास है, उस पर से कह सकता हूँ कि वेदों में इसका बहुत आदर के साथ वर्णन आता है कि 'देव आये, उन्होंने हाथ में परशु लिया और जंगल काटकर जमीन बनायी।' वेदों में कृषि के लिए और गायों-बैलों के लिए इतना निस्सीम आदर दिखाई देता है कि उसकी तुलना में दुनिया की किसी भी दूसरी भाषा में वैसा वर्णन नहीं मिलता। हमारे सर्वोत्तम ऋषि (जैन-धर्म के प्रथम तीर्थ-ङ्कर) का नाम 'ऋषभ' रखा गया है, जिसके मानी हैं उत्तम बैल। हमारे यहाँ महान् बुद्ध भगवान् का नाम था गौतम याने उत्तम बैल। इस तरह अपने लड़के को बैल की उपाधि देने में यहाँ के लोगों को इज्जत मालूम होती थी, क्योंकि उसी बैल की मदद से हमें अहिंसक जीवन का दर्शन हुआ था। हमारी सभ्यता में गाय, बैल के लिए बहुत आदर है। हिन्दुस्तान की भाषा में 'गौ' के सौ अर्थ हैं : वाणी, पृथ्वी, बुद्धि आदि। इसलिए स्पष्ट है कि यहाँ भारत-भूमि का इतना जो आदर दीखता है, उसका कारण यही है कि शिकारी-जीवन या दूसरे प्राणियों को खाकर जीने से

मुक्ति पाने में सहायक खेती की खोज यहीं हिन्दुस्तान में हुई। इसीलिए इस भूमि को पुण्य-भूमि और इसकी मिट्टी में जन्तु का भी जन्म पाना पवित्र माना गया है।

सत्याग्रह से विज्ञान-युग के व्यापक मसलों का हल

जैसे यह बात हुई, वैसे ही दूसरी भी एक बात और हुई, जो हमारे लिए सौभाग्य की बात है। दुनिया में जो हिंसक तरीके चलते थे, उनकी अपेक्षा खेती का तरीका अहिंसक माना जायगा, जो हमें हासिल हुआ था। मैंने 'अपेक्षा' इसलिए कहा कि खेती में भी कुछ हिंसा हो ही जाती है, पर पहले की अपेक्षा उसमें अहिंसा के लिए बहुत अवकाश मिला। जैसे उन दिनों वह एक खोज हुई और उससे जीवन के तौर-तरीके में फर्क हुआ, वैसे ही इस जमाने में भी एक और खोज हुई। आज विज्ञान के कारण परस्पर के सम्बन्ध, व्यापार, व्यवहार आदि सीमित और संकुचित नहीं रहे; व्यापक बन गये। आमदरफ्त के साधन तेज हो गये और जन-संख्या बढ़ गयी। इन सबके परिणामस्वरूप जो मसले और संघर्ष पैदा हुए, वे सीमित नहीं रहे, देशव्यापी हो गये। कई प्रकार के अन्यायों के प्रतिकार की जरूरत महसूस हुई। कई प्रकार के शस्त्रास्त्र पैदा हुए। अन्याय के प्रतिकार के साधन, समाज में निर्माण होनेवाले मसले कैसे हल हों, इसका उपाय ढूँढ़ने की आवश्यकता पैदा हुई। पहले तो मसले छोटे थे। टोलियों या जमातों में वे पैदा होते और जल्दी खतम भी हो जाते। लेकिन आज जो मसले पैदा होते हैं, वे छोटे नहीं रहते। आज के मसले ऐसे नहीं होते कि इस किसान की हद उस किसान की हद में गयी, इसका उस पर आक्रमण हुआ।

आज तो ऐसा वाद चलता है कि आस्ट्रेलिया में इंग्लैंड के निवासी गये और वहाँ बस गये। वे समुद्र के किनारे-किनारे ही रहते हैं, अन्दर नहीं जाते, क्योंकि अंदर जंगल और काफी गर्मी है। बावजूद इसके किनारे पर ठंडक है। फिर भी वे वहाँ किसीको आने नहीं देते और कहते हैं कि यह भूमि हमारी है। आज आस्ट्रेलिया में जितने लोग रह रहे हैं, उससे दसगुना लोग और बस सकते हैं। किन्तु वहाँवाले दूसरों को आने ही नहीं देते और खुद भी अन्दर जाकर खेती

नहीं करते। अब इस देश का उस देश पर हक है या नहीं, वहाँ के लोगों का और सारी दुनिया का उस पर हक है या नहीं, ऐसे मसले पैदा होते हैं। यदि किसी देश में पेट्रोल पैदा होता हो, तो क्या उस पर उसी देश का हक है या सारी दुनिया का ? ऐसे सवाल पैदा होते हैं। इस तरह सवालों का क्षेत्र व्यापक बन गया है। जो सवाल छोटे होते हैं, वे समस्या के रूप में खड़े नहीं होते। पर इन दिनों जो सवाल पैदा होते हैं, वे समस्या के रूप में दुनिया के सामने खड़े हो जाते हैं।

नागरिकत्व का ही सवाल लीजिये ! लंका में हिंदुस्तान से जो मजदूर गये, उन्हें वहाँ नागरिकत्व का हक है या नहीं, इस पर वाद चला। कुछ कटुता भी पैदा हुई। उस पर जो चर्चा चली, वह राष्ट्रीय पैमाने पर चली। एक देश का दूसरे देश के साथ वाद चला। कई समस्याएँ ऐसी होती हैं, जो बहुत व्यापक होती हैं। उनको हल करने के लिए आज दुनिया को शस्त्रास्त्रों के सिवा दूसरी कोई चीज सूझ नहीं रही है।

ऐसी हालत में हिन्दुस्तान में एक और चीज की खोज हुई और वह है, 'सत्याग्रह'। उससे देश, समाज और विश्व-व्यापक मसले भी हल किये जा सकते हैं, इसकी खोज अर्वाचीन काल में हिन्दुस्तान में हुई। इसलिए हम फिर से कहते हैं कि "दुर्लभं भारते जन्म, मानुष्यम् तत्र दुर्लभम्।"

सत्याग्रह का विकास करना है

जैसे प्राचीन काल में एक खोज हुई और हम अहिंसक जीवन के लिए प्रस्तुत हो गये, वैसे ही अर्वाचीन काल में सामाजिक मसले हल करने के तरीकों की एक झलक हाथ आयी। दुनिया को सूझता न था कि क्या किया जाय। आज खेती में काफी सुधार हो गये हैं, लेकिन उस जमाने में खेती मुश्किल से चलानी पड़ती होगी। इसी तरह आज भी हमारा 'सत्याग्रह' मुश्किल से चलेगा, कारण अभी हमें उसका कोई आसान और सुव्यवस्थित तरीका नहीं मिला है। जैसे उस जमाने में खेती का आसान और सुव्यवस्थित तरीका नहीं मिला था। पर आज विज्ञान के आधार पर खेती का आसान तरीका प्राप्त हो गया है, वैसे ही सत्याग्रह

का भी आसान तरीका मिल जायगा। आज हम सर्वसाधारण के लिए उसका एक शास्त्र नहीं बना सके हैं। यह कोई आसान बात नहीं है। इसमें कई प्रकार की खोजों, संशोधनों की जरूरत है। हमें इसे विकसित करना होगा। अगर हम संशोधन करेंगे, तो एक बड़ा भारी कदम उठायेंगे और समाज को सामाजिक हिंसा से बचायेंगे।

जीवन के अन्तर्गत हिंसा से मुक्त होने के साधन की खोज तो हुई, लेकिन अभी भी हम मांसाहार से पूरे निवृत्त नहीं हुए। अब दूध बढ़ेगा, खेती के लिए पानी का प्रबन्ध होगा, सिंचाई का प्रबन्ध और हरएक का खेती से संबंध होगा। चाहे कोई मेहतर हो या मिनिस्टर, थोड़ी देर के लिए हरएक खेती करेगा ही—जब ऐसी स्थिति निर्माण होगी, तभी मनुष्य को, प्राणियों के मांस के आधार पर जीने की जरूरत न रहेगी। लेकिन खेती की खोज से अब एक राह खुल गयी है। वैसे ही सत्याग्रह की राह खुल गयी है। अब उसे परिपूर्ण रूप से विकसित करने की बात सोचनी होगी। वह विकास करना बाकी है। आगे के एक-दो हजार साल तक वह होता रहेगा। खेती का पाँच हजार सालों से विकास होता आ रहा है, लेकिन अब भी विकास बाकी है। मांसाहार और मत्स्याहार से मुक्त होकर सारे समाज को फलाहारी और शाकाहारी बनाने की सूरत अभी नहीं आयी है। जैसे उसके विकास के लिए हजारों साल लगे, वैसे ही सत्याग्रह के विकास के लिए भी हजारों साल लगें, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। किन्तु वह चीज हाथ आ गयी है और उसका उद्‌गम हिन्दुस्तान में हुआ है।

आज सवेरे एक भाई ने हमसे एक सवाल पूछा। उसमें उनकी जिज्ञासा-बुद्धि ही थी। उन्होंने कहा : 'आप सत्याग्रह की बात करते हैं। किन्तु क्या आप कह सकते हैं कि हमने सत्याग्रह और अहिंसा से ही स्वराज्य हासिल किया ?' हमने जवाब दिया कि 'पूरे अर्थ में अहिंसा से स्वराज्य हासिल हुआ, ऐसा हम नहीं कह सकते। हिन्दुस्तान में हमने सत्याग्रह का जो टूटा-फूटा आन्दोलन चलाया, उसमें कई प्रकार की हिंसाएँ हुईं। मानसिक हिंसा तो कितनी हुई, कोई जानता ही नहीं। फिर भी हमने एक मर्यादा का पालन किया है। उसीसे स्वराज्य हासिल हुआ, यह दावा तो हम नहीं करते। कुछ दुनिया की परिस्थिति

भी इसके लिए अनुकूल थी। किन्तु यहाँ सत्याग्रह का जो आन्दोलन चला, वह एक बड़ा अंश है, जिससे हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ।

हमारा वह आन्दोलन तो आरम्भ था। वह तो अल्प और अविकसित शक्ति से चलाया हुआ आन्दोलन था। अब तक हम समझते थे कि सत्याग्रह के मानी 'निगेटिव' (अभावात्मक) ही है। सामनेवाले के अन्याय के प्रतिकार के लिए जब हम शस्त्र से प्रतिकार नहीं कर सकते या करना नहीं चाहते, तो शस्त्रों के बिना प्रतिकार किया जाय, ऐसा हम समझते थे। लेकिन सत्याग्रह का यह तो एक अल्प और एकांगी अर्थ है। यह तो हमें सत्याग्रह की सिर्फ दूर से झाँकी मिली है। अभी उसकी शक्ति विकसित करनी है। सत्याग्रह निगेटिव वस्तु नहीं, पॉजिटिव (विधायक) वस्तु है। उसमें सारा जीवन सत्य पर खड़ा करने की बात है। फिर भी हमारे देश में उसकी एक नयी शक्ति का प्रादुर्भाव तो हुआ ही। हम अपने को धन्य मानते हैं कि हमारे जीते-जी हमें उसका दर्शन तो मिला।

भूदान-यज्ञ भी सत्याग्रह है

लोग हमसे पूछते हैं कि भूदान-यज्ञ में आप पैदल क्यों चलते हैं? क्या आप इसी तरह पैदल चलते रहेंगे और लोगों में स्नेह-भाव जाग्रत करते रहेंगे? क्या सत्याग्रह के इस शस्त्र का उपयोग न करेंगे? इसका अर्थ यह हुआ कि आखिर हम सत्याग्रह का मतलब इतना ही समझे कि बिना शस्त्र के प्रतिकार करना और सामनेवाले पर दबाव लाने की तरकीब हाथ लेना। इससे ज्यादा उसका अर्थ हम नहीं समझ पाये। किन्तु यहाँ से विदेशी सत्ता का दबाव मिट गया। लोगों को जाग्रत करने के लिए अब कोई रुकावट नहीं रही। फिर यहाँ सत्याग्रह को एक निषेधक अर्थ में सोचना गलत ही होगा। अब उसके विधायक रूप पर ही सोचना और उसे विकसित करना चाहिए।

हम समझते हैं कि हम जो कर रहे हैं, वह एक अर्थ में सत्याग्रह ही है। हम लगातार जाड़े में, बारिश और धूप, हर हालत में घूमते हैं। निरन्तर लोगों को समझाते रहते हैं। दरिद्र लोगों से भी दान लेते हैं। आखिर यह सब क्या है? गरीबों से दान लेने की यह बात परोपकारी लोग समझते नहीं। हमारे

कई साथी भी हमसे पूछते हैं कि 'बाबा, आप गरीबों से दान क्यों लेते हैं ? उन्हें तो देना चाहिए। उनसे लेना ही क्या ?' हमने समझाया कि भगवान् श्रीकृष्ण ने भी सुदामा से तन्दुल लिये बगैर उसे दिया नहीं। आखिर उससे लेना क्या था ? उसे तो देना था, पर भगवान् ने उससे पूछा कि हमारे लिए क्या लाये हो ? एक दरिद्र ब्राह्मण राजा के घर जाता है, तो राजा प्यार से उसे अपने पास बैठाता और उससे पूछता है कि हमारे लिए क्या लाये हो ? सुदामा बेचारा शरमिन्दा हो गया, क्योंकि उसने एक निकम्मी चीज लायी थी। भगवान् ने उसके हाथ से उसे छीन लिया और वे प्रेम से खाने लगे। लक्ष्मी माता पास ही बैठी थी। वह बड़ी कुशल थी। उसने सोचा कि भगवान् सारा-का-सारा चिउड़ा खा जायँगे, तो न मालूम उसे क्या-क्या दे देंगे ? इसलिए उसने भी एक हिस्सा माँगा और प्यार से खाने लगी। उसके बदले सुदामा को जो देना था, वह तो भगवान् ने बाद में दे दिया। परन्तु भगवान् ऐसे निठुर हैं कि उन्होंने उससे लिये बगैर उसे नहीं दिया, क्योंकि वे उसकी ताकत बढ़ाना चाहते थे। वे चाहते थे कि वह दुनिया में माँगता न फिरे। इसीलिए उन्होंने उससे लेकर ही उसे दिया। केवल भूत-दया-वादी समझ नहीं सकते कि यह क्या बात है ?

हम सत्याग्रह की ताकत खड़ी करना चाहते हैं, गरीबों की ताकत बढ़ाना चाहते हैं। अगर गरीब अपनी छोटी-सी जमीन की मालकियत पकड़े रहेगा, तो बड़ा मालिक भी अपनी जमीन की मालकियत न छोड़ेगा। यह सारा मसला हल करना है, तो मालकियत छोड़नी ही पड़ेगी। जब छोटे लोग देंगे, तभी यह सिद्ध होगा कि मालकियत गलत है। फिर बड़े लोग भी उसे छोड़ेंगे। उन पर एक नैतिक दबाव आयेगा और फिर उनके हृदय में यह बात प्रवेश करेगी। नैतिक दबाव सत्याग्रह का एक अंग है। इसे जो नहीं समझते, उन्हें ही लगता है कि बाबा सिर्फ हृदय-परिवर्तन की बात करता है, पर ताकत नहीं बढ़ाता। लेकिन सत्याग्रह करना हो, तो कौन-सी ताकत काम में आयेगी ? हमारी जो पैदल-यात्रा चल रही है, हम जो सातत्य से काम कर रहे हैं—यह सब क्या है, इस पर जरा सोचिये।

कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि आपको कहीं किसी बड़ी संस्था की मजलिस

में बुलाया जाय, तो क्या आप जायँगे या इसी तरह पैदल घूमते रहेंगे? अब जरा मोटर पर भी चढ़िये। अब तो दूसरे दिन आये हैं। लेकिन कोई बड़ी मजलिसवाले भी बुलाते हैं, तो भी हम नहीं जाते। यह भी सत्याग्रह का एक अंग ही है। लोग नहीं समझ रहे हैं कि एक नयी शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है और अब उसे विकसित करना है। गांधीजी ने जो किया, उसका एक बाह्य रूप ही हमने देखा। उससे आज काम न चलेगा। वे तो दूसरी परिस्थिति में थे। उस समय अंग्रेजों को भगाने का काम करना था। वह सर्वथा 'निगेटिव' ही काम था। फिर भी उसके साथ उन्होंने कितना रचनात्मक काम जोड़ दिया था। लोग उनसे पूछा भी करते कि अंग्रेजों को हटाने के लिए खादी, छुआछूत मिटाने या ग्रामोद्योग की रक्षा की क्या जरूरत है? यह तो समाज-सुधार का काम है। किन्तु नहीं, वास्तव में यह भी सत्याग्रह के अंग ही हैं।

एक बार तो इस सत्याग्रह-आन्दोलन में गांधीजी ने छुआछूत के मामले पर उपवास भी आरम्भ कर दिया। इस पर लोग कहने लगे कि आजादी की लड़ाई के बीच यह मन्दिर-प्रवेश की बात क्या निकाली? राजनैतिक आजादी के काम में इससे तो बल घट जाता है। किन्तु गांधीजी इस पर कहते कि 'यह तो उसीका एक अंग है।' सारांश, अंग्रेजों को भगाना या यहाँ से उनका दबाव हटाना तो एक बाह्य बात थी उसके साथ उन्होंने काफी रचनात्मक काम जोड़ दिये। अब वह बोझ हट भी गया है। इसलिए उन्होंने क्या-क्या किया, यह देखकर हम आगे बढ़ेंगे, तो हमारा विकास होगा।

दो बिंदुओं से रेखा

हमें सत्याग्रह की शक्ति को अपने जीवन में लाने की कोशिश करनी चाहिए। हमारे कार्यकर्ताओं के जीवन में झगड़े चलते हैं, अनबन होती है। कोई कहता है कि इसके साथ हमारी नहीं बनेगी, तो कोई कुछ। जब झगड़े होते हैं, तो हम कहते हैं कि होने दो। परन्तु जब कोई यह कहता है कि उसके साथ हमारी नहीं बनेगी, तो हम कहते हैं कि तुम हमारे काम के लिए निकम्मे हो। हमारी जबान से तो यही उद्गार निकलना चाहिए कि मेरा हर शख्स के साथ बनेगा। चाहे उसका

किसीसे बने या न बने, मेरा तो सभी से बनेगा। यह सत्याग्रह की शक्ति है। हममें श्रद्धा और सत्य का आग्रह होना चाहिए। हमें सत्य पर डटे रहना चाहिए। उससे निश्चय ही सामनेवाले का हृदय-परिवर्तन होकर परिस्थिति भी बदल सकती है। हमें ऐसी ही परम श्रद्धा रखनी चाहिए। हम सारी दुनिया को आजादी और शान्ति की राह पर ले जाना चाहते हैं, तो हमें अपने जीवन में सत्याग्रह की शक्ति का विकास अवश्य करना चाहिए।

आज मैंने एक आदि की चीज और दूसरी अन्त की चीज बतायी। इन दो बिन्दुओं को जोड़कर आप बीच का सारा इतिहास जान सकते हैं। उसे पहचानकर सत्याग्रह की शक्ति का विकास कैसे किया जाय, इस पर सोचें। उस शक्ति को विकसित करने का बोझ, जिम्मेवारी या मिशन परमेश्वर ने हम पर सौंपा है। इसलिए हम अपने दिल छोटे न रखें, दिलों को व्यापक और ऊँचा बनायें। हम सत्याग्रह की शक्ति के विकास के लिए निरन्तर सोचते जायँ, नित्य चिन्तन करते जायँ और सेवा करते जायँ।

रघुनाथपुर
३०-१२-'५४

उपशीर्षकों का अनुक्रम

सन् १९५७ के लिए सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना

सन् '५७ के लिए सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना नये रूप में शुरू की जा रही है।

सन् '५५ और '५६ की सर्वोदय-स्वाध्याय-योजनाओं में रही हुई कमियों से बचने के लिए यह योजना बनायी जा रही है, जिसकी रूपरेखा इस प्रकार है :

१. यह योजना १ जनवरी '५७ से आरम्भ हो रही है। योजना-सदस्यता-शुल्क १०) है। एक संस्था एक से अधिक संख्या में सदस्यता-शुल्क जमा करा सकती है। सदस्यता-शुल्क का रुपया स्थानीय प्रमाणित खादी और साहित्य-भण्डारों में ही जमा करना चाहिए। वहीं से साहित्य भी लेना होगा। राजघाट, काशी को शुल्क न भेजा जाय।

२. सदस्यों को तीन-चौथाई मूल्य में साहित्य मिलेगा। १०) में कुल मिलाकर १३।-) का साहित्य प्राप्त होगा, जो लगभग तीन हजार पृष्ठों का होगा। सदस्यों को किताब देने पर भण्डार अपने पासवाली रसीद पर सदस्यों के हस्ताक्षर लेता रहेगा, ताकि सदस्यों को पुस्तकें ठीक से मिलती रहें।

३. इस योजना में सेट नं० १ और नं० २ से भिन्न, सर्व-सेवा-संघ से प्रकाशित नयी पुस्तकें रहेंगी। पुस्तकें जैसे-जैसे प्रकाशित होती रहेंगी, सम्बन्धित भंडारों से उपलब्ध हो सकेंगी। १॥) मूल्य तक की हर पुस्तक योजना में दी जायगी। १॥) से ऊपर के मूल्य की पुस्तक योजना के अन्तर्गत नहीं रहेगी। टेक्निकल, शास्त्रीय तथा हिन्दी के अलावा अन्य भाषाओं की पुस्तकें भी शामिल नहीं रहेंगी।

४. प्रमाणित साहित्य-भंडारों के पास सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन की ओर से एक तिपानी रसीद-बुक रहेगी और उनके पास सदस्य बनाने का अधिकृत प्रमाण-पत्र रहेगा। शुल्क जमा करने पर रसीद की एक प्रति सदस्य को दी जायगी और एक प्रति प्रकाशन-दफ्तर, काशी में पहुँचती रहेगी। वह रसीद ही सदस्यता-फार्म समझा जायगा। अलग से कोई फार्म नहीं रहेगा।

५. २० या अधिक सदस्य एक साथ बनना चाहेंगे, तो उन्हें काशी से सदस्य बनाया जा सकेगा। उनका शुल्क एक साथ काशी आना चाहिए। उन्हें एक साथ ही साहित्य किसी भी रेलवे-स्टेशन-पहुँच दिया जा सकेगा। फुटकर सदस्य काशी से नहीं बनाये जायँगे।

—संचालक